देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
February 2023
Vol.-17, Issue-2

Impact Factor
7.523

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

सम्पादक : डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 17 ISSUE- 2 (फरवरी 2023) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

प्रधान सम्पादक :

प्रो० शकुन्तला

पत्नी डॉ० प्रमोद कुमार

गाँव व डाकघर– खन्द्रावली, जिला–शामली, उत्तर प्रदेश

पिन कोड – 247775

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक

टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविधालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय,डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य

डॉ. के.के. मल्होत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

***सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।**

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/– रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

फरवरी 2023

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	प्रो. शकुन्तला	9–9
2.	थर्ड जेंडर : एक दर्द भरी दास्तान (हिंदी साहित्य के संदर्भ में)	डॉ. भावना	10–15
3.	वैश्वीकरण और मानवाधिकार	हरकेश मीणा	16–20
4.	जनजातीय क्षेत्र पांगी की धार्मिक लोक कथाओं का सामाजिक विश्लेषण	राज कुमार	21–28
5.	कुल्लवी लोकगीतों में अभिव्यक्त रस एवं अलंकार	संगीता देवी	29–42
6.	माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान का उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं आत्मसम्प्रत्यय पर प्रभाव का अध्ययन	डॉ. राजेश शर्मा, सुनिता शर्मा	43–49
7.	मालती जोशी की कहानियों में चित्रित परिवारों में बदलते नाते	E. Jacqueline, Dr. Anuradha Pakalapati	50-54
8.	वाल्मीकि रामायण में निरूपित शैक्षिक मूल्यों का अध्ययन	डॉ. राजेश शर्मा, विद्या शर्मा	55–59
9.	A Study of Creativity across Gender among Teacher Trainees in Relation to Their Thinking and Learning Style and Problem Solving Ability	Dr. Suman Rani, Seema Wadhwa	60-65
10.	आदिवासियों की त्रासदी का जीवंत दस्तावेज 'डूब' और 'पार'	सरिता कुमारी	66–69
11.	यशपाल की कहानियों में सुधारवादी दृष्टिकोण	डॉ. सी.हेच.वी.महालक्ष्मी	70–72
12.	राजर्षि संत पीपा के साहित्य में पर्यावरणीय चेतना	डॉ. आदित्य कुमार गुप्त, रामकिशन माली	73–80
13.	औद्योगिकरण से पर्यावरण प्रदूषण	सुमित कुमार जाट	81–85
14.	सार्वभौम एवं सार्वजननीन वैदिक धर्म	डॉ. कविता जैन	86–89
15.	मानवीय विकास में वैदिक शिक्षा	डॉ. जोगेन्द्र कुमार	90–93
16.	ममता कालिया का व्यक्तित्व	डॉ. संजय कुमार यादव	94–98
17.	श्री भर्तृहरि विरचित नीतिशतकम् में वर्णित मूर्ख पद्धति की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सार्थकता	डॉ० केसर कमल शर्मा	99–101
18.	राजेश जोशी की कविताओं में युगबोध	उर्वशी सिंह	102–108
19.	फलौदी परगने के स्वतंत्रता सेनानी	दिनेश गहलोत	109–115

20.	हिन्दी के दलित नाटक	डॉ. अनीश के.एन.	116–122
21.	SIGNIFICANCE FACT OF PURITAN AGE	SHASHI KUMAR	123-127
22.	लोकतंत्र में संसदीय संस्कृति की संकल्पना	डॉ. ब्रजकिशोर	128–132
23.	समकालीन हिंदी कविता का लोक-पक्ष	डॉ. गिरीश कुमार के.के.	133–140
24.	रवीन्द्र कालिया के कथा साहित्य में मुस्लिम परिवेश	डॉ० दारा योगानंद	141–145
25.	अशोक चक्रधर की कविताओं में समसामयिक समस्याओं पर व्यंग्य	रवि प्रकाश	146–150
26.	ब्रिटिश भारत में महिलाओं की स्थिति	स्वेता कुमारी	151–154
27.	Savtribai Phule-The pioneer of Indian Education : An Introduction	Aparna Verma	155-160
28.	शिक्षा और संस्कृति	डॉ. अल्पना शर्मा	161–164
29.	Ramifications of economic changes and democratic participation – a study of citizens of West Bengal	Atashi Bhattacharya, Dr. N. Sushil K Singh	165-175
30.	Effect of Specific Yogic Exercise on the Shooting Performance of Basketball Players	Simple Purohit, Dr. Surjeet Singh Kaswan	176-179
31.	Financial Problems in Execution of Physical Education Curriculum	Mrs. Jandeep Kaur, Dr. Braj Kishor Choudhary	180-183
32.	सरहदों को नकारती एक औरत की कहानी : रेत समाधि	कविता चूर	184–187
33.	चारूदत्तम् की प्राकृत में प्रयुक्त तिङन्त क्रियारूप	डॉ. अश्विनी कुमार	188–192
34.	प्राचीन भारत : पर्यावरण संरक्षण	महेन्द्र डांगा	193–197
35.	लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक : नारी पात्र के सन्दर्भ में	प्रेमसुख	198–202
36.	भारतेंदु युगीन उपन्यास साहित्य और नवजागरण	डॉ. पूनम तलवार	203–206
37.	नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में सामाजिक सम्बन्ध	किरन पूनिया	207–210

अतिथि सम्पादक की कलम से.....

प्रस्तुत अंक के लिए हमें आप सभी शोधार्थियों, प्राध्यापकों का भरपूर सहयोग मिला जिस कारण प्रस्तुत अंक को तीन भागों में विभाजित करना पड़ा। हमारी यह उपलब्धि आप सभी का सहयोग, मार्गदर्शन का प्रतीक है। जिस कारण आज गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी रजि. द्वारा वर्ष 2015 से प्रकाशित बोहल शोध मंजूषा बहुविषयक, बहुभाषिक पत्रिका इस मुकाम पर पहुंच पाई है। आज भारत के अतिरिक्त श्रीलंका, नेपाल, जापान, यूक्रेन, चीन आदि देशों के शोधार्थी, प्राध्यापकों ने अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान कर हम पर विश्वास जताया है। यह सब आपके सहयोग के बिना सम्भव नहीं था।

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी ने निर्णय लिया है कि लेखन, प्रकाशन एवं शोधार्थियों, प्राध्यापकों को चिन्तन को विकसित करने के लिए आगामी विक्रम संवत् से पुनः संपादकीय समिति का गठन किया जाए जिस कारण पत्रिका के प्रचार–प्रसार को और अधिक गति मिल सके। इससे नवीन सदस्यों को लिखने, पढ़ने का सुअवसर मिलेगा और पहचान भी। कार्यशाला, संगोष्ठी, शोध प्रविधि आदि विषयों पर महाविधलयों, विश्वविधालयों के साथ मिलकर कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे ऐसी भी समिति की योजनाएं हैं। इन सभी योजनाओं को अमलीजामा पहनाने के लिए आप सुधी पाठकों के सहयोग की आवश्यकता हमें होगी। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप सभी का सहयोग हमें नियमित रूप से मिलता रहेगा। इसके अतिरिक्त समय–समय पर हमें आप सभी सुधी पाठकों के सुझाव भी प्राप्त होते रहते हैं जिनको हम समिति की आगामी बैठक में रखेंगे तथा प्रयास रहेगा कि आपसी सहमति बनाकर कार्य रूप प्रदान कर सकें।

मैं समिति और सम्पादक मण्डल की आभारी हूं जिन्होंने मुझे इस अंक के सम्पादन योग्य समझा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 10-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

थर्ड जेंडर : एक दर्द भरी दास्तान (हिंदी साहित्य के संदर्भ में)

डॉ. भावना

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभाग), हु0सि0बो0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सोमेश्वर, अल्मोड़ा।

सारांश :-

हमारा समाज पुरुष और स्त्री रूपी दो स्तम्भों पर टिका हुआ है। इन दो लिंगों के अतिरिक्त एक तीसरे लिंग का भी अस्तित्व हमारे समाज में है, जिसे थर्ड जेंडर, किन्नर, नपुंसक, छक्का, खोजा, हिजड़ा इत्यादि नामों से पुकारा जाता है।

इन नामों को सुनते ही हम अचानक हँसने लगते हैं। इनको देखकर हम मुँह फेर लेते हैं और वहाँ से भागने लगते हैं। हम इन्हें हँसी का पात्र समझ लेते हैं और ये भूल जाते हैं कि ये भी हमारी ही तरह एक साधारण मनुष्य हैं। इन्हें भी समाज में सम्मान के साथ जीने का अधिकार है। अगर हम किसी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर सकते तो हमें दुर्व्यवहार करने का भी कोई अधिकार नहीं है। धरती पर जब से मनुष्य जाति का जन्म हुआ तभी से थर्ड जेंडर समुदाय का अस्तित्व भी प्राप्त होता है। लेकिन हजारों वर्षों के बाद भी आज तक इस समुदाय को समाज में बराबरी का स्थान नहीं मिल पाया। थर्ड जेंडर का वर्णन हमारे पुराण ग्रन्थों में भी मिलता है। इन सबके बावजूद भी आज थर्ड जेंडर का स्थान समाज में नगण्य है। चूँकि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है और यही कारण है कि हिंदी साहित्य के रचनाकारों ने थर्ड जेंडर की दर्द भरी दास्तान को साहित्य के माध्यम से उजागर करने का एक सफल प्रयास किया है।

मुख्य शब्द :- थर्ड जेंडर, समाज, लिंग भेद, किन्नर विमर्श, असमानता, वेदना आदि।

''जितना श्रापित मेरा जीवन, दुखद अधिक मर जाना।
जूते चप्पल मार लाश को, कहते लौट न आना।।''[1]

थर्ड जेंडर से हमारा अभिप्राय उन लोगों से है, जिनके जननांग पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाते हैं। सरकार व समाज के द्वारा इस समुदाय के लोगों को ट्रांसजेंडर नाम दिया गया है।

अमेरिकी वैज्ञानिक संगठन के अनुसार–''जिनकी लैंगिक पहचान, अभिव्यक्ति या व्यवहार उनके निर्धारित लिंग से भिन्न होते हैं, किन्नर कहलाते हैं। कभी–कभी किन्नरों को चिकित्सकीय सहायता से दूसरे लिंग में परिवर्तित व्यक्ति या इच्छुक व्यक्ति भी कहते हैं।''[2]

भारतीय समाज में किन्नरों के चार प्रकार बताए जाते हैं–बुचरा, नीलिमा, मनसा तथा हंसा। इनमें से बुचरा वास्तविक हिजड़े होते हैं, क्योंकि ये न तो जन्मजात पुरुष होते हैं और न ही स्त्री। नीलिमा वर्ग के अन्तर्गत वे किन्नर आते हैं जो किसी कारणवश किन्नर बनने को समर्पित हो जाते हैं।

शारीरिक रूप के बजाय मानसिक रूप से स्वयं को पुरुष के स्थान पर स्त्रीलिंग के अधिक निकट महसूस करने वाला वर्ग मनसा कहलाता है तथा शारीरिक कमी या यौन न्यूनताओं के कारण बने किन्नर हंसा वंर्ग में आते हैं। इनके अतिरिक्त जो धन लोभ के कारण किन्नर होने का नाटक करते हैं ऐसे नकली हिजड़े अबुआ कहलाते हैं। साथ ही जबरन किन्नर बनाया गया वर्ग छिबरा कहलाता है।

थर्ड जेंडर वर्ग वर्तमान आधुनिकता के दौर में भी विकास के पैमाने पर हांशिये पर खड़ा हुआ है। इस वर्ग के विकास की अनदेखी एक ज्वलंत मुद्दा बनते जा रहा है। आज सभी समुदाय के वर्गों के अधिकारों व विकास की बात की जाती है। लेकिन थर्ड जेंडर की चर्चा करना कोई नहीं चाहता। थर्ड जेंडर को सभी अधिकारों से वंचित कर आज जन के द्वारा इनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। हमारा समाज गुनाहगारों को तो बड़ी आसानी से माफ कर देता है, लेकिन प्राकृतिक भूल के शिकार व्यक्तियों को कभी नहीं अपनाता है। जैसे थर्ड जेंडर ने धरती पर जन्म लेकर कोई बहुत बड़ा गुनाह कर दिया हो। थर्ड जेंडर को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक प्रकार के सामाजिक शोषणों का शिकार होना पड़ता है।

वर्तमान में विमर्शों का जो दौर चल रहा है उसमें हाशिए पर धकेला गया यह थर्ड जेंडर वर्ग भी अपनी अस्मिता, अस्तित्व व अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्षरत है। भारतीय संविधान में इन्हें किन्नर नाम से सम्बोधित किया गया है।

हमारे घरों में शादी–ब्याह या बच्चे के जन्म के अवसर पर नाच–गाना करके सबको आशीर्वाद देने वाले इस थर्ड जेंडर का जन्म सिर्फ नाचने–गाने या भीख मांगने के लिए नहीं हुआ है, इन्हें भी स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार है।

अपना घर परिवार होते हुए भी कोई इनको अपनाना नहीं चाहता। कोई इनको किराये पर घर देने के लिए तैयार नहीं होता। इस कारण ये लोग झोपड़ियों में रहने के लिए विवश होते हैं। ये घर–घर जाकर स्टेशनों पर भीख मांगने को मजबूर हैं। क्योंकि इन्हें कोई नौकरी देने का तैयार नहीं होता।

हम जब किसी भी प्रकार का कोई आवेदन फार्म भरते हैं तो उसमें एक कॉलम जेंडर (लिंग) का भी होता है। जिसमें स्त्री, पुरुष एवं अन्य लिखा होता है। उस अन्य वाले कॉलम में तो थर्ड–जेंडर को जगह मिल गयी, लेकिन हमारे पढ़े–लिखे समाज में आज भी इनके लिए कोई जगह नहीं है।

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श हालांकि अभी अपनी अपरिपक्व अवस्था में है, लेकिन इसके बावजूद भी यह साहित्य में एक अलग और विशिष्ट पहचान बना रहा है।

विमर्शों के दौर में हिंदी साहित्य के अनेक रचनाकारों ने जब इनकी दुनियां की तरफ दृष्टि डाली, इनकी चीखों की गूँज सुनी, इनकी वेदना, दुख–दर्द को महसूस किया तो अपनी रचनाओं में इनकी करुणा को उजागर करने से वे खुद को रोक नहीं पाये। इस प्रकार थर्ड जेंडर की समस्याओं की मुखर अभिव्यक्ति के लिए साहित्य में किन्नर विमर्श सामने आया।

हमारे समाज में किन्नरों को जिस हिजड़ा शब्द से संबोधित किया जाता है, यह शब्द इस वर्ग के लोगों की अपार पीढ़ा का कारण बन जाता है। हमारे पढ़े–लिखे समाज के द्वारा प्रयुक्त होने वाले इस शब्द को सुनते ही ऐसा महसूस होता है मानो मनुष्य की सारी संवेदनाएं ही खत्म हो चुकी हों। हिजड़ा शब्द के प्रयोग से किन्नरों को मिलने वाली असहनीय पीढ़ा को काव्य के माध्यम से व्यक्त करते हुए राज किशोर राजन ने लिखा है कि–

''हिजड़ा कहते ही दुनियाँ की सारी गालियाँ,
नग्न होकर करने लगती हवा में नृत्य जिसमें नहीं होते,
शब्द, स्पर्श, रूप रस और गंध की छटांक भर
बस होता है चित्कार, हाहाकार, रूदन
कि जैसे फट गया हो धरती का कलेजा,
हिजड़ा कहते ही मनुष्य की आदिम बर्बरता,
अपनी पूरी ताकत के साथ रखती धरती पर पैर
और धरती की आँखों से ढुलक पड़ते अश्रुजल।''[2]

ऐसे ही हिंदी साहित्य के अनेक साहित्यकारों के माध्यम से अपनी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों इत्यादि के माध्यम से थर्ड जेंडर के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उनकी वेदना को मुखर अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

हम देखते हैं कि जब भी किसी के घर परिवार में बेटे का जन्म होता है तो उस घर में उत्सव मनाया जाता है। खूब बधाइयाँ दी जाती हैं। घर के सभी लोग खुशियाँ बाँटते हैं लेकिन वही बेटा यदि किन्नर पैदा हुआ तो उसका सारा दोष उसकी माँ के सिर पर मढ़ दिया जाता है। आज भी हमारा पढ़ा–लिखा समाज बेटे व बेटी के जन्म दिवस पर भेद–भाव करता नजर आता है।

बेटे के जन्म पर जहाँ उत्सव मनाया जाता है , वहीं बेटी के जन्म पर भले ही सब यह बोलते हों कि घर में लक्ष्मी आयी है किन्तु कहीं न कहीं सबके मन में यह बात जरूर रहती है कि काश बेटा हुआ होता। जब बेटी के पैदा होने पर ऐसा भेद–भाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है तो सोचिए किन्नर के पैदा होने पर क्या स्थिति होती होगी। एक माँ के लिए तो उसकी सारी औलादें बराबर होती हैं। फिर चाहे वह बेटा हो या बेटी हो या फिर किन्नर ही क्यों न हो। किन्नर को जन्म देने वाली माँ को भी समाज अवहेलना की दृष्टि से देखता है। उसे भी बार–बार ताने सुनने को मिलते हैं। एक थर्ड जेंडर बच्चे की माँ के दुख–दर्द उसकी वेदना को सुशीला जोशी ने अपनी कविता 'एक किन्नर माँ की व्यथा' में मार्मिकता प्रदान करते हुए लिखा है–

''घर में पैदा हुआ नपुंशक/सबके मुँह से निकली हाय
फूट–फूट कर मैया रोवे/उसकी पीर सही न जाए
दूध पिलाती मैया रोवे/पिता भी मन में बिलखा जाये
जैसे–तैसे यह तो रह ले/लोक नजर सही न जाये
हँसी उड़ावे ताना मारे/माँ की पीर सही न जाये।
मेरा तो यह जिस्म अंश है/इसकी ममता छोड़ी न जाए।
कैसे भी बस जी ले बेटा/तेरी पीर कही कित जाए।''[3]

थर्ड जेंडर का जीवन अनंत त्रासदियों से भरा हुआ है। दिन–रात इन्हें न जाने कितनी यातनाएँ सहन करनी पढ़ती हैं। जैसा व्यवहार हम समाज से अपने लिए चाहते हैं, जिस मान–सम्मान की उम्मीद हम अपने लिए करते हैं, ऐसी ही उम्मीद थर्ड जेंडर लोग हमसे भी रखते हैं। वे भी चाहते हैं कि उनके साथ भी मानवीय दृष्टि रखते हुए सम्मानपूर्ण व्यवहार किया जाये।

हिंदी के साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से थर्ड जेंडर के प्रति समाज का जो नजरिया है, उसे बदलने का भरसक प्रयास किया है। मानवीय दृष्टि एवं मान–सम्मान की इसी भावना को अभिव्यंजित करती हुई कात्यायानी सिंह पूजा की कविता 'हमको भी करो प्यार' की निम्न पंक्तियाँ यहां पर उद्धृत हैं–

''हमारे सूखे दिल में/पड़ी हैं हजारों दरारें
जिसमें पड़ी रहती हैं/कुछ मनचाही इच्छाएँ
काश! हमारा भी कुछ होता
घर–परिवार और कुछ मासूम बच्चे
जिनकी किलकारी से होता/गुजलार हमारा भी घर–आँगर।''[4]

हिंदी साहित्य की यदि बात करें तो पांडेय बेचन शर्मा उग्र की कहानियों व साथ ही शिव प्रसाद सिंह की कहानियों (बहाव वृत्त और बिंदा महाराज) में भी हमें थर्ड जेंडर विमर्श देखने को मिलता है।

ऐसे ही वृंदावन लाल वर्मा द्वारा रचित एकांकी 'नीलकंठ' में एक थर्ड जेंडर व्यक्ति के उस संघर्ष को उल्लेखित किया गया है जिसमें कि वह सामाजिक सतुंलन को बचाने के लिए अथक प्रयास करता है।

थर्ड जेंडर से संबंधित उपन्यासों की यदि चर्चा की जाए तो उनमें निम्न पाँच उपन्यास–नीरजा माधव द्वारा लिखित उपन्यास 'यमनदीप', प्रदीप सौरभ द्वारा लिखित उपन्यास 'तीसरी ताली' (2011), महेन्द्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' (2011) निर्मला भुराड़िया का उपन्यास 'गुलाम मंडी' (2014) तथा चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा' (2016) प्रमुख हैं। यमनदीप उपन्यास के माध्यम से नीरजा माधव ने थर्ड जेंडर की मानसिक यातनाओं, उनकी विविध समस्याओं व उनसे संबंधित ऐतिहासिक संदर्भो को उजागर करने का एक सफल प्रयास किया है। साथ ही थर्ड जेंडर को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास भी किया गया है। अपने तीसरी ताली (2011) उपन्यास के माध्यम से प्रदीप सौरभ ने थर्ड जेंडर से संबंधित ऐसे अवांछित प्रसंगों को उठाया है, जिन पर कि हमारा पढ़ा लिखा सभ्य समाज बात करना तक पसंद नहीं करता। यह उपन्यास थर्ड जेंडर से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जिसमें लेखक ने एक थर्ड जेंडर बच्चे की व्यथा एवं उसके मन के अंतर्द्वन्द्व को बखूबी चित्रित कर दिया है–''समय बीतने के साथ–साथ गौतम साहब के बेटे में लड़कियों जैसे गुण पैदा होने लगे। शारीरिक बदलाव भी प्रखर हो गए। गौतम साहब यह सब देखकर चिंतित थे। विनीत गौतम नाम रखा था उन्होंने अपने बेटे का। विनीत घर से निकलने में कतराने लगा। बाहर निकलता तो उसके साथ खेलने वाले बच्चे भी उससे किनारा कर लेते। वह अजीब मानसिकता से गुजर रहा था। कई–कई हफ्ते घर के अन्दर बन्द रहता। उसे लगता कि उसके पिता उसे जबरिया लड़का बनाने पर तुले हैं। वह अपनी बहनों की तरह ही अपने को लड़की मानता था। उसे लड़कों के कपड़े पहनने से परहेज होने लगा।''[5]

थर्ड जेंडर को लेकर लिखे गये अपने महत्वपूर्ण उपन्यास 'किन्नर कथा' में महेन्द्र भीष्म ने एक राजवंश में पैदा हुई थर्ड जेंडर लड़की के जीवन संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस उपन्यास में लेखक ने भारतीय समाज की खोखली परम्पराओं पर प्रहार करने के साथ ही साथ थर्ड जेंडर के लिए नीवन जीवन मूल्यों की आवश्यकता पर बल दिया है। लेखक ने उपन्यास के प्रमुख पात्र तारा के माध्यम से थर्ड जेंडर की उस पीढ़ा को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है, जिसमें कि ये लोग अपने ही घर परिवार द्वारा परित्यक्त होकर समाज में

उपेक्षा व शोषण के शिकार बनकर रह जाते हैं। तारा अपने थर्ड जेंडर होने के दर्द को बयाँ करती हुई कहती है कि–''भगवान मेरे साथ अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है। मेरा अपना कौन है? घर–बाहर, माँ–बाप, भाई–बहन, बच्चे कोई नहीं है मेरा, जिसे मैं अपना कह सकूं। सब कुछ होते हुए भी कोई मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं है। बचपन से आज तक बस अपने आप में ही दर्द पीते हैं। दूसरे को हंसाते आए हैं। आशीष के सिवा किसी को कुछ नहीं दिया। ईश्वर से बस एक शिकायत है आखिर क्यों उसने हमें ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दण्ड दिया? काश! हम भी औरो की तरह स्त्री या पुरुष होते। हिजड़ा होना इतनी बड़ी सजा है यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है दूसरा कोई भी नहीं।''[6]

ऐसे ही देह व्यापार एवं किन्नरों की समस्याओं पर आधारित उपन्यास 'गुलाम मंडी' निर्मला भुराडिया का नवीनतम उपन्यास है। जो इंसान को इंसान मानने की वकालत करता है। निर्मला भुराडिया हिंदी की सुप्रसिद्ध संवेदनशील लेखिका हैं जो गहनतम संवेदना के स्तर पर गुलाम के दंश को बड़ी कुशलता के साथ अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं कि–''बचपन से ही देखती आई हूँ उन लोगों के प्रति समाज के तिरस्कार को जिन्हें प्रकृति ने तयशुदा जेंडर नहीं दिया। इसमें इनका क्या दोष? ये हमेशा त्यागे गए, दुरदुराए गये, सताए गये और अपमान के भागी बने? इन्हें हिजड़ा, किन्नर, बृहन्नला आदि कई नामों से पुकारा जाता है। मगर हमेशा तिरस्कार के साथ ही क्यों? आखिर ये बाकी इन्सानों की तरह मानवीय गरिमा के हकदार क्यों नहीं?[7]

इस प्रकार इस उपन्यास में लेखिका ने हर उस सच को उघाड़कर सबसे सामने रख दिया, जिसे दो चेहरों वाला सभ्य समाज अपनी मायावी दुनिया से हमेश अलग रखने की कोशिश करता है।

'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' उपन्यास चित्रा मुद्गल कृत मुंबई के एक खाते–पीते परिवार के बच्चे विनोद की कहानी है। यह उपन्यास किन्नर समाज की दशा व दिशा से समाज को परिचित कराता है। उपन्यास में थर्ड जेंडर के जीवन से संबंधित व्यक्तिगत व सामाजिक सरोकारों को उघाड़ते हुए लेखिका कहती है कि–''लंबे समय से मेरे मन में पीड़ा थी, एक छटपटाहट थी, आखिर क्यों हमारे इस अहम हिस्से को अलग–थलग किया जा रहा है। हमारे बच्चों को क्यों हमसे दूर किया जा रहा है। आजादी से लेकर अभी तक कई रूढ़ियां टूटी लेकिन किन्नरों की जिंदगी में कोई बदलाव नहीं आया।''[8]

यह उपन्यास हमें गम्भीरता से यह प्रश्न सोचने के लिए विवश कर देता है कि आखिर क्यों प्राकृतिक भूल के शिकार व्यक्ति हो हमारा समाज बहिष्कृत कर देता है?

इस प्रकार एक थर्ड जेंडर को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनगिनत सामाजिक यातनाओं को झेलना पड़ता है। मृत्यु के पश्चात भी इनके शव को जूते–चप्पलों से पीटा जाता है। यह कहते हुए कि अगले जन्म में फिर से थर्ड जेंडर पैदा मत होना। जब तक थर्ड जेंडर के प्रति हमारे समाज की सोच नहीं बदलेगी जब तक ये लोग अपने अस्तित्व, अपनी पहचान को समाज में हांशिए पर ही पाएंगे। जिस प्रकार शुभ कार्यों के अवसर पर हम इनके मंगल कामना की आश करते हैं, ठीक ऐसे ही एक इंसानियत के नाते हमारे समाज में रहकर इनके लिए कुछे ऐसे कार्य करें कि इनका भी कुछ मंगल हो सके।

हांलाकि वर्तमान में थर्ड जेंडर समुदाय की सामाजिक एवं संवैधानिक स्थितियों में काफी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। लेकिन इसके बावजूद भी हम सभी का उत्तरदायित्व बनता है कि हम अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त

होकर इनके साथ प्रेम व उदारतापूर्ण व्यवहार करें। हमारा यह किन्नर विमर्श भी तभी सार्थक होगा जब हम थर्ड जेंडर समुदाय के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनायेंगे।

सन्दर्भ :-

1. हिंदी साहित्य में थर्ड जेंडर विमर्श, सं0 डॉ. पायल लिल्हारे एवं डॉ. श्याम मोहन पटेल; पृ0–172
2. अस्तित्व और पहचान, डॉ0 विजेन्द्र प्रताप सिंह; पृ0–13
3. वही; पृ0–33
4. वही; वही; पृं0–37
5. हिंदी साहित्य में थर्ड जेंडर विमर्श, सं0 डॉ. पायल लिल्हारे एवं डॉ0 श्याम मोहन पटेल; पृ0–175
6. वही; पृ0–175
7. गुलाम मंडी, निर्मला भुराडिया; पृ0–07
8. हिंदी साहित्य में थर्ड जेंडर विमर्श, सं0 डॉ. पायल लिल्हारे एवं डॉ0 श्याम मोहन पटेल; पृ0–138

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 16-20

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैश्वीकरण और मानवाधिकार

हरकेश मीणा

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, श्रीमती नर्बदा देवी बिहानी
राजकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, नोहर, जिला हनुमानगढ़ (राज.)

प्रस्तावना :–

वैश्वीकरण के इस युग में प्रयास किया जा रहा है कि विश्व में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समानता स्थापित हो। इस दिशा में सफलता भी हासिल हो रही है। लेकिन वैश्वीकरण के दौर में मानवाधिकारों पर संकट के बादल मँडरा रहे है क्योंकि अमीर देश मानवाधिकारों की बजाय अपने निजी हितो पर ज्यादा ध्यान देते है। मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए तीसरी दुनिया के देशों की दशा सुधारनी होगी। लेकिन भुमण्डलीकरण के दौर में तीसरी दुनिया के राष्ट्रो का शोषण किया जा रहा है। अमीर देश अमीर होते जा रहे है, गरीब राष्ट्र अमीर राष्ट्रो के समक्ष प्रतिस्पर्धा में टिक नही सकते। इसलिए उनके पारम्परिक उधोग धन्धे चौपट हो रहे है। जिससे उन देशों में बेरोजगारी बढ़ी है तथा गरीबी आई है। ग्रामीण लोग रोगजार के लिए शहरों में आ रहे है। इससे शहरीकरण की समस्या पैदा हो रही है। पर्यावरण प्रदूषण बढता जा रहा है। भौतिकता की इस दौड़ में नैतिकता का पतन हो रहा है। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत सही सिद्ध होती जा रही है जोकि मानवता के लिए हानिकारक है। लोगों के मानवाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है कि उनका स्वास्थ्य अच्छा हो, वे शिक्षित हो, उन्हें रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी सुविधाऐं प्राप्त हो। अतः वैश्वीकरण के इस दौर में मानवाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए सभी देशों को मिलकर मजबूत इरादों के साथ प्रयास करना होगा।

आधुनिक राष्ट्र राज्यों के लिए वैश्वीकरण अनिवार्य आवश्यकता है। वैश्वीकरण मुख्य रूप से बाजार से जुड़ा हुआ है जिसमें विश्व बाजार में प्रतियोगिता होती है। लेकिन अर्थ व्यवस्था के साथ–साथ वैश्वीकरण में मानव जीवन के हर पहलु को प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के दौर में तकनीक ने दुनिया को जोड़ा है, इलेक्ट्रोनिक मीडिया ने एक वैश्विक सस्कृति का निर्माण करते हुए देश काल की सीमाऐं समाप्त कर दी है। वैश्वीकरण के माध्यम से सूचनाऐं आदान प्रदान की जा सकती है। तीसरी दुनिया के देशों का विकास किया जा सकता है। लेकिन वैश्वीकरण के कारण ठीक इसके विपरीत तीसरी दुनिया के देशों का शोषण हो रहा है। बड़े देशों द्वारा छोटे व विकासशील देशों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये जा रहे है। विकासशील देशों के कुटीर उधोग धन्धे नष्ट हो रहे है। इसलिए उनमें बेरोजगारी बढ़ रही है। पर्यावरण विषैला होता जा रहा है। नैतिकता का पतन हुआ है। सास्कृतिक प्रदुषण की समस्या पैदा हो रही है। गलाकाट प्रतियोगिता के कारण आम आदमी का जीवन खतरे में पड़ गया है। सघर्ष व योग्यतम की विजय के सिद्वान्त को अपनाया जा रहा है जो कि मनुष्य के लिए

आदर्श स्थिति नही है। वैश्वीकरण के इस युग में आर्थिक साम्राज्य को बढावा मिला है। जिसमें गरीब देशों का शोषण हो रहा है। वैश्वीकरण में समानता की अवधारणा तार–तार हो गई है। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच असमानता बढी है। ऑक्सफेम की रिर्पोट के अनुसार ''वैश्विक स्तर पर आठ लोगों के पास जितनी सम्पति है उतनी ही दुनिया की 50 प्रतिशत गरीब आबादी के पास है। जिनकी संख्या लगभग 3.6 अरब है।'' जब दुनिया में इतनी आर्थिक असमानता है तो न्याय नहीं हो सकता और न्याय के अभाव में अधिकार संभव नहीं है।

वैश्वीकरण के दौर में मानव का नैतिक पतन हुआ है, भ्रष्टाचार बढ़ा है, हमारी स्वतंत्रता सीमित हुई है तथा स्वतंत्रता बाजार से निर्धारित होने लगी है। मानव अधिकार एक व्यापक अवधारणा है। 10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा में प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के नाते स्वतंत्रता, समानता, तथा जीवन का अधिकार प्रदान किया गया। सभी प्रकार की दासता का अन्त किया गया, शोषण का अन्त किया गया तथा कानून के समक्ष समानता का अधिकार दिया गया। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन, परिवार व पत्र व्यवहार में अनावश्यक हस्तक्षेप की मना की गई। प्रत्येक स्त्री पुरूष को विवाह करने व परिवार बसाने का अधिकार, जीवन की सुरक्षा के लिए शरण लेने का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, रोजगार का अधिकार सभी को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार, अवकाश का अधिकार, शिक्षा व सस्कृति का अधिकार, कार्य करने के लिए उचित वातावरण का अधिकार, श्रमसंघ के निर्माण का अधिकार, खाना, पीना, पहनना आदि का अधिकार प्रदान किया गया अर्थात इस विश्वव्यापी घोषणा में यह कहा गया कि मानव को उक्त सुविधाऐं मानव होने के नाते मिलनी ही चाहिए। मानव अधिकार वे होते है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक होते है। इसके अभाव में व्यक्ति अपना विकास नहीं कर पाता।

यह अधिकार मानव को मानव होने के नाते प्राप्त होते है न कि किसी राष्ट्र विशेष का व्यक्ति होने के नाते। मानव अधिकार प्राप्त करने के लिए वैश्वीकरण के युग में जोर शोर से मांग उठाई लेकिन मानवाधिकार पूर्णरूप से प्राप्त नहीं हो पाये। वैश्वीकरण में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है उनके मावाधिकारों का हनन हो रहा है। कन्या भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, बलात्कार तथा उपभोग वाली सस्कृति के कारण उनका शोषण हो रहा है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 1000 पुरूषों के पीछे 940 स्त्री है। साक्षरता का अनुपात भी महिलाओं का कम है। शिक्षा जितनी पुरूषों के लिए आवश्यक है उतनी ही महिलाओं के लिए एक शिक्षित नारी ही अपने अधिकार के बारे में जान सकती है उन्हें प्राप्त कर सकती है। कामकाजी महिलाऐं वेतन की असमानता के साथ–साथ किसी न किसी प्रकार की हिसां की शिकार हो रही है। कामकाजी महिलाऐं ऑफिस के साथ–साथ अपना घर भी संभालती है जिससे महिलओं की जिम्मेदारी बढी है। कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ यौन उत्पीडन जैसी घटनाऐं आम बात हो गई है। फिर भी वैश्वीकरण के कारण महिलाऐं आपस में जुड़ी है उनके लिए रोजगार के अनेक अवसर पैदा हुए है। समुचा विश्व एक ग्राम बन चुका है सिगल वुमन वर्ड की अवधारण बलशाली हुई है। महिलाऐं आत्मनिर्भर हुई है लेकिन इनके साथ–साथ पारिवारिक रिश्तों की प्रगाढता में कमी आई है। परिवार टुट रहे है, तलाक की घटनाऐं बढ़ रही है। हालाकि महिलाऐं परिवार, समाज, राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है लेकिन यदि उन्हें शिक्षित किया जाये, उन्हे अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाये, पुरूषों द्वारा उनका अस्तित्व स्वीकार किया जाये तो वे अपनी भूमिका और अच्छी तरह निभा सकती है।

भूमण्डलीकरण के कारण नारी के ऊपर आश्रित घरेलु अर्थ व्यवस्था तहस–नहस होने लगी है तथा

पति–पत्नी के सम्बन्धों में कडवाहट होने लगी है, नारी एक–दूसरे रूप में सामने आने लगी है। उपभोक्तावाद के दौर में नारी एक शौ पीस बन चुकी है, विज्ञापन के रूप में आने लगी है। वैश्वीकरण के कारण ब्युटी कॉन्टेस्ट में भाग लेने वाली महिला आदर्श बन गई है लेकिन कॉरपोरेट जगत, विज्ञान व प्रौधोगिकी आदि के क्षेत्र में काम करने वाली महिला किसी की आदर्श नहीं बन पाई। मानवाधिकार उच्च वर्गो की औरतों तक सिमट कर रह गये लेकिन भुख से पीड़ित, बलात्कार की शिकार, कन्या भ्रुण हत्या, सामाजिक हिंसा, पारिवारिक हिंसा आदि से पीड़ित महिलाओं के लिए मानवाधिकार आज भी एक सपना बन कर रह गया है।

निःसन्देह वैश्वीकरण के युग में महिलाओं को अपनी स्थिति सुधारने के लिए अनेक अवसर प्राप्त हुए है। रोजगार के पर्याप्त अवसर बढ़े है, सुरक्षा की भावना बढ़ी है, पुरूषों की दासता से मुक्ति मिली है, इससे वे भयमुक्त भी हुई है लेकिन वास्तविक रूप से महिलाओं का विकास कम व शोषण ज्यादा हुआ है। महिलाऐं बाजार की ब्रांड बनकर रह गई है। सदियों से दबी कुचली औरते आज भी शोषण के दौर से गुजर रही है उन्हे अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मानवाधिकार वैश्वीकरण के युग में गरीब लोगो के लिए सीमित हुए है क्योकि वर्तमान समय में मुक्त व्यापार को बढावा देकर एक विश्व बाजार का निर्माण हुआ है। लेकिन इस बाजार में तीसरी दुनिया के गरीब देश जिनकी अर्थव्यवस्था कुटीर उधोग धन्धों व कृषि पर आधारित हैं अमीर देशों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते फलस्वरूप उन्हें भारी हानि उठानी पड़ती है। जिसका प्रभाव उनके जीवन स्तर पर पड़ता है। आय में कमी होती है, बेरोजगारी बढ़ती है फलस्वरूप कृषि करने वाले, कुटीर उधोग धन्धे वाले, बहुराष्ट्रीय कंपनियों में मजदूरी करने पर मजबूर हो जाते है। जहां उनका शोषण होता है और जहां शोषण होता है वहा मानवाधिकार सुरक्षित नहीं रहा सकता। वैश्वीकरण में श्रमिकों की दशा बदतर हो गई है। वे पूंजीपतियों के अधीन हो गये है, उनका विस्थापन हुआ है, बेरोजगारी बढ़ी है तथा सामाजिक सुरक्षा की भावना में कमी आयी है। रोजगार के अवसर बढ़े भी है तो गैर कृषि क्षेत्रों में जहा उनका भविष्य सुरक्षित नहीं है ऐसे क्षेत्रों में ना तो श्रम के लिए उचित वातावरण मिलता है और न ही सामाजिक सुरक्षा।

इस दौर में कृषि में नगदी फसलों को पैदा करने हेतु ध्यान दिया जाता है जिससे खाद्य संकट पैदा होता है, भुखमरी फैलती है। कृषि में नई तकनीक व उपकरणों के कारण किसानों के बीच असमानता बढ़ी है। औधोगीकरण के लिए किसानों की भूमि का अधिग्रहण किया जाता है जो कि किसान व पुजींपति के बीच विद्वेष की भावना बढ़ाता है। अनावश्यक विवाद पैदा होते है। हालांकि सरकार किसानों का भुमि के बदले पैसे देती है। लेकिन एक बार किसान जब अपनी भूमि से विस्थापित हो जाता है तो वह दर–दर भटकता रहता है। उसकी हालत दयनीय हो जाती है। वर्तमान समय में औधोगीकरण पर ज्यादा अधिकार पुंजीपतियों का है। वर्ण व्यवस्था के कारण दलित वर्ग का जो शोषण हो रहा था वो आज भी जारी है। दलित वर्ग का शैक्षणिक स्तर कमजोर होने के कारण वो आज भी तकनीकी रूप से अच्छे समझे जाने वाले रोजगारो से जुड़ नहीं पाये। वैसे भी वैश्वीकरण संघर्ष व योग्यतम की विजय के सिद्वान्त पर चलता है जिसमें सदियों से शोषित व पीड़ित वर्ग कैसे अपना विकास कर सकता है। इस युग में वही आगे बढे जो पहले से ही प्रभावशाली थे।

आरक्षण की प्रक्रिया से इस वर्ग की दशा सुधारने के प्रयास किये गये है। लेकिन वो पर्याप्त नहीं है। क्योंकि निजी क्षेत्र में कोई आरक्षण की व्यवस्था नहीं है, ऐसे में दलित वर्ग के लोग अपने मानवाधिकारों के लिए लड़ सके संभव नहीं है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया आदिवासियों की जीवन शैली में भी परिवर्तन करना चाहती है

लेकिन आदिवासी आधुनिकता से अलगाववाद की भावना रखते है। इस दौर में उन्हे समाज की मुख्य धारा में जोड़ने के प्रयास किये जा रहे है जिससे उनका परम्परागत धन्धा छुट जाता है फलस्वरूप न तो वे अपने परम्परागत धन्धे कायम रख पाते और न ही आधुनिक। अतः उनकी स्थिति और गरीब हो जाती है, बेरोजगारी बढती है, कर्ज के बोझ तले दब जाते हैं। औधोगीकरण के कारण जो भूमि अधिग्रहण की जाती है उनसे भी उनके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जंगलो पर जनजाति के लोगों का वर्चस्व रहा है लेकिन जंगलों में भी सरकार ने हस्तक्षेप करना चालू कर दिया है जिसका सबसे ज्यादा प्रभाव आदिवासियों पर पड़ा है, वे अपने जीवनयापन का साधन खो चुके है। शिक्षा के अभाव के कारण आज भी आधुनिकीकरण के दौर में प्रदत्त रोजगारों में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नही है। खाने–पीने के लिए भी उन्हें साहूकारों से कर्ज लेना पड़ता है जिससे वे कर्ज के बोझ तले दबते है तथा साहूकार उनका शोषण करते है वे आदिवासियों को अपने यहा सस्ती दर पर मजदूरी करने के लिए मजबूर कर देते है।

ऐसे में उनके मानवाधिकार कहा सुरक्षित रह सकते है। वैश्वीकरण के कारण गरीब लोगों का जीवन नारकीय बन गया है। विश्वशान्ति की संभावना की चर्चा में महात्मा गांधी ने कहा था कि ''बड़े राष्ट्र जब तक आत्मा का नाश करने वाली प्रतिस्पर्धा में विश्वास करना बन्द नहीं करेगे और अपनी आवश्यकताऐं व भौतिक सम्पति बढ़ाते रहेगे तब इसकी कोई संभावना प्रतीत नहीं होती है।'' वैश्वीकरण के दौर में मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सुधार हुआ है, रोटी कपड़ा और मकान जैसी सुविधाओं में बढौतरी हुई है। लेकिन समस्या यह है कि अमीर व गरीब के बीच की खाई बढती जा रही है। गाधी जी ने कहा है कि ''येन केन प्रकारेण अधिक सम्पति बनाने और धन कमाने के पीछे भोगवादी उपभोगतावादी उप संस्कृति है इससे देश में व्याप्त भ्रष्ट्राचार, कालाबाजारी, अपसंचय, धन का केन्द्रीकरण, तस्करी, धोखेबाजी, मिलावट आदि दुर्गुण अपनी चरम सीमा पर है और इसके कारण गरीबी, बेरोजगारी, अभाव, विषमता आदि का साम्राज्य छाया हुआ है।

इसी संदर्भ में गांधी जी ने कहा है कि जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना सिखाता है और कमजोरो को हानि पहुंचाकर सबलों का दौलत जमा करने देता है वह झुठा और अमान्य अर्थशास्त्र है। वह मृत्यु का दूत है। इसके विपरीत सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय की हिमायत करता है। वह सब की जिसमें दुर्बल से दुर्बल भी शामिल है।'' निजीकरण व उदारीकरण जिस गति से बढ़ा है उसी गति से आम लोगो के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य रोजगार आदि की व्यवस्थाऐं कम हुई है। सामाजिक सुरक्षा का भाव कम होता जा रहा है। वैश्वीकरण सामाजिक विविधता के प्रति उदासीन है। इसमें गरीबो के लिए कोई स्थान नही है। मानव जीवन का मशीनीकरण हो गया है व शहरी, शिक्षित व सम्पन्न वर्ग के लोग ऐसे अवसरों का ज्यादा फायदा उठाने में सक्षम रहे जो विदेशी विनिवेश से पैदा हो रहे है लेकिन उनकी तुलना में ग्रामीण अशिक्षित व गरीब वर्ग के लोग विदेशी विनिवेश के फायदे से ज्यादा लाभ उठाने की स्थिति में नहीं है। फलस्वरूप आर्थिक असमानता पैदा होगी जिससे मानव मानव के बीच में द्वेष व घृणा की भावना पैदा होगी ओर मानवाधिकारो को ठेस पहुंचेगी।

निष्कर्ष :–

हम यह कह सकते हैं कि वैश्वीकरण के युग में जो योग्य शिक्षित सम्पतिशाली मनुष्य है, उन्हें मानवाधिकार प्राप्त हुऐं है लेकिन कमजोर वर्ग के लोग, मजदूर वर्ग के लोग तथा महिलाओं के मानवाधिकार अभी भी सीमित है। इसलिए वैश्वीकरण के युग में मानवाधिकारों को आगे बढ़ कर लागू करने का प्रयास करना चाहिए।

गरीब, अशिक्षित, बच्चे, महिला, मजदूर, आदिवासी, दलित सभी की तरफ ध्यान देना होगा उनका आर्थिक विकास करना होगा तभी मानवाधिकार सुरक्षित हो सकेगें।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. पुखराज जैन, राजनीति विज्ञान के मूल आधार, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. राजस्थान पत्रिका श्रीगंगानगर, राजस्थान।
3. मनीष कुमार, महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा।
4. डॉ. ए जी एन वाजपेयी, प्रो.ज.प्र. शुक्ल, गाँधी का आर्थिक चिन्तन।
5. वन्दना वोहरा, वैश्वीकरण में नागरिकता, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. श्याम बाबू शर्मा, वैश्वीकरण के आयाम, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली।
7. डॉ. प्रभुदत्त शर्मा, वरिष्ठ जन के मानवाधिकार, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
8. राजबाला सिंह, मानवाधिकार और महिलाऐं, आविष्कार पब्लिशर्स जयपुर।
9. श्रीमती मन्जु शर्मा, नारी के प्रति अत्याचार एवं मानवाधिकार, मार्क पब्लिशर्स, जयपुर।
10. रमा शर्मा, एम के मिश्रा, महिला और मानवाधिकार, अर्जुन पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली।
11. उर्मिला जैन, मानवाधिकार और हम, परमेश्वरी प्रकाशन दिल्ली।
12. सुभाश मिश्र, मानवाधिकार का मानवीय चेहरा, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 21-28

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जनजातीय क्षेत्र पांगी की धार्मिक लोक कथाओं का सामाजिक विश्लेषण

राज कुमार

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हि.प्र. विश्वविद्यालय, शिमला।

धर्म पांगी घाटी की लोक संस्कृति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। पांगी जनजातीय समाज के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं दिखाई देता, जो धर्म द्वारा संचालित न होता हो। पांगी घाटी के स्थानीय देवी–देवताओं, रीति–रिवाजों, मेले–त्यौहारों के पीछे कोई न कोई धार्मिक लोकविश्वास अवश्य रहता है। यहां धर्म को ही अगर लोक संस्कृति का मूल कहा जाए, तो अनुचित नहीं होगा।

भारतीय जीवन दर्शन का मूल आधार अध्यात्म रहा है। वर्तमान आधुनिक युग में भी भारतीय लोकजीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो बिना किसी दैवीय शक्ति की सहायता से किया जाए। पंगवाल जनजातीय समाज में भी देवी–देवता के प्रति अगाध आस्था है। हो भी क्यों न, ऐसे कठिन तथा परिश्रमसाध्य क्षेत्र में जीवन–यापन करना किसी चमत्कार से कम भी नहीं है। पांगी घाटी के देवी–देवता अपने–अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ है। कोई खनिज का संरक्षक देवता है तो कोई पशुधन का, कोई वर्षा का देवता है, तो कोई व्याधियों से रक्षा का। देवी–देवताओं से सम्बन्धित लोक कथाएं पगवाल लोकमानस में आज भी विद्यमान है।

भारतवर्ष की हिन्दू धर्म परम्परा में पौराणिक ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन पौराणिक ग्रन्थों में हिन्दू देवी–देवताओं के जीवन चरित्र से सम्बन्धित कथाएं शामिल हैं। पांगी घाटी में प्रचलित पौराणिक लोक कथाओं की विषय वस्तु पुराणों से भिन्न स्थानीय लोक विश्वासों पर आधारित है। पांगी घाटी में प्रचलित पौराणिक देवी देवताओं से सम्बन्धित निम्नलिखित लोक कथाएं मिलती हैं –

1. शिव-पार्वती तथा गंगा मैया की लोककथा :-

जनजातीय लोक मानस में भगवान शिव तथा गंगा मैया के मिलन सम्बन्धी लोक कथा प्रचलित है जो निम्नवत रूप से प्रस्तुत है –

'जेखे भगवान विष्णु जगत कल्याण दि हवन कन लग्गा त तस हवन दि फुल घटे। तनि कैलाशे क्या शिव बुलऊआ तठा तसे धेर सुने कडणी दीके से फुले अहाने दि लऊआ। शिव फुल चुंणता चुंणता गंगवाड़ी धार पुज्जा। तस चिश बि लगोथी। तड़ि दूर तुकर पांणी नौतु केन लगोरु। फुले चुंणत चुंणत तसे हते हलु डा ईतू। तसे जढ़ि क्यां पांणी निसतु। से गंगवाड़ी पर्वत क्यां निथोरु पांणी थिंयू। से जेखे तस पांणी पीता तठा हथ मूं छलाता त तस पांणी क्यां गौरा रांणी निथी। तनि भगवान शिव क्यां पुछु कि, तु क भा? तेंइ बिना पुछंणे माँ पांणी किस मैलू क्यूं। भगवान शिवे बोलु, पेहले तु बता, तु क भा? तौ नऊं कि अइ। गंगाइ बोलु, मूं नऊं गंगा अस्तु।

विष्णु माँ बब भा तठा धरती माँ इजी। अतरु शुंणी के शिवे तस जे हसाड़ क्यां कि, तां त तु माँ साड़ी लगती। हसाड़े अन्तर दुहियो अख होरि भोइ घेते। शिव भगवान गंगाइ जटाइ अंतर नियोकाता। तेखे फुले घिन के वापस घेता।

विष्णु भगवान त सोभ पता भूता पर से चाहता कि अस बोकी सोभियां पता लगे। से अख जलसा कराता जथ अन्तर सोभ देवता शिव रज्जी भंग पियाते। भंगी नशें अन्तर शिव तांडव कत्ता। तांडव कथ–कथ तसे जटा खुल घेती होर गंगा सोभांणी के साम्हणे येयी घेती। माता पार्वती अप्पु भतार जे पराइ झलांणु हेरि के नाराज भूंति। से नाराज़ भोइ के अप्पु मायके दि घेती। पर माता पार्वती अप्पु मायके बि न पुजति। से बुच बथ अख घते नाह नियोकती। भगवान शिव तस हेन दि काग ऋषि लंङाता। काग ऋषि से केई घेती। से घते नाह क्यां शैवाई घिन के भगवान शिवे धेर दाता। भगवान शिव समझ घेता। से पार्वतिया मनई के वापस अहाता। पार्वती गौराई हेरि गुस्सा भूति। जेखे गौरा बताती कि माँ माताइ नऊं धरती अई तठा बब नऊं विष्णु। तेखे पार्वती लेहर मुक्ती से खुश भूती कि माँए भैंण माँ सोकण बंणी के येरी।

लोककथा में उपलब्ध संकेत के अनुसार एक बार भगवान विष्णु जगत कल्याण हेतु हवन कर रहे थे। हवन करते वक्त उसे फूल कम पड़ गए। उसने भगवान शिव को सोने की कडणी (बर्तन) देकर फूल लाने के लिए भेजा। भगवान शिव फूल चुनते–चुनते गंगवानी नामक पर्वत पर पहुँच गए। वहां उसे दूर तक कहीं भी पानी नहीं दिखा। फूल चुनते–चुनते उसके हाथ में हलु नामक घास की जड़ आ गई, जिसकी जड़ से पानी का स्त्रोत फूट पड़ा। यह गंगवानी नामक पर्वत से बह रही जल धारा थी। भगवान् शिव को प्यास भी लगी थी। वह उस जलधारा के पास गया। उसने उस जलधारा में अपना हाथ मुंह धोया और जैसे ही वह जल पीने लगा तो उस जलधारा में से गंगा मैया प्रकट हुई। उसने क्रोध में आकर भगवान् शिव से कहा कि तुमने बिना मेरी अनुमति के कैसे मेरे जल को दूषित किया है। तू है कौन?

भगवान् शिव ने कहा, पहले तुम बताओ कि, तुम कौन हो? माता ने उत्तर दिया– मेरा नाम गंगा है। विष्णु मेरे पिताजी हैं और धरती मेरी माता है। गंगा मैया का उत्तर सुनकर भगवान् शिव ने उसके साथ हास–परिहास करते हुए कहा कि तब तो रिश्ते में तुम मेरी साली हो। इसी हास–परिहास में दोनों परिणय सूत्र में बंध जाते हैं। भगवान् शंकर उसे अपनी जटाओं में छुपा कर अपने साथ बैकुण्ठ धाम ले जाते हैं। भगवान् विष्णु सब कुछ भली–भान्ति जानते हैं। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् भगवान् विष्णु एक उत्सव का आयोजन करते हैं तथा देवताओं के सहयोग से भगवान् विष्णु को खूब भांग पिलाते हैं। भांग के नशे में भगवान् शिव मस्ती में नाचने लगते हैं। नाचते–नाचते उनकी घटाएं खुल जाती है और गंगा मैया सबके सामने आ जाती है। अपने पति के साथ स्त्री को देखकर माता पार्वती क्रोध की कोई सीमा नहीं रहती। वह माता गंगा के साथ लड़ने लगती है और रूठ कर अपने मायके की ओर चली जाती है। रास्ते में वह एक घराट के पास नाली में छिप जाती है। भूख लगने पर माता पार्वती शैवाल नामक घास खाकर अपनी भूख मिटाती है। भगवान शिव माता पार्वती को समझा–बुझाकर वापिस कैलाश पर्वत पर लेकर आते हैं, जहां पर गंगा मैया अपना परिचय देती हुई कहती है कि मेरा नाम गंगा है, धरती मेरी माता है और विष्णु मेरे पिता हैं। परिचय सुनकर माता पार्वती को समझ में आ जाता है कि मेरी बहन ही मेरी सौतन बनकर आई है।

प्रस्तुत लोक कथा के सभी पात्र पौराणिक हैं, लेकिन इन सब के आपसी रिश्ते स्थानीय लोक विश्वासों

पर आधारित है। पंगवाल जनजातीय लोकमानस भगवान् विष्णु को पिता तथा धरती को माता के रूप में स्वीकार करता है। जिस प्रकार पितृप्रधान समाज में घर की व्यवस्था का उत्तरदायित्व पिता कन्धों पर होता है, उसी प्रकार पिता होने के नाते भगवान् विष्णु को जगत कल्याण हेतु यज्ञ करते हुए दर्शाया गया है। पंगवाल लोकमानस माता पार्वती तथा गंगा मैया को भगवान् विष्णु की पुत्रियों के रूप में मान्यता देता है, जिस कारण भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णु के मध्य ससुर तथा दामाद का सम्बन्ध स्थापित होता दिखाई देता है।

उक्त सन्दर्भ पंगवाल लोकमानस के लोक विश्वासों, मर्यादाओं तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आस्थाओं को प्रस्तुत करते हैं।

2. चन्द्रग्रहण सम्बन्धी लोककथा :–

चन्द्रग्रहण क्यों लगता है, इस सम्बन्ध में पंगवाल जनमानस में एक लोककथा प्रचलित है जो निम्नवत रूप से प्रस्तुत है –

'विष्णु भगवाने घ्या पार्वती गंगा, काली कस्तूरी तठा जूनी भरांणी नऊंए चौर कुई तठा चन्द्र सूरज नऊंए दू क्वे जमें। भगवान विष्णु पंडत क्यां पत्री पढ़ाइ के तन्हे नऊं थियौए। अख बार धरती पुठ भारी अकाल येयूआ। भगवान विष्णु घ्या बि अन्ने फाके पड़े। से अन्ने दांणे– दांणे दि अकी होरी घ्या भटका, पर तस कोड़ि बि अन्न न मिला। से भुंजता–भुंजता राहू केतु द्वार पुज्जा। तठा तन्हे क्यां अन्न दि याचना कन लग्गा। राहूकेतुए तस दि अख शर्त थियेइ। कि अग्गर तु अप्पु सोभियां क्यां मठणी कुई जूनी भराणी ब्याह अंसे जे करांणे कौल वचन दाता त अंस तौ अन्न दांण दि तयार अई। मजबूरियां अन्तर भगवान विष्णु कौल वचन दि छटा। अनाजे बदले भगवान विष्णुजी जूनी भरांणी ब्याह तन्हे जे कराइ छड़ा। ब्याह क्यां बाद राहू केतु जूनी भरांणी पुठ स्वाहा अत्याचार कतेथ। अख बार राहू केतु अख महीने शिकार पुठ गेथे। बख्त बितते बितते सूरज चन्द्र बि जवान भोइ गेथे। से दुहियो घुमते–घुमते अख पनिहारे के पुज्जे। तड़ि अख कुइ रोलती रोलती तेले जे सनोरे झेंड़े धूंण लगोथी। से तस जे हसाड़ कन लगे। तन्हे तस कुइ नऊं पुछु। तनि बोलु मूं नऊं जूनी भरांणी अई। धरती माँ इजी भा तठा विष्णु माँ बब भा। सूरज चन्द्रे से परांणी छड़ि कि अ त हैंइ भैंण भा। से अप्पु किये पुठ पछतांणे लगे। जूनी भरांणी बि से प्राणी छड़े। तेखे से तन्हे गड़े मिलि। से सोभ कुछ अप्पु भईयां बतई छटी। राहू केतु शिकार घेंणे फायदा उठई के चन्द्र अप्पु पठ चीता तठा जूनी भराणी तस अन्तर नियोक्ता के अप्पु घ्या घिन ईता। जेखे राहू केतु घ्या पुजते त तन्हे जूनी भरांणी न केती। से तस तोपते तोपते तसे मायके पुजते। पर सूरज तठा चन्द्र तस अबे राहू केतु जे न लंघाते। राहू केतु सूरज चन्द्र जे यूद्ध कते पर हारिं घेते। तंहड़ा बाद जेखे बि राहू केतु जूनी भरांणी याद ईती त से सूरज तठा चन्द्र ग्रसते।

लोककथा में उपलब्ध संकेत के अनुसार भगवान विष्णु के घर माता पार्वती, गंगा, काली कस्तूरी तथा जूनी भराणी नामक चार कन्याओं तथा चन्द्र तथा सूरज नामक दो पुत्रों ने जन्म लिया। विष्णु भगवान ने पण्डित से जन्मपत्री बनवा कर अपने बच्चों का विधिवत नामकरण करवाया। एक बार पृथ्वी पर भयंकर अकाल पड़ा। भगवान् विष्णु के घर भी अकाल पड़ा। अपने बच्चों तथा परिवार के जीवन निर्वाह के लिए भगवान् विष्णु अनाज के दानों के लिए दर–दर भटके। पर उन्हें कहीं भी अनाज नहीं मिला। आखिर भटक कर वह राहु–केतु के दर पर पहुँचे। राहु–केतु ने भगवान् विष्णु से कहा कि अगर तुम हमें कौल वचन दे देते हैं, तो हम तुम्हें अन्न देने के लिए तैयार हैं। भगवान् विष्णु ने मजबूरीवश कौल वचन दे दिया। कौल वचन ऐसा वचन होता है जिसे पूरा

ही करना पड़ता है। राहु–केतु ने अनाज के बदले विष्णु से उनकी छोटी पुत्री जूनी भराणी को माँग लिया। भगवान् विष्णु को अनाज के बदले अपना वचन पूरा करना पड़ा। राहु–केतु जूनी भराणी पर अत्यधिक अत्याचार करते थे। इस घटना को बीते कई वर्ष बीत गए। अब सूरज तथा चन्द्र भी जवान हो गए, परन्तु उन्हें अपनी बहन जुनी भराणी के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। एक दिन चन्द्र तथा सूरज घूमने निकले। घूमते–घूमते वह दोनों एक पनिहारे पर पहुँचे। वहां एक औरत तेल से सने कपड़े धो रही थी। सूरज तथा चन्द्र ने उस औरत के साथ हास–परिहास करने की कोशिश की। हास–परिहास मैं ही उन्होंने उस कन्या का परिचय पूछा। कन्या ने बताया कि मेरा नाम जूनी भराणी है। मेरे पिताजी भगवान् विष्णु हैं तथा धरती मेरी माता है। पिताजी ने मुझे ऋण के बदले राहु–केतु को सौंप दिया है।

परिचय सुनकर बालक चन्द्र तथा सूरज स्तब्ध रह जाते हैं। वह अपनी बहन को पहचान कर अपने किए पर पछताते हैं और अपनी बहन के गले मिलते हैं। वह अब जूनी भराणी को राहु–केतु के चंगुल से छुड़ाने पर विचार करते हैं। वे उससे पूछते हैं कि इस वक्त राहु तथा केतु कहां गए हैं। जूनी भराणी कहती है कि वे दोनों एक महीने के लिए शिकार पर गए हैं। यह सुनकर चन्द्र अपनी जांघ चीरकर जूनी भराणी को अपने पठ में छुपाकर बैकुण्ठ धाम ले आते हैं। जब राहु तथा केतु शिकार से वापिस आते हैं, तो उन्हें जूनी भराणी घर पर नहीं मिलती। उन्हें पता चल जाता है कि चन्द्र तथा सूरज जूनी भराणी को अपने साथ ले गए हैं। वह दोनों जूनी भराणी को वापस लाने के लिए चन्द्र तथा सूरज से लड़ते हैं लेकिन सफल नहीं हो पाते। जब भी उन्हें जूनी भराणी की याद आती है तो वह सूरज तथा चन्द्र को ग्रस्त हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण चाँद के पृथ्वी तथा सूर्य के बीच में आने की स्थिति को सूर्य ग्रहण मानता है। पृथ्वी का सूरज तथा चाँद के बीच में आने की स्थिति को चन्द्र ग्रहण लगने का कारण बताता है। लेकिन पंगवाल लोकसमाज में प्रचलित उपरोक्त लोक कथा के अनुसार सूर्य तथा चन्द्र दो भाई थे जो अपनी बहन जूनी भराणी को मुक्त कर घर लाए थे। इसी मुक्ति संघर्ष के रूप में आज भी राहु–केतु तथा सूरज चन्द्र संघर्ष जारी है। इस संघर्ष में जब राहु–केतु चन्द्र को ग्रस्ते हैं तो चन्द्र ग्रहण लगता है, लेकिन जब सूरज को ग्रस्ते हैं तो सूरज ग्रहण लगता है। हालांकि यह लोककथा पौराणिक लोककथा से मेल नहीं खाती, लेकिन पंगवाल जनमानस की अपने पर्यावरण में होने वाली हलचल के प्रति सचेत तथा जागरूक रहने की ओर संकेत करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

3. सूर्यग्रहण सम्बन्धी लोककथा :–

वैज्ञानिक दृष्टिकोण चन्द्रमा का पृथ्वी तथा सूर्य के बीच में आने की स्थिति को सूर्य ग्रहण लगने का कारण बताता है, लेकिन पंगवाल लोकसमाज में प्रचलित उपरोक्त वर्णित लोककथा के अनुसार 'सूर्य तथा चन्द्र दो भाई थे, जो अपनी बहन जूनी भराणी को राहु–केतु के चुंगल से मुक्त कर घर लाए थे। उसी मुक्ति संघर्ष के रूप में आज भी राहु–केतु तथा चन्द्र सूरज के मध्य संघर्ष जारी है। इस संघर्ष में जब राहु–केतु चन्द्रमा को ग्रस्ते हैं तो चन्द्र ग्रहण लगता है, जब सूरज को ग्रस्ते हैं तो सूरज ग्रहण लगता है।' हालांकि वर्तमान पीढ़ी सूर्य ग्रहण लगने के पीछे वैज्ञानिक कारणों को मानती है, लेकिन यह लोकविश्वास पंगवाल समुदाय की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा होने के कारण उस आम जनमानस के हृदय में भी रच बस गया है जो आज के इस वैज्ञानिक युग में भी ईश्वरीय सत्ता में अगाध विश्वास रखता है।

4. राजा बलि की लोककथा :–

राजा बलि की दान शीलता से सम्बन्धित लोक कथा का सन्दर्भ पुराणों में भी मिलता है। पंगवाल लोग समाज में भी पुराणों से मिलती–जुलती लोककथा आज भी प्रचलित है जो इस प्रकार से है –

'अख राजा थिंया। तस नऊं बलि थिंयू। से धरती स्वामी थिंया।से राजा बड़ा दानी थिंया। तसे दर पुठा कोइ बि खाली न घेतथ। सोभिंया लोक तसे चर्चे थिंये। तस परखंण दि विष्णु भगवाने अख बौने रूप धरा। भगवान विष्णु अख रोज साधू रूप अन्तर तसे घ्या येऊआ। राजे तस साधू बि रोटि खलई रोटि खींण पुथ बलिराजे तस साधू बि हीरे मोती दान कना लऊआ त तनि साधुए ना क्यां। बोता अऊं अख साधू भा अऊं कि कता हीरे मोतियां जे। अग्गर तु दान कनु चाहता त बस मूं टाई कदम धरती लेटी। राजे सोची टाई पग धरती, से बि अख बौने पगे हिसाबे जे। राजे वचन दी छड़ा। भगवाने अप्पु लीला हराली। तनि दुइ पग अन्तर सोभ धरती नापी छड़ी। राजे बलि अप्पु वचन निभांण दि च्येका पग अप्पु कपा पुठ धरा। जना ई भगवान वामने तसे कपा पुठ च्येका पग थियोऊआ। राजा बलि धरती अन्तर धंसी के पाताल लोक पुजी ग्या। भगवान वामन तसे दानी चरित्र हेरि के खुश भुंआ। तनि राजे बलि साले टाई रोज धरती राज दित्ताञ।

दंतकथा में संकलित सामग्री के अनुसार बहुत वर्ष पहले पृथ्वी पर बलि नामक एक दानवीर राजा हुआ करता था। वह पृथ्वी का स्वामी था। उसकी दानवीरता के चर्चे तीनों लोकों में थे। भगवान् विष्णु के मन में उसकी दानशीलता की परीक्षा लेने का विचार आया। उसने बामन अर्थात बौने का रूप धारण किया और भिक्षा माँगते हुए उसके दरबार में जा पहुँचा। राजा बलि ने उस साधु को भोजन कराया और अपने स्वभाव अनुसार उसे हीरे मोती के रूप में कुछ मुद्राएं देनी चाही। पर बामन ने स्वीकार करने से मना कर दिया। बामन ने कहा, मैं तो एक साधु हूं, भला मैं इन मुद्राओं का क्या करूंगा। महाराज, अगर आप मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो मुझे रहने के लिए केवल तीन पग धरती दान कर देना। राजा बलि ने सोचा, सिर्फ तीन पग धरती, वह भी इस बामन के पग से। उसने वचन दे दिया। भगवान् बामन ने अपनी लीला दिखाई और दो पग में ही समस्त धरती नाप ली। यह देखकर राजा बलि दंग रह गया। उसने अपने वचन तथा अपने कर्तव्य को निभाने हेतु प्रभु के समक्ष नतमस्तक होकर अपना शीश आगे किया और कहा प्रभु अपना तीसरा पैर मेरे सिर पर रख कर मेरे वचन को पूरा करो। भगवान् बामन ने जैसे ही अपना तीसरा पैर उसके सिर पर रखा। राजा बलि धरती के अन्दर धंस कर पाताल लोक पहुँच गया। भगवान् बामन राजा बलि की दानशीलता तथा वचनबद्धता से प्रभावित हुए और उसने वरदान स्वरूप तीन दिन तक पृथ्वी का राजा होने का उसे वरदान दे दिया।

इसी लोकविश्वास से प्रेरित होकर वर्तमान में भी समस्त पंगवाल जनजातीय समाज राजा बलि के सम्मान में लगातार तीन दिन तक राजा बलि की पूजा करते हुए हर्ष व उल्लास के साथ जुकारू उत्सव का आयोजन करता है। इस त्यौहार को पांगी घाटी में हर वर्ष फरवरी माह में नव वर्ष के रूप में मनाने की परम्परा है। नव वर्ष के उपलक्ष पर सभी पंगवाल अपने बड़े–बुजुर्गों के पैर छूकर तथा गले मिलकर नववर्ष के लिए सुखद जीवन का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इस त्यौहार के बाद यदि कोई व्यक्ति त्यौहार के दौरान अपने बड़ों का आशीर्वाद नहीं प्राप्त कर पाता है तो साल भर में अगले जुकारू तक इस बीच में जब भी अपने बड़ों के साथ पहली बार मिलता है तो उनके पांव छूकर तथा गले मिलकर शुभ आशीष प्राप्त करता है। इस अवसर पर पंगवाल लोग अपने घर में राजा बलि का चित्र उकेरते हैं। राजा के लिए तरह–तरह के व्यंजन रूप में तैयार कर पूजा करते

हैं। इस अवसर पर लगभग तीन दिन घर में ऐसे कार्यों का निषेध रहता है जिन्हें करते समय ठक–ठक की आवाज आती है। जैसे आग जलाने के लिए लकड़ी का काटना। इस विश्वास के चलते त्यौहार से दो–तीन दिन पूर्व ही पर्याप्त मात्रा में लकड़ी काट कर रख ली जाती है, ताकि दानवीर राजा के सम्मान समारोह में कोई बाधा न आए, क्योंकि पंगवाल लोकमानस में मान्यता है कि ठक–ठक की आवाज करने से राजा बलि का सिर फट जाता है, अर्थात उसका सम्मान भंग हो जाता है।

4. राम की लोककथा :–

भारतीय हिन्दू समाज में या के राजा दशरथ के पुत्र श्री राम का जीवन चरित महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पंगवाल जनजातीय समाज भी इसका अपवाद नहीं है। पंगवाल जनजातीय समाज में राम के जीवन चरित्र से सम्बन्धित लोककथा चरित्र की विविधता के साथ–साथ रामायण की कथा से बिल्कुल मिलती–जुलती है जो राम के रूप में एक आदर्श पुत्र, भाई, पति तथा एक प्रजा पालक राजा का आदर्श प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त पंगवाल जनजातीय समाज में राम कथा पर आधारित प्रसंग के रूप में 'भगवान राम तथा भाई लक्ष्मण के शिकार खेलने सम्बन्धित दंतकथा' प्रचलित है जिसका अंश विश्लेषण हेतु निम्नवत प्रस्तुत है –

'अख फेर भगवान राम तठा लच्छम्ण शिकार खलंण दि ग्ये। से दुहियो शिकार हेते–हेते कजली बिजली वन पुजे। पर तन्हे दिन भरि कुछ न मिलु। हंठि–हंठि के थकंणे बेलि तन्हे। भियूख बि लगि ग्येइ। बेदि बख्त भगवान राम अख तीतर केऊआ। तनि अप्पु धनुषे जे तस पुठ बाण ठोका। बाणे बेलि से मरि ग्या। तनि अप्पु भई जति दि हक ठोकी, हे जति मूं भियुख लगोरी तु जल्दी कोड़ि आग तोपी के इस तीतर पकाणी आर। भइ जति आग तोंपण लग्गा। आखिरिया तस अख कूंणे पुठ धुंआ केऊआ। से तड़ि घेइ के तीतर पकांड़ि के घिन येऊआ। तन्हे तनु के अप्पु भियुख मुकइञ।

एक बार राम तथा लक्ष्मण शिकार खेलने गए। वे दोनों स्कार की खोज में कजली बिजली नामक बन में पहुँचे, लेकिन दिनभर भटकने के बावजूद भी उन्हें शिकार नहीं मिला। दिनभर भटकने के कारण राम को बहुत भूख लगी थी। शाम होते–होते भगवान राम ने अपने बाण से एक तीतर को मारा और अपने भाई जति (लक्ष्मण) को कहा कि वह कहीं आग खोज कर इस चित्र को भून कर ले आएं। भाई जति आग की खोज में इधर–उधर भटकता है। आखिर में उसे एक नदी के किनारे धुआं उठता दिखाई देता है। वह वहां जाकर तीतर भून कर ले आता है। दोनों भाई साथ बैठकर तीतर खाकर अपनी भूख शाँत करते हैं।

भगवान राम के जीवन चरित्र को आधार बनाकर संस्कृत काल में महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास ने इसी ग्रन्थ से प्ररेणा लेकर रामचरितमानस नामक महाकाव्य रच डाला। यह दोनों ग्रन्थ समस्त हिन्दू धर्म के लिए हमेशा से ही प्रेरणा के स्त्रोत रहे हैं। पंगवाल जनजातीय समाज में रामायण से सम्बन्धित लोक कथा हू–बहू मिलती है तथा राम के जीवन चरित्र से सम्बन्धित विभिन्न प्रसंग दंत कथाओं के रूप में पांगी घाटी में प्रचलित हैं। प्रस्तुत प्रसंग में राम तथा लक्ष्मण के शिकार खेलने की बात की गई है। पांगी घाटी में प्रचलित राम सम्बन्धी लोककथा में चरित्र की विविधता तथा विषय वस्तु की दृष्टि से स्थानीय लोग विश्वासों का पुट दिखाई देता है।

5. पाण्डवों की लोककथा :–

भारतवर्ष में रामायण तथा महाभारत दो ऐसे धार्मिक ग्रन्थ है जो यहां के हिन्दू समाज की लोक संस्कृति

तथा जीवन मूल्यों का अभिन्न हिस्सा बन गए हैं। पंगवाल जनजातीय समाज भी इसका अपवाद नहीं है। मनुष्य के कर्म ही उसकी नियति बनते हैं, यह सन्देश देने वाला पांगी घाटी में प्रचलित पाण्डवों के जीवन का सन्दर्भ लोककथांश के रूप में निम्नवत् प्रस्तुत है –

'महाभारते युद्धे क्यां बाद जेखे पांडव स्वर्ग दि ग्ये। अग्गर अग्गर सोभियां क्यां जेठा भई युद्धिष्ठर थिंया। तस क्या पते माता कुन्ती, द्रोपदी, नकुल, सहदेव, भीम तठा अर्जुन थिंया। स्वर्ग दि घेंते बख्त से अख अख करके पत्ते छूटते। सोभियां क्यां पेहला द्रोपदी पते छुटती। होरे पांडव युद्धिष्ठरे क्यां पुछते कि अ किस पते छुटी। युद्धिष्ठर बोलु अस अप्पु रूप पुठ घमंण्ड थिंया। जस पत्तियां अनि अप्पु सगे भाई अप्पु बुच झगड़ऊए। तनि पापे आज अ बुच बथ छुटि। तस क्यां बाद माता कुंन्ती बुच बथ छुटि। होरी के पुछंणे क्यां बाद युद्धिष्ठरे बोलु, माता कुन्ती हलड़ जमाँनें पापे बेलि छुटि। फिरि नकुल बुच बथ छुटा। युद्धिष्ठरे बोलु, अस बि अप्पु रूपे घमंड थिंया, तस पापे अ बि पते छुटा। फिरि सहदेव बुच बथ छुटा। युद्धिष्ठरे बोलु अस बि अप्पु ज्ञान पुठ घमंड थिंया। तो तां आज बुच बथ छुटा। तंहड़ा बाद भीम बुच बथ छुटा। युद्धिष्टरे बोलु कि अस अप्पु बल पुठ घमंड थिंया तां आज पते छुटा। सोभियां क्यां पते अर्जुन छुटा। युद्धिष्ठर बोता अनि महांणु, चड़ी–चखरू अप्पु बांणिहा जे चुंणी चुंणी के मारो थे, तस पापे आज अ बि बुच बथ छुटा। अबे अख अक्ला युद्धिष्ठर तठा अख कुतर बचता। देवराज इंद्र स्वर्ग क्यां विमाँण लंङाता। युद्धिष्ठर तठा से कुतर अप्पु खरे कर्मे बेलि स्वर्ग पुजी घेतेञ।

जनश्रुति के अनुसार महाभारत के युद्ध के पश्चात् अपने अंतिम समय में समस्त पाण्डव स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर रहे थे। सबसे आगे–आगे धर्मराज युधिष्ठिर चल रहे थे। उसके पीछे माता द्रोपदी, माता कुन्ती, नकुल, सहदेव, भीम तथा अर्जुन थे। प्रस्थान के समय सबसे पहले माता द्रोपदी आधे रास्ते में ही पीछे छूट जाती है। सभी पाण्डव युधिष्ठिर से पूछते हैं कि द्रौपदी किस पाप के कारण पीछे छूट गई है। युधिष्ठिर बताते हैं कि पांचाली को अपने रूप पर अभिमान था, जिसके चलते उसने अपने सगे सम्बन्धियों को आपस में लड़ाया, उसी पाप के कारण वह आज आधे रास्ते में ही छूट गई है। उसके बाद आगे बढ़ने के पश्चात् कुछ दूर ही माता कुन्ती भी बीच रास्ते में ही पीछे छूट जाती है। पूछने पर युधिष्ठिर बताते हैं कि माता कुन्ती ने कर्ण के रूप में नाजायज औलाद को जन्म दिया, जिस पाप के कारण वह आज पीछे छूट गई है। उसके पश्चात् नकुल पीछे छूट जाते हैं। युधिष्ठिर बताते हैं कि नकुल को भी अपने सुन्दर रूप पर अधिक अभिमान था जिस पाप के कारण वह भी बीच रास्ते में ही छूट गया है। नकुल के बाद सहदेव भी पीछे छूट जाता है। युधिष्ठिर बताते हैं कि सहदेव को अपने ज्ञान के ऊपर बहुत घमण्ड था जिस पाप के चलते वह आज पीछे गया है। उसके पश्चात् भीम भी बीच रास्ते में ही रह जाते हैं। युधिष्ठिर कहते हैं कि भीम को अपने बल के ऊपर बहुत घमण्ड था जिस पाप के चलते वह भी बीच रास्ते में ही छूट गया है। अन्त में अर्जुन भी अपनी स्वर्ग की यात्रा पूरी नहीं कर पाते। युधिष्ठिर बताते हैं कि अर्जुन ने अपने बाणों से मनुष्यों के साथ पशु–पक्षियों को भी चुन–चुन कर मारा है, जिस कारण अर्जुन भी स्वर्ग में पहुँचने में सफल नहीं हुए हैं। सत्य तथा धर्म के प्रतीक राजा युधिष्ठिर तथा उसके साथ आया एक कुत्ता बचते हैं। युधिष्ठिर के कर्मों से प्रभावित होकर स्वर्ग से राजा इन्द्र विमान भेजते हैं और उन्हें स्वर्ग ले जाते हैं।

भारतीय हिन्दू सनातन धर्म में कर्मानुसार स्वर्ग तथा नर्क पाने की कल्पना की गई है। प्रस्तुत लोक कथा इसी सन्दर्भ को प्रस्तुत करती है। धर्म तथा सत्य के मार्ग पर चलकर जीवन व्यतीत करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर

अपने कर्म के अनुरूप स्वर्ग रूपी मोक्ष प्राप्त करते हैं। जबकि उनके विपरीत जीवन निर्वाह करने वाले उसके परिवार के सदस्य माँ कुन्ती, द्रोपदी, भाई नकुल, सहदेव, भीम तथा अर्जुन सांसारिक बन्धनों से मुक्त नहीं हो पाते। प्रस्तुत लोक कथा के माध्यम से पंगवाल लोकमानस अपनी भावी पीढ़ी को अधर्म तथा असत्य का मार्ग त्याग कर धर्म तथा सत्य के मार्ग पर चलने तथा जीवन जीने की प्रेरणा देता रहा है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि पांगी घाटी का हिन्दू समाज पौराणिक देवी–देवताओं को अपने आराध्य के रूप में पूजता है। पंगवाल जनजातीय समाज धरती को माता तथा भगवान् विष्णु को जगत पिता के रूप में पूजता है। प्राचीन काल में पांगी घाटी का जनजीवन अत्यंत दुष्कर था जिस कारण खाद्य सामग्री के अभाव में भूखमरी, अकाल जैसे संकट आना सहज स्वाभाविक था। भगवान् विष्णु के घर में अकाल पड़ने सम्बन्धी लोक विश्वास अकाल जैसी परिस्थिति से निपटने के लिए पंगवालजनों को मजबूती से रहने की प्रेरणा देता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में प्राचीन काल में चन्द्र ग्रहण सूर्य ग्रहण जैसी प्राकृतिक घटनाओं को जनजातीय समाज धार्मिक लोकविश्वासों के रूप में देखता है। धार्मिक दृष्टिकोण के चलते पंगवाल जनजातीय समाज पुनर्जन्म, कर्म फल, झाड़–फूंक, तन्त्र–मन्त्र तथा जादू टोने में विश्वास रखता है। हालांकि वर्तमान में यातायात की सुविधा तथा शिक्षा के प्रसार ने लोगों के भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित किया है, लेकिन फिर भी पांगी घाटी के लोगों में धार्मिक कर्मकाण्डों तथा धार्मिक लोक विश्वासों के प्रति विश्वास बना हुआ है। धार्मिक दृष्टि से घाटी में प्रचलित लोक कथाओं का विश्लेषण कर धार्मिक लोक विश्वासों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

सहायक सन्दर्भ :-

1. लोकविद् श्री भगवान सिंह (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव कुलाल, डाक. मिन्धल, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।
2. लोकविद् श्री सुखानन्द (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव गुवाड़ी, डाक. कुमार, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।
3. लोकविद् श्रीकंठ (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव व डाक. पुर्थी, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।
4. लोकविद् श्री धनदेव (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव शूण, डाक. उदीण, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।
5.. लोकविद् श्री लेखराज (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव व डाक. मिन्धल, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 29-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुल्लवी लोकगीतों में अभिव्यक्त रस एवं अलंकार

संगीता देवी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला।

कुल्लू जनपद के लोक साहित्य में यहाँ के जनमानस की स्थानीय एवं सामान्य लोक संस्कृति की काव्यात्मक अभिव्यजंना हुई है। स्थानीय जनमानस ने समय–समय पर परिवर्तनों के कारण हुए साम्य–वैषम्य को अनुभव करके उसका जो तिरस्कार किया है, उसके स्वरों को भी लोक साहित्य में सुना जा सकता है। कुल्लू जनपद का नाम अपने आप में जहाँ ऐतिहासिक है, वहाँ जनपद का प्रत्येक गाँव भी किसी न किसी प्रकार की पौराणिकता से अवश्य जुड़ा है। अपने अनूठे रीति – रिवाजों के लिए यहाँ की संस्कृति प्रदेश और देश भर में विख्यात है। कुल्लवी लोक साहित्य में परिवार, समाज, नारी जीवन, पुरुष जीवन आदि को सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है। कुल्लू जनपद के लोकमानस ने यद्यपि सांस्कृतिक मूल्यों को बचाए रखा है तथापि सभ्यता के प्रसार के साथ–साथ रहन–सहन, खान–पान, वस्त्राभूषणों तथा मनोविनोद के नवीन साधनों को भी अपनाया है। जनपद की स्थापत्य कला, संगीत कला, मूर्तिकला आदि लोककलाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ के जनमानस ने स्वाबलम्बी जीवन जीने के लिए दैनिक जीवन में विभिन्न व्यवसायों को अपनाया है। फिर भी अन्य सब व्यवसायों की अपेक्षा कृषि को ही स्थानीय जनमानस ने श्रेष्ठ माना है। यहाँ के लोक मानस के जीवन में धार्मिक कर्मकाण्ड का विशेष महत्त्व है। स्थानीय देवी–देवताओं में इनकी अपार निष्ठा है। दिन–प्रतिदिन जीवन में आ रहे परिवर्तनों को देखकर अब यह और भी आवश्यक हो गया है कि लोक साहित्य को लिखित रूप में सहेज कर रख लिया जाए।

शोध के उद्देश्य :–

लोक से ही शास्त्र का जन्म हुआ होगा और लोक साहित्य ही शिष्ट साहित्य का जन्मदाता रहा है। लोककवि या लोकगायक के मन के भाव जब स्वरमयी ध्वनियों के माध्यम से गायन रूप में प्रस्तुत हुए तो लोकगीत बने। यही लोकगीत लोकभाषा की भिन्नता के साथ जब कवियों ने लिखने शुरू किये तो कविता बन गई और कवि की भावनाओं का चित्रण काव्य बन गया। काव्य के विस्तार और विवेचन हेतु विद्वानों द्वारा काव्यशास्त्र बनाया गया। इसलिए लोक साहित्य की प्रमुख विधा लोकगीत के माध्यम से कुल्लवी लोकगीतों में रस और अलंकारों को खोजना प्रमुख उद्देश्य है। कुल्लूवी संस्कृति एक ग्रामीण संस्कृति है। यहाँ विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग रहते हैं किन्तु फिर भी सभी जातियों के रीति–रिवाज एक–दूसरे से मिलते–जुलते हैं। इस क्षेत्र के प्रत्येक उत्सव एवं संस्कार आदि के सुअवसर पर समायोजित लोकगीत प्रचलित हैं जिनके अभाव में किसी भी उत्सव विशेष की पूर्णता नहीं समझी जा सकती। प्रस्तुत लघु शोध–पत्र "कुल्लवी लोकगीतों में अभिव्यक्त रस एवं अलंकार" का उद्देश्य भी इस बात की पुष्टि करता है जिसका विवरण निम्नवत है –

लोकगीत हमारे जीवन के सुख–दुःख, उतार–चढ़ाव आदि को वाणी प्रदान करता है। लोक कवि और लोकगायक शास्त्र ज्ञाता न होते हुए भी सहज रूप में ही शास्त्र आदि का ज्ञान रखता होगा। इसी कारणवश अध्ययन की दृष्टि से लोकगीतों में रसों और अलंकारों को खोजना तथा उसका विश्लेषण करना प्रथम उद्देश्य रहा।

वस्तुतः किसी भी समाज एवं संस्कृति की अभिव्यक्ति उसके जीवन साहित्य और हृदयस्पर्शी कलाओं द्वारा होती है। कुल्लू जनपद भी अपनी लोक संस्कृति, भौगोलिक एवं स्थानीय विशेषताओं के कारण हिमाचल प्रदेश में ही नहीं अपितु भारत में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस क्षेत्र की संस्कृति लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। यहाँ के लोकगीत जहाँ अतीत के घटनाक्रम संजोए हुए है, वहीं इसमें लोकजीवन के सच्चे उद्‌गार भी अभिव्यक्त होते हैं। अतः प्रस्तुत लघु शोध इसी उद्देश्य की प्रतिपूर्ति करता है।

शोध–पत्र का महत्त्व :–

लोकगीत लोक की एक ऐसी विधा है जिसमें किसी क्षेत्र विशेष के रीति रिवाज़, रहन सहन, खानपान, वेशभूषा आदि का वर्णन तो रहता ही है। इसके अतिरिक्त उस क्षेत्र के भूगोल, इतिहास एवं संस्कृति आदि का चित्र भी मिलता है। जिला कुल्लू के लोकगीतों की ही बात करें तो इस लघु शोध प्रबंध के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि कुल्लवी लोकगीत यहां के जनजीवन के चित्रण का एक जीता–जागता दस्तावेज है। यह लोकगीत प्राचीन आस्थाओं, परंपराओं रीति रिवाजों, शृंगारिक भावनाओं, धार्मिक विश्वासों, पूज्य श्रद्धाओं एवं अन्य कई लोकजीवन की समस्याओं के जीवंत उदाहरण हैं। जिला कुल्लू के लोक जीवन का सच्चा, स्वच्छ एवं उक्त बिंब उजागर करने में इन लोकगीतों की विशेष भूमिका है। आम जनजीवन की संस्कारों के प्रति आस्था, पारंपरिक शृंगारिक क्रिया कलापों का वर्णन, धार्मिक निष्ठा लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है। ये गीत अपने क्षेत्र के वातावरण एवं विस्तृत समाज के सूक्ष्म–अति–सूक्ष्म भावों के रहस्योद्‌घाटन में पूर्णतः सक्षम हैं। प्राचीन परंपराओं का पालन, सामाजिक भाव धाराओं द्वारा संस्कारिक विधि का अनुसरण तथा अन्य कई धार्मिक विचारों, लोक विश्वासों, रीति–रिवाजों में विश्वास की भावना इन्हीं गीतों द्वारा पुष्पित, पल्लवित एवं समाज में फलीभूत होती है। वास्तव में क्षेत्र के इतिहास, यहां की भौगोलिक स्थिति, सामाजिक परिवेश तथा संस्कृति आदि का स्पष्ट रूप से वर्णन मिलता है। इस दृष्टि से लघु शोध प्रबंध की महत्ता स्वतः ही परिलक्षित होती है।

शोध–कार्य के माध्यम से यह स्पष्ट उजागर हुआ है कि शिष्ट साहित्य का जन्म ही लोक साहित्य से हुआ है, अथवा काव्य का सृजन ही लोकगीतों से हुआ। इस दृष्टि से लोकगीतों का साहित्यिक महत्व यहां स्पष्ट उजागर होता है।

कुल्लवी लोकगीतों में रस और अलंकारों का विश्लेषण :–

हिमाचल प्रदेश के वक्ष पर विराजमान अपनी नैसर्गिक छटा बिखेरता ज़िला कुल्लू "देवभूमि" के नाम से जाना जाता है। यहाँ की समृद्ध एवं प्राचीन लोक–संस्कृति तथा देव परम्परा ने आज विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाई है। फलों–फूलों से लदे वृक्ष, झर–झर करते झरने, व्यास नदी की स्वच्छ–निर्मल धारा आदि मिलकर यहाँ के सौंदर्य में चार चाँद लगाते हैं। यही कारण है कि देश के कोने–कोने से लोग वर्ष–भर यहाँ के प्राकृतिक दृश्य का आनंद लेने के लिए आते रहते हैं। एक किवदंती के अनुसार मानव–सृष्टि की उत्पत्ति ही ज़िला कुल्लू में हुई। ऐसी मान्यता है कि सृष्टि के आदि पुरुष मनु ने मनाली नामक स्थान से सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ किया। यह ज़िला अनेक ऋषि–मुनियों की तपस्थली रहा। ऋषि वेदव्यास द्वारा वेद–ऋचाओं का संकलन

भी कुल्लू में ही किया गया। महर्षि जमदग्नि ने "ठारा करडुओं" की स्थापना इसी कुल्लू ज़िला के 'मलाणा' नामक स्थान में की। मलाणा के विषय में भी यह सुप्रसिद्ध मान्यता है कि यह आज भी विश्व का सर्वाधिक प्राचीन लोकतंत्र बना हुआ है। सामान्यता सम्पूर्ण जिला कुल्लू मे यही लोकगीत प्रचलित हैं। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में इन्हीं आठ प्रकार के लोकगीतों पर आधरित रहेगा। अध्याय चार में इन आठ प्रकार के लोकगीतों का रस और अलंकार की दृष्टि से विश्लेषण किया जाएगा।

संस्कार सम्बन्धी लोकगीत :–

संस्कार सम्बन्धी लोकगीत : संस्कार शब्द का साधारण अर्थ है सुधार, परिष्कार अथवा शुद्धता। जीवन की पूर्णता एवं सुख–समृद्धि के लिए मनुष्य अपने आप को शुद्ध एवं पवित्र करने के लिए जो प्रक्रिया अपनाता है, उस प्रक्रिया को ही वास्तव में संस्कार कहा जाता है। भारतीय संस्कारों में मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक कुल 16 संस्कारों का वर्णन है। परन्तु वर्तमान में संस्कारों की संख्या 5 ही रह गई है जो विशेष रूप से प्रचलित है। संस्कारों का समय के साथ ह्वास होता चला गया। जिला कुल्लू में कुछेक संस्कारों का ही प्रचलन है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोनयन, निष्क्रमण इत्यादि संस्कार प्राचीन आश्रम–व्यवस्था के शिथिल हो जाने के कारण अब लुप्त से हो गए हैं। कुल्लवी लोकसमाज में संस्कारों का विशेष महत्त्व है। लौकिक रूप में स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले रूप को सम्पन्न किया जाता है। ये स्त्रियाँ कुल पुरोहित की पत्नी, बेटी या पुत्रवधु आदि होती हैं। अनुष्ठानिक कार्यों के साथ गायन की पूर्ण व्यवस्था ही संस्कारिक आयोजनों में पूर्णता लाती है। अध्ययन की सुविधा हेतु कुल्लवी संस्कार गीतों को निम्न वर्गों में विभक्त किया जाता है – जन्म, मुंडन या चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत, विवाह संस्कार तथा मृत्यु सम्बन्धी संस्कार गीत।

उदाहरण 1.

"उड़ी च़ौली मेरे बापुआ, तेरे कोल्हा री च़ीड़ी ल़ो,
रोक पाल़की बापुआ, कदी हटणा फिरी ल़ो.
उड़ी च़ौली मेरे बापुआ, तेरे कोल्हा री च़ीड़ी.
तू बोल़ा थी बापुआ, तू नी कौसी बै देणी,
रीति जुगै री छ़ौड़ियै, पालु आपणै गझ़ैणी.
झूठै हुऐ तेरे बच़्चन बापुआ, काल़ी बादल़ी घिरी ल़ो.
उड़ी च़ौली मेरे बापुआ, तेरे कोल्हा री च़ीड़ी ल़ो।"

भावार्थ – प्रस्तुत गीत में एक बेटी अपनी विदाई के समय कारुणिक स्वर में अपने पिता को आह्वान करती हुई कहती है कि हे बापू! तेरे घौंसले की यह चिड़िया अब उड़ चली है। अब न जाने कब वापिस लौटेगी। इसीलिए बापू मेरी पालकी को तू रोक दे। बापू! तू तो कहता था कि तू मुझे किसी को नहीं देगा। कहता था कि सारे रीति रिवाज़ों को किनारे कर दूंगा अर्थात् परम्परा के अनुसार बेटी का ब्याह होता है, लेकिन मैं तेरा विवाह नहीं कराऊंगा, तुझे अपने आँचल में ही छिपाकर रखूँगा। फिर बेटी कहती है कि तेरे किये हुए सारे वादे झूठे पड़ गए, देख यहाँ दुःख के काले बादल घिर आए हैं, तेरे घौसलें की वह चिड़िया आज उड़ रही है अर्थात् मैं विदा हो रही हूँ, बापू! तू रोक ले मेरी पालकी को। यह गीत पिता पुत्री के आपसी स्नेह को दर्शाता है कि किस तरह से एक पिता अपनी पुत्री को दिलासे देता है और अंततः उसे विदा करना ही पड़ता है।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :–

1. 'आपणै गझैणी' में 'ण' वर्ण, 'काल़ी बादल़ी' में 'ल', 'बच्चन बापुआ' में 'ब' वर्ण की आवृत्ति होने के कारण यहाँ अनुप्रास अलंकार है।
2. दुःख के काले बादल घिर जाना और बेटी का घौंसले से चिढ़िया की तरह उड़ जाना में प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का अभेद आरोप होने के कारण यहाँ समासोक्ति अलंकार है।
3. प्रस्तुत गीत में पिता के घर से बेटी की विदाई के क्षण का मार्मिक चित्रण होने से शोक की स्थिति उत्पन्न हो रही है। अतः यहाँ करुण रस की उत्पत्ति हो रही है।

उदाहरण 2.

"गंगा – जवना पारे शादिआ,
आण कपला धेनु ओ.
गौंत्र – गोबरा बिन कारज शुध्द न होए..
शादिआ आणा एक पढुआ पंडत,
इन्हा बिना कारज शुध्द न हो.
पीपल़ा रा बुटड्डू, हरिए द्रूब, हरे फूलै,
इन्हा बिना कारज शुध्द न हो।"

भावार्थ – स्त्रियाँ गाती हैं कि गंगा और यमुना नदियों के पास से एक लाल गाय लाई जाए। उसके गौंत्र को सम्पूर्ण घर में छिड़क कर ही यह कार्य शुद्ध माना जाएगा। लोक समाज में यहाँ गोत्र को बहुत ही शुद्ध माना जाता है। एक पढ़े लिखे ब्राह्मण द्वारा यह कार्य पूर्ण हो जाएगा। हरी दूर्वा, पीपल का छोटा सा पौधा और फूल आदि पूजन सामग्री भी यहाँ आवश्यक है। इन सभी चीजों के बिना यह कार्य शुद्ध नहीं माना जाएगा। इस गीत में ग्रामीण परिवेश की स्वच्छता को दर्शाया गया है। लोग अनुष्ठान कार्य एवं धार्मिक रीति – रिवाज़ों पर सम्पूर्ण रूप स्वच्छ एवं पवित्र होकर कार्य करते हैं। पीपल का पौधा, दूर्वा, फूलादि प्राकृतिक वस्तुओं के प्रयोग से लोगों का प्रकृति के प्रति पूज्य भाव भी दृष्टिगोचर होता है। सभी सामग्री के साथ ब्राह्मण के मंत्रों एवं उसकी पूजन पद्धति का उपरोक्त कार्य में विशेष महत्त्व है।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :–

"गोत्र – गोबरा" में 'ग' तथा 'पढुआ पंडत' 'प' वर्ण की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार साथ ही 'ठ' और 'ड' और 'पीपल़ा रा बुटड्डू' में 'प' और 'ब' वर्णों अर्थात एक ही उच्चारण स्थान से नए वाले वर्णों की आवृत्ति होने के कारण यहाँ श्रुत्यानुप्रास अलंकार है।

प्रणय सम्बन्धी लोकगीत :–

प्रेम जीवन का मूल आधार होता है। आदिकाल से ही स्त्री पुरुष का प्रेम में संबंध चला रहा है। नारी में जो सहज आकर्षण होता है उससे प्रणय कहा जाता है। इसी भाव से ही जीवन को गति मिलती है। प्रेम सृष्टि के कण–कण में विद्यमान है। ज्ञान की भांति प्रेम भी ईश्वरीय देन है। प्रेम हृदय की अनुभूति है, इसे केवल अनुभव किया जा सकता है। प्रेम अव्यक्त है अर्थात् प्रेम जैसे गूढ़ एवं सूक्ष्म भावना को शब्दों में बांध पाना कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव भी है। अतः कहा जा सकता है कि प्रेम अनुभूति का विषय है। प्रेम के विस्तृत क्षेत्र में ही प्रणय समाहित हो जाता है। प्रणय मानव मन की शाश्वत एवं नैसर्गिक वृत्ति है। मानव जीवन के मूल में प्रणय का भाव निहित है। जिला कुल्लू के लोकगीतों में प्रणय गीतों की संख्या सबसे अधिक है। वैसे ही विषय की दृष्टि से

सभी प्रणय गीत, प्रणय और श्रृंगार की अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं। प्रणय गीतों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि सभी प्रणय गीत इन वर्गों में समाहित नहीं होते। उदाहरण के लिए कुल्लवी लोकमानस में दाम्पत्य प्रणय के अनेक गीत मिलते हैं जिन्हें स्थानीय भाषा या बोली में "भंउरू गीत" कहा जाता है।

उदाहरण 1.

"उतमिए! तेरे ल़ागा दौंदै रा च़ाउआ, तू शुणै तारा ल़ाड़िऐ...
हो कई घेर मिल़णा मिलिऐ बिछ़ड़ना, ज़िन्दगी सा धूपा संग छांवा।
हो... झुरी थि तू शोभल़ी बसी लोड़ी म्हारै गरांवा।।
होरा ग़ल़ा देई डिगणै दस झूरी आपणा नांवा,
तू शुणै तारा ल़ाड़िऐ... उतमिए! दस झूरी आपणा नांवा।
तू शुणै तारा ल़ाड़िऐ...
दिल़ तुसा बै दिनु दुनिया बी छौड़ी, ज़ी बाणी केरी हो सम्भाली।
दिल़ नि थी लोड़ी चुटुआ, चुटा लोड़ी शेले रा दांवा।।
तू शुणै तारा ल़ाड़िऐ... उतमिए! चुटा लोड़ी शेले रा दांवा।।
शीरै देणा तौ बै धाटु, तारा गुड़ी देता पौटु, गौल़े देता तौ बै झूरि च़ंदरहारा,
झुरी थि तू शोभल़ी बसी लोड़ी म्हारै गरांवा।
तू शुणै तारा ल़ाड़िऐ... उतमिए! बौसी लोड़ी म्हारै गरांवा।।
तू शुणै तारा ल़ाड़िऐ...।"

भावार्थ – प्रस्तुत लोकगीत में 'उतमी' नामक एक सुन्दर युवती के रूप सौंदर्य का वर्णन किया गया है। प्रेमी उसके रूप सौंदर्य पर मुग्ध होते हुए कहता है कि हे प्रिय तारा लाड़ी! मुझे तेरे दांतों का बड़ा चाव लग रहा है। प्रेमी कहता है इस जीवन में हम कई बार मिलेंगे, कई दफ़े बिछुड़ेंगे, जिन्दगी भी धूप और छाँव का ही संगम है। लेकिन प्रेमी कहता है कि हे प्रेयसी तू बेहद खूबसूरत है मेरी इच्छा है कि तू मेरे गाँव में ही बसे अर्थात् ब्याह करे! फिर प्रेमी कहता है कि बाकी बातें जाने दे, तू पहले मुझे अपना नाम तो बताती जा...। प्रेमी कहता है कि मैंने अपना दिल तुम्हें दे दिया है, तुम्हारे लिए यह दुनियादारी भी छोड़ दी है.. अतः आपसे मेरा निवेदन है कि मेरे इस दिल को सम्भाल के रखना, यह टूटना नहीं चाहिए। भले 'शेल' (रस्सी को बनाने के लिए प्रयोग किया जाने वाला जूट की किस्म का एक पदार्थ जो एक विशेष पेड़ की छाल से निकलता है) की रस्सी टूट जाए। अर्थात् हमारा प्रेम उस अटूट रस्सी से भी मज़बूत होना चाहिए। हे उतमी! मैं तुझे सिर पर पहनने के लिए 'धाटु' दूँगा और तारा गुड़ी पट्टू पहनने के लिए दूंगा। उसके साथ ही गले में पहनने के लिए सुन्दर चन्दरहार दूंगा। तू बेहद सुन्दर है। अतः तू मेरे गाँव आकर बसना।

रस एवं अलकारों का विश्लेषण :–

1. 'हो कई घेर मिल़णा, मिलिऐ बिछ़ड़ना, ज़िन्दगी सा धूपा संग छांवा।' प्रस्तुत पंक्ति में जिंदगी के मिलने–बिछड़ने के क्रम को जीवन की धूप–छांव के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की गई है अतः यहां 'दृष्टांत अलंकार' है।
2. 'मिल़णा, मिलिऐ' में 'म' तथा चुटुआ, चुटा में 'च' वर्ण की आवृत्ति होने के कारण यहां 'अनुप्रास अलंकार'

उदाहरण 2.

“हामा ल़ागो तेरै दान्दौ रा च़ाउआ, हौस मेरिए बाल़मा.
चि़ट्टे दांदड़ु, दाड़ू रै दाणै, काचै़ ल़ाऐ म्हारै काग़ज़ु खाणै.
कि ऩाऊं तेरा कौखै गराऊं, दस्स मेरिए बाल़मा...

भावार्थ – प्रेमी अपनी प्रेमिका के रूप–गुण पर मोहित होकर कहता है कि मुझे तेरे दांतों को देखने का चाव लग रहा है। इसीलिए हे बालमा तू हँसती रह! तेरे चिट्टे अर्थात सफ़ेद दांत मुझे दाड़ू के दानों के समान लग रहे हैं, जो हमारे कलेजे को कच्चा ही खाए जा रहे हैं। अर्थात् उसके दांतों का सौंदर्य या उसकी खूबसूरत मुस्कान सीधे प्रेमी के हृदय पर वार कर रही है।

रस एवं अलकारों का विश्लेषण :–

1. ‘चिट्टै दांदड़ु, दाड़ू रै दाणै’ अर्थात् ‘सफेद दांत’ पर ‘दाड़ू के दानों’ का अभेद आरोप होने के कारण यहां ‘रूपक अलंकार’ है।
2. ‘दांदड़ु, दाड़ू रै दाणै’ में ‘द’ वर्ण की आवृत्ति होने के कारण यहाँ ‘अनुप्रास अलंकार’ है।

प्रकृति चित्रण सम्बन्धी लोकगीत :–

बर्फ़ से ढकी ऊँची–ऊँची चोटियाँ, कल कल करते झरने, फल फूलों की सुंदरता, नदी की निर्मल धारा, पक्षियों का कलरव जब गीतों में वर्णित हों तो वे ही गीत प्रकृति चित्रण के लोकगीत कहलाते हैं। ज़िला कुल्लू के लोकगीतों में अनेकों ऐसे गीत हैं जहाँ किसी मोनाल पक्षी का, कहीं चेलरू पक्षी का, कहीं बान के वृक्ष का तो कहीं बर्फ़ की चादर ओढ़े पर्वतों का वर्णन हुआ है। कुल्लवी लोकगीतों में प्रकृति झूमती हुई दर्शित होती है। कहीं कहीं लोकगीतों में प्रेमिका के सौंदर्य की उपमा के रूप में, कहीं नायिका के संदेशवाहक के रूप में तो कहीं अपने ही स्वाभाविक रूप में प्रकृति वर्णित है। शीत ऋतु कुल्लवी लोकजीवन की सबसे लम्बी एवं भयंकर ऋतु है। यहाँ वर्ष–भर ठण्ड की अनुभूति होती है, फिर भी कार्तिक मास से चैत्र मास तक की कालावधि में शीत का प्रकोप अपेक्षाकृत अधिक होता है। यहाँ की ऊँची चोटियाँ बर्फ़ की चादर से ढकी रहती है, जबकि अन्य क्षेत्रों में शीत ऋतु के दौरान भारी हिमपात होता है। कुल्लू की इस भौगोलिकता का परिचय निम्न गीत भी दे रहा है–

उदाहरण 1.

“ठारा करड़ू पौहरी देशा रे, शोभला देश सा म्हारा।
चांदी रा च़ादरू ओढ़िऐ ज़ोतड़ू, हिंउऐ रा देश सा म्हारा।।
ठारा करड़ू पौहरी देशा रे, शोभला देश सा म्हारा।
मनीकरण गरम पाणी, ज़ीऊ छपिल़ा सारा.
ऋषि – मुनि रा उत्तराखंड, रड़कू दिला ऩ तारा.
ठारा करड़ू पौहरी देशा रे, शोभला देश सा म्हारा।
फेर – फिरदै हिंउऐ रै ज़ोतड़ू, मौंझै बियासै री धारा.
भोल़ै बाउल़ै माहणु औखलै, शोभल़ा बांका नज़ारा.
ठारा करड़ू पौहरी देशा रे, शोभला देश सा म्हारा।”

भावार्थ – प्रस्तुत गीत में ज़िला कुल्लू को एक सुन्दर स्थली के रूप में प्रस्तुत करते हुए लोकगायक कहता है कि ‘ठारा करड़ू’ नामक देवी देवता हमारे इस सुन्दर देश या स्थली के प्रहरी हैं अर्थात् इसके रक्षक हैं। यहाँ के जोत अर्थात् पर्वत चांदी की चादर ओढ़े हुए हैं अर्थात् बर्फ़ से ढके रहते हैं। हमारा यह कुल्लू देश

बर्फीला क्षेत्र है। यहाँ का 'मनीकरण' नामक स्थान गरम पानी के चश्में के लिए विश्व प्रसिद्ध है जिसमें स्नान करके तन मन गर्माहट भरा–सा लगता है। लोकगीत में आगे वर्णित है कि यह क्षेत्र प्रारम्भ से ही ऋषि–मुनियों का उत्तराखंड रहा है अर्थात् इनकी तपस्थली रही है। इनके हृदय का यह तारा रहा है अर्थात् ऋषियों की भी प्रिय भूमि कुल्लू ही रही है। इसके चारों ओर बर्फ़ से ढकी ऊँची चोटियाँ हैं और बीचों–बीच ब्यास की सुन्दर धारा बहती है। यहाँ बसने वाले लोग बेहद भोले–भाले एवं सरल हृदयी हैं और बेहद अनुपम यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य है। प्रस्तुत लोकगीत में ज़िला कुल्लू प्रकृति का बेहद करीब से साक्षात् होता है। लोकगायक ने इसे बहुत ही संजीदगी से इस गीत में प्रस्तुत किया है।

रस एवं अलकारों का विश्लेषण :–

1. 'ठारा करडू पौहरी देशा रे' में 'र', 'भोल़ै बाउल़ै माहणु औखलै' में 'ल' वर्ण की आवृत्ति होने के कारण अनुप्रास अलंकार है।
2. 'चांदी रा च़ादरू ओढ़िऐ ज़ोतडू' में बर्फ़ के पहाड़ों पर चांदी की चादर ओढ़ने का अभेद आरोप होने के कारण यहाँ 'रूपक अलंकार' है।
3. 'ऋषि – मुनि रा उत्तराखंड, रड़कू दिला ऩ तारा' में कुल्लू की भूमि तारे से उपमित किया गया है, अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

उदाहरण 2.

"केतरा शोभला च़ीडू मोनाल़, बणी ऐ कल़गी तेरी ज़ानी बै काल़.
दुर बोल़ा ज़ंगल़ा उड़िया ज़ा, माह्णु कौच्छै हेरी कदी एंदी.
बड़ै खराब ऐ होआ सी माह्णु, होरी बै ज़ीणा इन्हे कदी नि ज़ाणु.
तोपदी लागी तौह बै बन्दूकै री नाल़, बणी ऐ कल़गी तेरी ज़ानी बै काल़....
केतरा शोभला च़ीडू मोनाल़"

भावार्थ – लोकगायक प्रकृति के प्रति सजग होते हुए मोनाल पक्षी के लिए चिन्ता व्यक्त कर रहा है। लोकगायक कहता है कि मोनाल पक्षी कितना सुन्दर एवं आकर्षक है, परन्तु यह कलगी जो इसके पंखों से बनती है यही इसके जीवन का काल बन गयी है। लोकगायक अपने गीत के माध्यम से उस पक्षी को दूर कहीं जंगल में बस जाने का संदेश देता है और कहता है कि मनुष्य के नजदीक कभी भी न आए। वह कहता है कि इंसान बहुत बुरा और क्रूर है जो दूसरों को जीने तक नहीं देता। फिर वह मोनाल के विषय में चिन्ता व्यक्त करता है और कहता है कि बंदूक की नाल हर वक्त तुझे ही ढूँढती रहती है, यह कलगी तेरी जान की ही दुश्मन बनी हुई है।

रस एवं अलकारों का विश्लेषण :–

1. 'बोल़ा ज़ंगल़ा' में 'ल' तथा 'बड़ै खराब' में 'ब' वर्ण की आवृत्ति होने के कारण यहाँ अनुप्रास अलंकार है।
2. प्रस्तुत गीत में मोनाल नामक पक्षी की मौत का कारण स्वयं उसी की कलगी होने की बात कही गई है। अतः यहां 'शोक' नामक स्थाई भाव के जागृत होने से 'करुण रस' की उद्भावना होती है।

देवी देवताओं के लोकगीत :–

कुल्लू चूंकि प्राचीन काल से ही ऋषि–मुनियों की तपस्थली रही है, देवी देवताओं का यह उत्तराखंड रहा है। देव स्थली होने के कारण ही इसे "देवभूमि" के नाम से भी जाना जाता है। पहाड़ी जनजीवन पर देवी–

देवताओं का प्रमुख प्रभाव रहा है। कुल्लू ज़िला का ऐसा कोई घर नहीं होगा, जहाँ देवी–देवता की पूजा अर्चना न होती हो। देवी हिडिंबा, ऋषि दुर्वासा, ठारा करडु, ऋषि जमदग्नि, भगवान शिव, रघुनाथ, कृष्ण, भगवान शिव आदि देव यहाँ प्रमुख रूप से पूजित हैं और इन्हीं की महिमा का गुणगान लोकगायकों ने भी मुक्त–कंठ से किया है। ये देव गीत यहाँ के जनमानस की आस्था के सच्चे प्रतिबिंब हैं, जो प्रचुर मात्रा में कुल्लवी लोकसमाज में प्रचलित हैं।

उदाहरण 1.

"म्हारे पराशरा देउआ ऋषिआ, तेरी जै जै कारा म्हारे पराशरा।
उथड़ी धारा न मन्दिर तेरा ठंडे सौरा रा पाणी,
हाथ़ जोड़ी केरी अरज़ा माल़का म्हारी अरज़ा ज़ाणी...
म्हारे पराशरा...म्हारे पराशरा देउआ ऋषिआ,
तेरी जै जै कारा म्हारे पराशरा।
होरी देउआ बै फुल़ै रा डोल्हरू म्हारै देउआ बै हारा,
म्हारे पराशरा...म्हारे पराशरा देउआ ऋषिआ,
तेरी जै जै कारा म्हारे पराशरा।"

भावार्थ – प्रस्तुत लोकगीत में देव ऋषि पराशर का गुणगान करते हुए ऋषि की जय – जयकार की गयी है। उनकी महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ऊँची छोटी पर देवता का मंदिर है जहाँ ठंडे 'सौर' अर्थात झील का जल है। लोकगायक कहता है हे मालिक! हमारी विपदाओं को तू ही जान सकता है, उनका निवारण भी तेरे ही हाथों में है। गीत में आगे कहा गया है कि अन्य सभी देवताओं को पुष्प ही अर्पित किया जाता है, परंतु हमारे देव ऋषि पराशर को फूल की माला पहनाई जाती है।

रस एवं अलकारों का विश्लेषण :–

1. 'म्हारे पराशरा' में 'र', 'धारा न मन्दिर तेरा ठंडे सौरा रा' में 'र', 'केरी अरज़ा माल़का म्हारी अरज़ा' में 'र' और 'म' की आवृत्ति से अनुप्रास तथा 'बै फुल़ै' में 'ब' और 'फ' वर्ण अर्थात् एक ही उच्चारण स्थान से निकलने वाले शब्दों की आवृत्ति होने के कारण यहाँ श्रुत्यानुप्रास अलंकार है।
2. जै – जै एक ही शब्द की पुनरावृत्ति होने के कारण यहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
3. ऋषि पराशर की महिमा का गुणगान करने के कारण यहाँ 'भगवत्प्रेम' नामक स्थायी भाव जागृत होकर परिपुष्ट होता है। अतः यहाँ 'भक्ति रस' की उत्पत्ति होती है।

उदाहरण 2.

"शुणै ज़ोतै रै च़ीडुआ, कुल्लू देशै री कहाणी...
ऋषि ज़म्बलु च़ौलु ज़ोता ल़ो पंदा बै, संग्है ल़ाइऐ हौंडी नढाणी.
ठारा मूरत थी बौउड़ी भीतरै,ऐ सा गल़्ल़ पराणी.
शुणै ज़ोतै रै च़ीडुआ, कुल्लू देशै री कहाणी...
हौंडदै – हौंडदै पुजू हामटै धारा ज़ैबे, ज़ोतै री बागर फिरी
ठारा मूरत पौई ठारा ल़ो जौग्हा ऩ, बौणी त़न्है री ऩशाणी.
ठारा करडू रा देश तैबे ऐ पौडू, ऐ सा कुल्लू री कहाणी.

शुणै ज़ोतै रै चीड़ुआ, कुल्लू देशै री कहाणी...।"

भावार्थ – कुल्लू देश की कहानी का वर्णन करते हुए ऋषि जमदग्नि की कथा इस गीत के माध्यम से प्रस्तुत की गयी है, साथ ही ठारा करडुओं की स्थापना का भी वर्णन हुआ है। लोकगीत के बोलानुसार, ऋषि जमदग्नि ऊँची चोटी पर तपस्या के लिए जा रहे थे और हाथ में कमण्डल लेकर चल रहे थे। चलते – चलते वे एक बावड़ी के पास रुकते हैं, जहाँ बावड़ी के अंदर उन्हें अठारह प्रकार की मूर्तियाँ उन्हें प्राप्त हुईं। वे उन्हें भी साथ ले लेते हैं। इस प्रकार चलते – चलते वे हामटा नामक पहाड़ी पर पंहुच जाते हैं। वहाँ पहुँचने के कुछ देर बाद ही ऊँची चोटियों के तूफ़ान चलना शुरू होते हैं जिसके चलते ऋषि के हाथ की वे अठारह प्रकार की मूर्तियाँ उनके हाथ से छूट जाती हैं और वे अलग–अलग अठारह जगहों पर गिर जाती हैं। इस प्रकार से जिस जिस स्थान पर वे मूरतें गिरी थीं, उन्हें वहीं–वहीं देव–निशान के रूप में स्थापित किया, जिन्हें कुल्लू में 'ठारा करडुओं' के नाम से जाना जाता है।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :–

1. 'ज़म्बलु चौलु ज़ोता' में 'च' और 'ज', 'संग्है ल़ाइऐ' में 'स' और 'ल' वर्ण अर्थात् एक ही उच्चारण स्थान से निकलने वाले वर्णों की आवृत्ति होने के कारण यहाँ श्रुत्यानुप्रास अलंकार है।
2. 'हौंडदे – हौंडदे' में शब्द की पुनरावृत्ति होने के कारण यहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
3. प्रस्तुत गीत में ऋषि जमदग्नि और ठारा करडुओं की स्थापना कुल्लू देश की कहानी के संदर्भ में वर्णित होने के कारण यहाँ 'भगवत्प्रेम' नामक स्थाई भाव जागृत होकर परिपुष्ट होता है। अतः यहाँ 'भक्ति रस' की उद्‌भावना होती है।

घटना प्रधान लोकगीत :–

इतिहास प्रसिद्ध किसी घटना का वर्णन, किसी प्राकृतिक घटना, किसी व्यक्ति की मृत्यु आदि का वर्णन जिन लोकगीतों में किया गया हो, उन लोकगीतों को घटना प्रधान लोकगीतों के अंतर्गत रखा जाता है। लोकसमाज में अनेकों ऐसी घटनाएं होती हैं जिनका वर्णन लोकगायक अपने गीत में प्रस्तुत करता है। कभी–कभी ये घटनाएं लोकगीतों के माध्यम से अत्यन्त मार्मिक रूप ग्रहण करती हैं। ज़िला कुल्लू में प्रचलित लोकगीतों में अनेकों ऐसी घटनाएं लोकगीतों के माध्यम से सामने आई हैं जो किसी प्राकृतिक घटना का, समाज द्वारा हुए किसी निर्मम कार्य का अथवा किसी व्यक्ति विशेष की मृत्यु का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हैं। घटना प्रधान लोकगीतों की श्रेणी में कुल्लू में इसकी एक विशेष परम्परा प्रचलित है, जैसे समाज के किसी विशेष स्त्री या पुरुष की किसी दुर्घटना के कारण अथवा असमय मृत्यु के पश्चात् उसके जीवन पर लोकगीत की रचना की जाती है और ये गीत बेहद मार्मिक रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। कुल्लू में विशेष रूप में इस प्रकार के गीत बहु–प्रचलित हैं और इनमें व्यक्ति के जीवन की सच्ची घटनाओं का वर्णन रहता है। पावस ऋतु भी कुल्लवी लोकजीवन के लिए अच्छे–बुरे क्षण प्रस्तुत करती है। इसके आगमन से जहाँ ग्रीष्म ऋतु की तपस से राहत मिलती है, वहाँ कृषि एवं वनस्पति भी हरी–भरी होती है। भारी वर्षा के कारण नदी–नालों में बाढ़ आ जाती है तथा अन–धन की अपार क्षति होती है। अतिवृष्टि के कारण खेती योग्य भूमि बाढ़ में बह जाती है और कभी कभी पूरे के पूरे–पूरे गाँव भी भू–स्खलन के कारण नष्ट हो जाते हैं। ऐसी ही प्राकृतिक आपदाओं को कुल्लवी लोकजीवन अपने लोक साहित्य के माध्यम से हमेशा स्मरण करता रहता है।

उदाहरण 1.

"बिज्हे न चुटी काढ़ी यहाण्टिए, सारा ऩीऊं डोभी – दुआड़ा,
थोड़े नीऊं राहुल दे बड़े, बोहु नीऊं गद्दी री माया हो।
कैण्ढे कोतदी फेटी रूआड़ी, डेरा डाहू चूची डुआरा,
याणी जुआनी रा मौरणा होऊ, ज़ेठा चोडू शाढ़ा रा धियाड़ा।।"

भावार्थ – यह गीत एक सत्य घटना पर आधारित है। एक समय में जब नाले में अचानक बाढ़ आ जाने से 'डोभी' और 'दुआड़ा' नामक गाँव पूरी तरह से बह गए। इस भू–स्खलन एवं बाढ़ के परिणामस्वरूप एक गद्दी का परिवार एवं उसकी सभी भेड़–बकरियाँ नष्ट हो गयी थीं। जंगलों से जड़ी–बूटियां ढूंढ कर लाना कुल्लवी लोकजीवन की एक अन्य विशेषता रही है। ऐसे ही कार्य में प्रवृत्त एक महिला भी इस प्राकृतिक आपदा की चपेट में आ गयी।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :–

1. 'कैण्ढे कोतदी' में 'क' वर्ण, 'डेरा डाहू चूची डुआरा' में 'ड' वर्ण की आवृत्ति होने से यहां अनुप्रास अलंकार है।
2. 'बिज्हे न चुटी कैंढी यहाण्टिए, सारा ऩीऊं डोभी – दुआड़ा' प्रस्तुत पंक्ति में बिना बादलों के ही बिजली के गिर जाने की बात कही गई है, जिसके कारण बाढ़ आ जाती है तो बिना कारण से ही कार्य के हो जाने की बात कही गई है, अतः यहां विभावना अलंकार है।
3. प्रस्तुत गीत में बिजली के गिरने से जो आकस्मिक बाढ़ आती है, उसमें डोभी और दुआड़ा नामक दो गांव बाढ़ में बह जाते हैं। किसी गद्दी की भेडें आती हैं कि कुछ जान माल का भी नुकसान होता है। यहां शोक की स्थिति उत्पन्न होने से करुण रस की उद्भावना होती है।

ज़िला कुल्लू में लोकगीतों की एक भिन्न परम्परा प्रचलित है जिसमें किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी याद में गीत बनाए जाते हैं। ये गीत उस व्यक्ति विशेष की सत्य जीवन घटना पर आधारित होते हैं। इस प्रकार के गीतों के उदाहरण प्रस्तुत हैं –

उदाहरण 2.

"बोल़ा तेरे बी ता खेला बै तू ज़ाणै माल़का, बोहु डाहै भेद ल़कोई हो.
भेद ल़कोई बोल़ा भाऊ कृष्णा, बोहु डाहै भेद ल़कोई हो.
बोल़ा हौसदा – खेल़दा खीमी रा टबर, औच्छी री ऩौई धिऩा डबोई ल़ो.
धिऩा डबोई बोल़ा मेरे ओ माल़का, औच्छी री ऩौई धिऩा डबोई ल़ो.
सोठी तेरी ल़ोहु शुका ड़ै हाड़ा ल़ो मांसा रा, दिल़ बणु ज़ौहल़ी औगी री ल़ोई ल़ो.
बोल़ा तेरे बिछ़ौड़ै रा दुरूख ऩैई ढोहिंदा, बोज्झ हुंदा पोरै शेटदै ढोई ओ
शेटदै ढोई बोल़ा भाऊ कृष्णा,बोज्झ हुंदा पोरै शेटदै ढोई ओ.
आमा बि ता रा ति औच्छी रा तारा तू, आमा री औच्छी शुकी रोई – रोई ओ.
आमा रा कोल़्ह छौड़िऐ कौखै न्हौठा च़ड़िआ, मसा ज़िन्हैं बड़ा केरा ज़गोई ल़ो.
ऐंढा बि न्हौठा तू गड्डी री शंऊकी, ज़ाऩ धिऩी आपणी तैं खोई ल़ो।"

भावार्थ – प्रस्तुत गीत कृष्ण नामक एक युवक की मृत्यु के पश्चात् उसकी याद में बनाया गया है। लोकगायक कहता है कि हे मालिक! तेरे भेद को तू ही जान सकता है, बहुत से रहस्य तूने भी छुपा रखे हैं।

हँसते–खेलते उस खीमी राम के परिवार को तूने आँसुओं की नदी में डुबो दिया अर्थात् बेटे कृष्ण की मौत ने उस परिवार को गहरे दुःख में डुबो दिया है। हे कृष्ण! तेरी याद में हाड़ मांस का खून भी सूख चुका है और हृदय भी जलकर आग की लपट या लौ सा बन गया है। बेटा, तुझसे बिछड़ने का दुःख अब नहीं ढोया जा रहा, बोझ होता तो ढोकर ही खत्म कर देते। माँ की आँख का तू तो तारा था अब तो उसकी भी आँखें सूख चुकी हैं रो – रोकर। माँ का घौंसला अर्थात् आँचल छोड़कर तू कहाँ चला गया। ये पंछी (पक्षी) जिन्होंने तुझे बेहद मुश्किलों में पाला पोसा, तुझे बड़ा किया। हे भाऊ कृष्ण! तेरे गाड़ी के शौक में तू ऐसा चला गया कि तूने अपनी जान ही गंवा दी।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :–

1. "बोल़ा हौसदा – खेल़दा खीमी रा टबर, औच्छी री ऩौई धिऩा डबोई ल़ो" अर्थात् हँसता खेलता परिवार आँखों की नदी में डूब जाना प्रस्तुत पंक्ति में हँसते –खेलते परिवार का दुःख की नदी में डूब जाना अर्थात् असंभव को संभव करने के कारण यहाँ निदर्शना अलंकार है।

2. "सोठी तेरी ल़ोहु शुका ड़ै हाड़ा ल़ो मांसा रा, दिल़ बणु ज़ौह्ली औगी री ल़ोई ल़ो" तेरी याद में हाड़ मांस का खून सूख गया है और दिल जलकर आग की लौ बन गया है। दिल पर आग की लौ बनने का अभेद आरोप होने के कारण यहाँ रूपक अलंकार है।

3. "आमा बि ता रा ति औच्छी रा तारा तू, आमा री औच्छी शुकी रोई – रोई ओ" अर्थात् अम्मा की आँखों का तारा होना अर्थात् पुत्र पर तारे का अभेद आरोप होने के कारण यहाँ रूपक अलंकार है और रो रोकर आँखें सूख जाना अतिशय दुःख का वर्णन है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

4. "आमा रा कोल्ह छौड़िऐ कौखै न्हौठा च़ड्डिआ, मसा ज़िन्हैं बड़ा केरा ज़गोई ल़ो" अम्मा के घर को घौंसले से उपमित करने के कारण यहाँ उपमा अलंकार है।

5. प्रस्तुत गीत में कृष्ण नाम के युवक की समय मृत्यु के पश्चात परिवार जनों में शोक की लहर दौड़ पड़ती है, अतः है यहां करुण रस है।

देशभक्तिपरक लोकगीत :–

देश के प्रति भावपूर्ण अभिव्यक्ति, किसी वीर जवान का अपने देश के प्रति बलिदान अथवा किसी लोकगायक का देशानुराग जब लयात्मक अभिव्यक्ति पाकर फूटता है तो वे ही गीत देशभक्तिपरक लोकगीतों की श्रेणी में आते हैं। कुल्लू ज़िला में अनेक ऐसे वीर जवान हुए हैं जो अपने देश की रक्षा के लिए बलि–बेदी पर चढ़ गए और उन्हीं वीर जवानों की अमरगाथा का वर्णन लोकगायकों ने अपने गीतों में किया है। इस प्रकार के कई गीत कुल्लू ज़िला में प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त अपने देश के प्रति रागवृत्ति से भी यहाँ का लोकगायक अछूता न रह पाया। इन लोकगीतों में अपने देश की प्रकृति, यहाँ के जनमानस के प्रति अनुराग की अभिव्यक्ति भी देशानुराग के कारण ही हुई है।

उदाहरण 1.

"प्यारा म्हारा देश हो,
भोल़े – भाल़ै माह्णु हो.
एकै म्हारी धरती हो,
एकै म्हारा देश हो.

राती ध्याड़ी कमौणा हो,
देश आगै बढ़ाता हो.
मिली – जुली रौहणा हो,
देश आसा च़मकाणा हो।"

भावार्थ – प्रस्तुत गीत में देश प्रेम का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। लोकगायक इस गीत के माध्यम से विश्वबंधुत्व की भावना को दर्शा रहा है। वह कहता है कि हमारा यह देश बेहद प्यारा, अत्यंत सुन्दर है और यहाँ रहने वाले लोग भी बहुत भोले स्वभाव वाले हैं। लोकगायक कहता है कि हमारा देश एक ही है और हम सभी इसकी समृद्धि एवं विकास के लिए हम सभी मिल–जुलकर कार्य करेंगे।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :–

1. 'प्यारा म्हारा' में 'र', 'भोल़े – भाल़ै' में 'भ' और 'ल' वर्ण तथा 'राती ध्याड़ी', 'त' और 'ध' वर्ण अर्थात् एक ही उच्चारण स्थान से निकलने वाले शब्द की आवृत्ति होने से यहाँ क्रमशः अनुप्रास एवं श्रुत्यानुप्रास अलंकार हैं।

उदाहरण 2.

"ज़ान बि ध़िनी तैं देशै री त़ंइऐ, अमर तेरी कहाणी ल़ो,
तेरी कहाणी फ़ौज़िया डोल़ै रामा, अमर तेरी कहाणी ल़ो.
पिच्छै बोल़ा हटणा कदी नि सीखू, गोली यारा छ़ाती न खाई,
छ़ाती न खाई फ़ौज़िया डोल़ै रामा, अमर तेरी कहाणी ल़ो.
आमा बापू रै हिकड़ु चुटै, लाश ज़ैबे घौरा बै आणी ल़ो,
घौरा बै आणी फ़ौज़िया डोल़ै रामा, अमर तेरी कहाणी ल़ो.
ज़ान बि धिनी तैं देशै री त़ंइऐ, अमर तेरी कहाणी ल़ो।"

भावार्थ – प्रस्तुत गीत में एक व्यक्ति डोले राम की अमर गाथा का वर्णन किया गया है जिसने फौजी होते हुए देश सेवा के लिए अपनी जान की बाज़ी दे दी और अपने जीवन को अमर कर दिया। लोकगायक कहता है कि हे डोले राम! तूने पीछे हटना कभी भी नहीं सीखा अर्थात् हर परिस्थिति का हमेशा डटकर मुकाबला किया, इसी प्रकार जब देश सेवा की बात आई तो तुमने अपने सीने में गोली खा ली और अपनी जान की बाज़ी लगा ली। लोकगीत में आगे बेहद मार्मिक चित्रण करते हुए लोकगायक कहता है कि जब तेरी लाश घर पंहुचाई गयी तो तेरे माता–पिता का हृदय ही उस वेदना से टूट गया। फौजी डोले राम की देश–प्रेम की भावना को दर्शाता हुआ यह गीत अत्यन्त मार्मिक भाव से परिपूर्ण है।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :–

1. 'अमर तेरी' में 'र' वर्ण की आवृत्ति से अनुप्रास तथा 'आमा बापू' में 'म' और 'ब' वर्णों अर्थात् एक ही उच्चारण स्थान से निकलने वाले वर्णों की आवृत्ति होने से यहाँ क्रमशः अनुप्रास एवं श्रुत्यानुप्रास अलंकार हैं ।
2. 'पिच्छै बोल़ा हटणा कदी नि सीखू, गोली यारा छ़ाती न खाई' प्रस्तुत पंक्ति में व्यक्ति डोले राम की साहसिक वृत्ति का परिचय दिया गया है जहाँ वह छाती पर गोली तक खाने को तैयार हो जाता है। अतः 'उत्साह' नामक स्थायी भाव जागृत होने के कारण यहाँ 'वीर रस' की उद्भावना होती है।
3. 'आमा बापू रै हिकड़ु चुटै, लाश ज़ैबे घौरा बै आणी ल़ो' प्रस्तुत पंक्ति में डोले राम नामक उस नौजवान की लाश को माँ – बाप के सामने पंहुचाया जाता है तो उनका हृदय दुःख अथवा पीड़ा से तार – तार हो उठता

है। इस मार्मिक चित्रण के कारण यहाँ 'शोक' नामक स्थायी भाव जागृत होकर परिपुष्ट होता है। अतः यहाँ 'करुण रस' की उत्पत्ति होती है।

श्रम लोकगीत :-

शारीरिक श्रम से सम्बन्धित गीत श्रम गीतों की श्रेणी में आते हैं। इमारती लकड़ियों की कटाई– ढुलाई आदि का कार्य करते हुए, धान की रोपाई के दौरान, गेंहू – मक्की की कटाई या घास कटाई के दौरान कुल्लवी लोकसमाज में इस प्रकार के गीत प्रचलित हैं। ये गीत कामगारों का उत्साहवर्धन करते हैं, साथ ही समय का भी आभास नहीं होने देते। इन गीतों में सामूहिक कार्य की भावना विशेष महत्त्व रखती है।

उदाहरण 1.

"छ़ौली चोड़ै जैड़ै – जैड़े, ओच्छी भाऊए नीमूंए,
लाल बोला छापर बड़ाणा हो.
धान लूणै लैरे – लैरे ओच्छी भाऊए नीमूंए,
घीऊ बोला खिच़ड़ू खाणा ओ.
ऊऩ कौते शेरै – शेरै ओच्छी भाऊए नीमूंए,
च़ादरू बोला चितरा बड़ाणा ओ.
गाह लूणै ज़ैरे – ज़ैरे ओच्छी भाऊए नीमूंए,
विजा बोला दसमी जाणा ओ।"

भावार्थ – बड़ी बहन अपनी छोटी बहन नीमू को प्रत्येक कार्य शीघ्र करने की प्रेरणा देती है। जब तक हम छ्ली छप्पर पर नहीं डालते, तब तक दशहरा कहाँ देखा जा सकता है। धान काटकर, चितरा पट्टू (काला और सफ़ेद) बनाकर और घास आदि काट कर दोनों बहनें दशहरा देखना चाहती हैं। इन श्रम प्रधान गीतों में ग्रामीण परिवेश के कार्य एवं उसी व्यस्तता को दिखाया गया है। ग्रामीण स्त्रियाँ विभिन्न गृह कार्य की व्यस्तता के बावजूद भी मेला आदि में रुचि रखती हैं। इन गीतों में लोक स्पर्धा की भावना विद्यमान रहती है।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :-

1. 'जैड़ै – जैड़े', 'लैरे – लैरे', 'शेरै – शेरै', 'ज़ैरे – ज़ैरे' में एक ही शब्द की पुनरावृति होने के कारण यहां पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

2. 'लाल बोला छापर बड़ाणा' में 'ल' और 'ब', 'खिच़ड़ू खाणा' में 'ख' वर्ण की आवृत्ति होने के कारण यहां अनुप्रास तथा 'घीऊ बोला खिच़ड़ू' में 'घ' और 'ख'।

उदाहरण 2.

ज्येष्ठ और आषाढ़ माह में कुल्लू क्षेत्र में बेहद गर्मी रहती है, साथ ही गेंहू की कटाई भी उन्हीं दिनों की जाती है। ग्रामीण स्त्रियाँ दोपहर तक कृषि कार्य में व्यस्त रहती हैं। माँ के कार्य में हाथ बंटाने का भाव रखते हुए बालिकाएं भी गेंहू की कटाई करना चाहती हैं। इसी भाव को अभिव्यक्त करता यह लोकगीत है –

"आसा छेता बै जाणा,
दे आमा दाची आसा बै.
गेहूं लुणदै जाणा आसा,
महीने आए ज़ेठा शाढ़ै रै.

आसा छेता बै जाणा,

दे आमा दाची आसा बै।"

भावार्थ – लड़कियाँ अपनी माता से दराटी मांग रही हैं कि उन्हें भी अपनी माँ के साथ खेतों में काम करने के लिए जाना है। वे कहती हैं अपनी माँ से कि ज्येष्ठ आषाढ़ के दिन आ गए हैं अर्थात् ग्रीष्म ऋतु आ गयी है और गेंहू की कटाई शुरू हो चुकी है। वे भी माँ के साथ गेंहू काटने के लिए जाना चाहती हैं। इस गीत में बाल – सुलभ हृदय की चेष्टाओं को दर्शाया गया है, साथ ही सहयोग, समन्वय एवं सद्भाव की वृत्ति का भी वर्णन हुआ है।

रस एवं अलंकारों का विश्लेषण :–

1. 'छेता बै जाणा' में 'छ' और 'ज' वर्ण, 'दाची आसा बै' में 'द' और 'ब' वर्ण अर्थात् एक ही उच्चारण स्थान से निकलने वाले शब्दों की आवृत्ति होने के कारण यहां श्रुत्यानुप्रास अलंकार है।

निष्कर्ष :–

कुल्लवी लोकगीत प्राचीन भारतीय संस्कृति की गौरवमयी परम्पराओं, आस्थाओं, मान्यताओं एवं मूल्यों की यथार्थ अभिव्यंजना करते हैं। लयात्मकता, प्रभावान्विति तथा संगीतात्मकता कुल्लवी लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं हैं। लोकगीतों में रस और अलंकारों का कोई विद्वतापूर्ण प्रदर्शन नहीं हुआ है, बल्कि सहज ही रस और अलंकार कुल्लवी लोकगीतों में समाहित हो गए हैं, जिसके कारण ये गीत और अधिक आकर्षक एवं रसप्रिय बन पड़े हैं। बहुत अधिक रस और अलंकारों का प्रयोग भी इसमें नहीं मिलता, लेकिन जितना सहज स्वाभाविक प्रयोग हुआ है वह लोकगीतों को बेहद मार्मिक बनाता है।

संदर्भ :–

1. लोकविद् कृष्णा ठाकुर, जिला कुल्लू।
2. लोकगायिका श्वेता शर्मा, जिला कुल्लू।
3. लोकविद् डॉ. सूरत ठाकुर, जिला कुल्लू।
4. लोकगायक महेन्द्र सिंह, जिला कुल्लू।
5. लोकविद् पृथीचन्द, जिला कुल्लू।
6. लोकविद् डॉ. दयानन्द गौतम, जिला कुल्लू।
7. लोकगायिका सरला चम्बयाल, जिला कुल्लू।
8. लोकगायक नरेंद्र ठाकुर, जिला कुल्लू।
9. लोकगायिका सिमरन भारद्वाज, जिला कुल्लू।
10. लोकगायक शशि, जिला कुल्लू।
11. लोकगायिका अंशिका, जिला कुल्लू।

sangeetakaundal1@gmail.com

Mobile No- 7807333794

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 43-49

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान का उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं आत्मसम्प्रत्यय पर प्रभाव का अध्ययन

डॉ. राजेश शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर
सुनिता शर्मा, पी.एच.डी. शोद्यार्थी
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

सारांश :-

प्रस्तुत शोध मे "माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान का उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं आत्मसम्प्रत्यय पर प्रभाव का अध्ययन किया गया हैं। अध्ययन में प्राप्त आंकडों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गए है। यह अध्ययन राजस्थान के जयपुर व टोंक जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में अध्ययनरत् कुल 600 छात्र–छात्राओं पर किया गया है। इस हेतु नियंत्रण अवस्थान मापन हेतु संजय वोहरा, उपलब्धि अभिप्रेरणा मापन हेतु वी.पी. भार्गव (रिवाइसड 2010) व आत्मसम्प्रत्यय मापन हंतु (डॉ. एस. पी. अहलुवालिया रिवाइसड 2005) द्वारा निर्मित मानक उपकरणों का उपयोग किया गया है। निष्कर्ष रूप में पाया गया कि राजकीय व निजी के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा असमान है जबकि आत्म सम्प्रत्यय समान है।

प्रस्तावना :-

शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। बालक के विकास में व्यक्तित्व का विकास एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। लेकिन व्यक्तित्व का संतुलित विकास तभी संभव है, जबकि शिक्षक तथा माता–पिता को इस बात की जानकारी हो कि व्यक्तित्व क्या है? यह कैसे विकसित होता है? इसके विकास को कौन–कौन सी चीजें प्रभावित करती हैं। ये कितने प्रकार के होते हैं? तथा इसका मापन कैसे किया जा सकता है? एक शिक्षक, विद्यालय, प्रशासन तथा माता–पिता बालक के व्यक्तित्व को सही दिशा में विकसित कर सकते हैं।

नियंत्रण अवस्थान किसी व्यक्ति की सामान्य विश्वास से संबंधित घटनाओं को दर्शाता है जहाँ घटित होने वाली घटनाओं में उसका नियंत्रण होता है। दूसरे शब्दों में कुछ होने के लिये 'कौन' या 'क्या' उत्तरदायी है नियंत्रण अवस्थान इसे सुस्पष्ट व्यक्त करता है। वेनर के अनुसार "गुण सिद्धांत इस बात की अपेक्षा करता है कि व्यक्ति किसी कार्य को 'क्यों कर रहा है या क्या करना चाहता है' इसे बताने का प्रयास करता है, अर्थात्

गुण व्यक्तित्व का कारण होता है। यह त्रिस्तरीय क्रियाविधि है जो गुणों को दर्शाती है।

कोई बालक किसी विशेष घटना के प्रति अलग–अलग प्रकार का व्यवहार करता है। अलग–अलग बालकों में उस घटना के बारे में सोचने का नजरिया अलग–अलग होता है। उदाहरण के लिये कोई विद्यार्थी अगर कक्षा में देर से पहुँचता है तो वह ट्रेफिक या मौसम को कारण बताता है किंतु कोई बालक देर से आने के लिये स्वयं को दोषी मानता है। यह एक घटना विशेष के लिये दो बालकों के अलग–अलग सोचने का नजरिया है। इसे ही बिंदुपथ नियंत्रण या नियंत्रण अवस्थान कहते हैं, जो बालक के व्यक्तित्व को दर्शाता है।

प्रत्येक बालक के जीवन की सफलता उनके सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक कारकों से भी प्रभावित होती है। ये सभी कारक बालक के लिये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्धि प्राप्त करने हेतु एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक कार्य करते हैं। अतः अभिप्रेरणा का जीवन की संपूर्ण उपलब्धि के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। जीवन में सफलता प्राप्त करने की दृष्टि से उपलब्धि अभिप्रेरणा को महत्वपूर्ण माना गया है। उपलब्धि अभिप्रेरणा एक अर्जित अभिप्रेरक है। उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा विशिष्टता प्राप्त करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, इस अभिप्रेरणा का संबंध आगे बढ़ने की इच्छा के साथ है। इस प्रकार व्यक्ति में इस अभिप्रेरणा की उच्च परिसीमा उसे विभिन्न कार्य क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में सहायता देती है।

अभिप्रेरणा हमारे संवेगों से संबंधित होती है किंतु उपलब्धि हमारे अंतिम लक्ष्य से सम्बंधित होती है। उपलब्धि अभिप्रेरणा सफलता को प्राप्त करने तथा हमारे जीवन की हर आकांक्षाओं को पूर्ण करने पर आधारित होती है। व्यक्तियों की अपेक्षाएँ तथा आकांक्षाएँ उनके व्यवहार से प्रभावित होकर दिखती हैं। अभिप्रेरणा एक विधि है जिसमें अधिगमकर्त्ता की आवश्यकताओं की आंतरिक ऊर्जा उसके पर्यावरण में उसके लक्ष्य से सीधा सम्बंधित होती है। अभिप्रेरणात्मक पारिवारिक वातावरण छात्रों के मध्य उच्च शैक्षिक निष्पादन विकसित करता है। माता–पिता का प्रोत्साहन धनात्मक अभिप्रेरणा को विकसित करता है तथा छात्रों को स्पष्ट करता है कि नवीन अभिप्रेरक उनके स्वप्रत्यक्षीकरण को अच्छा करेगा।

आत्मसम्प्रत्यय वह सामान्यवाद है जिसका अर्थ है व्यक्ति के गुणों और व्यवहार आदि के संबंधों में उसका मत। एक व्यक्ति अपने गुणों और व्यवहार आदि के सम्बंधों में जो मत रखता है वही उसका आत्मसम्प्रत्यय या आत्मबोध है। प्रत्येक व्यक्ति का आत्मसम्प्रत्यय उसके विचारों पर आधारित होता हैं तथा उस व्यक्ति का आत्म–सम्प्रत्यय उसके विचारों पर आधारित होता है। आत्मसम्प्रत्यय व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु है।

व्यक्तित्व के तीन मुख्य गुण नियंत्रण अवस्थान, उपलब्धि अभिप्रेरणा तथा आत्मसम्प्रत्यय हैं। इनका एकदूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है? और नियंत्रण अवस्थान बालक को किस प्रकार प्रभावित करता है? यह बालक के उपलब्धि अभिप्रेरणा तथा आत्मसम्प्रत्यय पर अपना क्या प्रभाव डालता है? इस लिये शोधकर्त्री के द्वारा इन चरों को अपने शोध समस्या के रूप में लिया गया है।

प्रस्तुत शोध का महत्व :–

बालक के व्यवहार का प्रतिमान उसकी जन्मजात प्रकृति का आधार पर बनता है। बालक के जन्मजात व्यवहार का ज्ञान शिक्षकों एवं मनोवैज्ञानिकों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। बालक की जन्मजात क्षमताएँ उसकी जन्मजात प्रकृति के आधार पर समझी जा सकती है। अतः व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण गुण नियंत्रण

अवस्थान है जो व्यक्ति के उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं आत्मसम्प्रत्यय को प्रभावित करता है।

मानसिक स्वास्थ्य के लिये एक भ्रम यह भी है कि नियंत्रण अवस्थान आपके साथ ही रहता है। वह व्यक्ति जिसमें आंतरिक नियंत्रण अवस्थान होता है वह आशावादी, स्वस्थ्य एवं सफल होता है किंतु बाह्य नियंत्रण अवस्थान वाला व्यक्ति तनावग्रस्त, अस्वस्थ्य एवं निम्न निर्वहन क्षमता वाले होते हैं। नियंत्रण अवस्थान व्यक्ति के आत्मसम्प्रत्यय में भी वृद्धि करता है।

नियंत्रण अवस्थान का उपयोग शिक्षा में वृद्धि करने के लिये भी किया जाता है। यह हमेशा कहा जाता है कि संसार में उत्तम शिक्षा सफलता प्राप्त करने की कुँजी है। विद्यालयीन उपलब्धि को प्राप्त करने में कई कारकों की भागीदारी होती है, जिसमें से एक नियंत्रण अवस्थान है। शिक्षा के संदर्भ में विद्यालयीन कार्यों में विद्यार्थियों की सफलता एवं असफलता के लिये नियंत्रण अवस्थान को उत्तरदायी माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति यह विश्वास करता है कि उसकी सफलता एवं विफलता के लिये उसके स्वयं के प्रयास, क्षमता एवं योग्यता जिम्मेदार है तो उस व्यक्ति में आंतरिक नियंत्रण अवस्थान होता है। दूसरी तरफ यदि कोई व्यक्ति यह विश्वास करता है कि उसकी सफलता या असफलता उनके स्वयं के नियंत्रण से बाहर है जैसे किस्मत या भाग्य के कारण तो उसमें बाह्य नियंत्रण अवस्थान होता है। इसके द्वारा हम अधिगम बाधित एवं वयस्क विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान को परिवर्तित करने का सुझाव दिया जा सकता है।

नियंत्रण अवस्थान सफलता के प्रति प्रतिक्रिया पर भी प्रभाव डालता है। आंतरिक नियंत्रण अवस्थान वाले जब तक सफलता प्राप्त नहीं होती है तब तक कठिन परिश्रम करते रहते हैं किंतु बाह्य नियंत्रण अवस्थान वाले व्यक्ति असफलता प्राप्ति पर उस कार्य को छोड़कर दूसरा कार्य करने लगता है। आंतरिक नियंत्रण अवस्थान वाले विद्यार्थी दूसरी बार समय मिलने पर और अधिक समय व्यतीत करते हैं जबकि बाह्य नियंत्रण अवस्थान वाले व्यक्ति उस कार्य में कम समय व्यतीत करते हैं। नियंत्रण अवस्थान विद्यार्थियों के वातावरण, सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि, आर्थिक स्तर आदि के द्वारा प्रभावित होता है।

आत्मसम्प्रत्यय बच्चों के उस विश्वास पर निर्भर करता है कि उनके माता–पिता, अध्यापक अथवा समकक्ष समूह उनके विषय में क्या सोचते हैं। इस प्रकार ये दर्पण प्रतिमाएँ हैं। यदि बच्चों में यह विश्वास हो कि ये महत्वपूर्ण व्यक्ति इनके बारे में सकारात्मक ढंग से सोचते हैं तो वे अपने विषय में भी सकारात्मक सोच रखेंगें तथा यदि बच्चों का यह विश्वास है कि इन व्यक्तियों का उनके विषय में नकारात्मक दृष्टिकोण है तो वे स्वयं अपने विषय में भी नकारात्मक ढंग से सोचेंगे।

माता–पिता और अन्य व्यक्ति जिनको बच्चे किसी प्रकार से अपने लिये महत्वपूर्ण समझते हैं उनका प्रोत्साहन, प्यार, प्रशंसा, सांत्वना, सकारात्मक टिप्पणी, उचित देखभाल तथा उनका हित बच्चों में सकारात्मक आत्मसम्प्रत्यय या उच्च आत्मसम्मान विकास को प्रोत्साहित करेगा।

सकारात्मक आत्मसम्प्रत्यय वाले विद्यार्थियों का दूसरों की अपेक्षा अपने पर अधिक विश्वास होता है और वे सहर्ष दूसरों द्वारा की गई आलोचनाओं और सुझावों को स्वीकार कर लेते हैं। दूसरी और ऐसे विद्यार्थी जिन का आत्मसम्प्रत्यय निम्न होता है, वे दूसरों द्वारा की गई आलोचना तथा दोषारोपणों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। यदि कोई काम बिगड़ जाए तो वे अपने को दोषी मानते हैं। अधिकांश विद्यार्थी जिनका आत्मसम्प्रत्यय निम्न होता है, वे सरल कार्यों को जिनमें वे निश्चित रूप से सफल हो सकते हैं, करना अधिक पसंद करते हैं।

इसका शिक्षा में अत्यंत महत्व है। इसका विद्यालयीन विद्यार्थियों पर अत्यंत प्रभाव पड़ता है तथा शिक्षकों को भी उनके कार्य में कम तनावग्रस्त करता है, ताकि वे कक्षागत क्रियाओं को सुचारू रूप से व्यवस्थित कर सकें।

समस्या कथन :-

"माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान का उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं आत्मसम्प्रत्यय पर प्रभाव का अध्ययन।"

शोध शीर्षक में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण :-

नियंत्रण अवस्थान :- नियंत्रण अवस्थान से तात्पर्य व्यक्ति का वह व्यवहार जो उसकी सफलता या असफलता के लिये स्वयं के नियंत्रण या भाग्य, किस्मत के नियंत्रण को दर्शाता है। यह किसी व्यक्ति की सामान्य विश्वास से सम्बंधित घटनाओं को दर्शाता है जहाँ घटित होने वाली घटनाओं में उसका नियंत्रण होता है। दूसरे शब्दों में कुछ होने के लिये 'कौन' या 'क्या' उत्तरदायी है नियंत्रण अवस्थान इसे सुस्पष्ट व्यक्त करता है। विद्यार्थियों का नियंत्रण अवस्थान विद्यार्थियों की विशिष्ट योग्यता, विशिष्ट आशाओं व रूचियों से घनिष्ट रूप से संबंधित होता है तथा आंतरिक व बाह्य नियंत्रण अवस्थान को अनेक कारक प्रभावित करते हैं जैसे उपलब्धि, सामाजिक स्थिति, देश–काल, परिस्थिति आदि। आंतरिक नियंत्रण अवस्थान वाले व्यक्ति, बाह्य नियंत्रण अवस्थान वाले व्यक्तियों से हर क्षेत्र में श्रेष्ठ होते हैं।

उपलब्धि अभिप्रेरणा :- जीवन में सफलता प्राप्त करने की दृष्टि से उपलब्धि अभिप्रेरणा को महत्वपूर्ण पाया गया है। उपलब्धि अभिप्रेरणा एक अर्जित अभिप्रेरक है। अभिप्रेरणा हमारे संवेगों से संबंधित होती है किंतु उपलब्धि हमारे अंतिम लक्ष्य से संबंधित होती है। उपलब्धि अभिप्रेरणा सफलता को प्राप्त करने तथा हमारे जीवन की हर आकांक्षाओं को पूर्ण करने पर आधारित होती है। व्यक्तियों की अपेक्षाऐं तथा आकांक्षाऐं उनके व्यवहार से प्रभावित होकर दिखती हैं। उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा विशिष्टता प्राप्त करना चाहते हैं।

आत्म सम्प्रत्यय :- आत्म सम्प्रत्यय हमारे जीवन का एक आंतरिक कारक हैं। हम आईने में स्वयं को देखकर यह नहीं जान सकते की हम क्या हैं। आत्म सम्प्रत्यय हमें दूसरों से पृथक करता है। अचानक ही हम स्वयं में जो बदलाव देखते हैं वह प्रत्यय का ही एक भाग है। वे व्यक्ति जो आत्म सम्प्रत्यय के विषय में ध्यान केंद्रित करते हैं वह इस बात पर पहले ध्यान देते हैं कि कौन सा आत्म सम्प्रत्यय उनके लिये ज्यादा स्थायी है क्योंकि स्थायी आत्म सम्प्रत्यय हमारी मानसिक दशा एवं हमारे सामंजस्य को दर्शाता है जिसमें क्षण प्रतिक्षण परिवर्तन नहीं होता है।

अध्ययन के उद्देश्य :-

1. माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के उपलब्धि अभिप्रेरणा का विद्यालय प्रकार, लिंग एवं परिवेश के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के आत्मसम्प्रत्यय का विद्यालय प्रकार, लिंग एवं परिवेश के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ :–

1. राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नही है।
2. राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों के आत्म सम्प्रत्यय में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यादर्श :– प्रस्तुत शोध में न्यादर्श के रूप में जयपुर व टोंक जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में अध्ययनरत् कुल 600 छात्र–छात्राओं का चयन किया गया है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण :–

1. नियंत्रण अवस्थान मापनी (संजय वोहरा) :–

शोधकर्त्री द्वारा अपने शोधकार्य में नियंत्रण अवस्थान को मापने के लिये संजय वोहरा द्वारा निर्मित 'लेवनसन का लोकस ऑफ कंट्रोल स्केल' का प्रयोग किया गया।

2. उपलब्धि अभिप्रेरणा मापनी (वी.पी.भार्गव रिवाइसड 2010) :–

शोधकर्त्री द्वारा अपने शोधकार्य में उपलब्धि अभिप्रेरणा के मापन के लिये वी.पी.भार्गव द्वारा निर्मित उपलब्धि प्रेरणा परीक्षण मापनी का प्रयोग किया गया।

3. आत्मसम्प्रत्यय मापनी (डॉ. एस.पी. अहलुवालिया रिवाइसड 2005) :–

शोधकर्त्री द्वारा अपने शोधकार्य में आत्मसम्प्रत्यय के मापन के लिये डॉ.एस.पी.अहलुवालिया द्वारा निर्मित चिल्ड्रनस सेल्फ कॉन्सेप्ट स्केल का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण व विवेचन –

1. राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या – 1

संस्थान	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी मान	सार्थकता का स्तर
राजकीय विद्यालय	400	25.56	7.492	7.554	अस्वीकृत
निजी विद्यालय	400	24.54	7.560		

व्याख्या :– राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में अन्तर देखने हेतु विश्लेषित आकड़ों के आधार पर टी का मान ज्ञात किया गया जिसके अनुसार राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में अन्तर पाया गया। अतः यहॉ पर निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है और निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर पाया जाता है।

2. राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों के आत्मसम्प्रत्यय में कोई सार्थक अन्तर नही है।

सारणी संख्या – 2

संस्थान	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी मान	सार्थकता का स्तर
राजकीय विद्यालय	400	41.28	12.560	1.923	स्वीकृत
निजी विद्यालय	400	43.04	13.320		

परिकल्पना संख्या 2 के अनुसार राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की आत्मसम्प्रत्यय में अन्तर देखने हेतु विश्लेषित आकड़ों के आधार पर टी का मान ज्ञात किया गया जिसके अनुसार राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की आत्मसम्प्रत्यय में अन्तर नहीं पाया गया। अतः यहॉ पर निर्धारित परिकल्पना स्वीकृत की जाती है और निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की आत्मसम्प्रत्यय में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

निष्कर्ष :-

1. राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा समान है।
2. राजकीय एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की आत्मसम्प्रत्यय में समान है।

उपयोगिता :-

1. नियंत्रण अवस्थान बालक की उपलब्धि, अपेक्षा, आत्म–सम्मान, जोखिम लेने के व्यवहार एवं क्रियाओं के परिणाम से संबंधित होता है। अतः माता–पिता की अभिभावकीय शैली बालक को दृढ़ पहचान तथा पालक–पाल्य संबंध के लिये तैयार करती है।
2. उपलब्धि अभिप्रेरणा का विकास अधिक होने से विद्यार्थियों में स्वयं में सुधार के लिये स्वयं के कौशलों का उपयोग करने की प्रायिकता होती है। वे ऐसे कार्यों को वरीयता देते हैं जिनके करने में कुछ प्रयासों की आवश्यकता होती है।
3. आत्मसम्प्रत्यय के विकास से बालक का संवेगात्मक विकास होता है। अतः बालक की संवेगात्मक बुद्धि के विकास के लिये उसे सदैव अपने आत्मसम्प्रत्यय को उत्तम बनाने का प्रयास करना चाहिये।

भावी शोध हेतु सुझाव –

1. प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्री ने केवल माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों को ही शामिल किया है। आगामी शोध के लिए महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों को भी लिया जा सकता है।
2. विद्यार्थियों के नियंत्रण अवस्थान का उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं आत्मसम्प्रत्यय पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :-

1. अहमद, डब्लू. एवं ब्रूनिसभा, एम. (2006) ए स्ट्रक्चरल मॉडल ऑफ सेल्फ–कॉन्सेप्ट, ऑवेनोमस मोटिवेशन एण्ड एकेडेमिक परफारमेन्स इन क्रास कल्चरल पर्सपेक्टिव, इलैक्ट्रोनिक जर्नल ऑफ रिसर्च इन एजूकेशनल साइकोलॉजी, वॉल्यूम 4, 2006
2. कपिल, एच. के. (2006), सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
3. डॉ. शर्मा, वी. एस. ''शिक्षा मनोविज्ञान'' साहित्य प्रकाशन आगरा (2004)
4. डॉ. अरोड़ा रीता, सुदेश मारवाह (2005) '' शिक्षा मनो विज्ञान एवं सांख्यिकी'' शिक्षा प्रकाशन, जयपुर पृष्ठ संख्या (407–430)
5. भार्गव, ऊषा (1993) किशोर मनोविज्ञान, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ संख्या–109

6. शैली, एस. एवं कौर, एम. (2006) साइनेश एण्ड सेल्फ कॉन्सेप्ट अमंग हाई एण्ड लो सोशियों इकॉनोमिक स्टेट्स एडोलसेन्ट्स, जर्नल आफॅ कम्यूनिटी गाइडेंस एण्ड रिसर्च, वॉल्यूम 23, नं0 3, जुलाई 2006
7. देशमुख, एस.एच. एवं स्वालखी, एस.पी. (2010). सेल्फ–कॉन्सेप्ट, इमोशनल इंटेलीजेन्स एण्ड ऐडजस्टमेन्ट ऑफ एडल्ट्स, इण्डियन जर्नल आफॅ साइकोमेट्री एण्ड एजूकेशन, वॉल्यूम 42 (2), जुलाई 2010
8. सुखिया, एस.पी. (1990) शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व. आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
9. मिश्रा, एम. (2006). संस्कृत एवं हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों की अधिगम शैलियों का उनकी बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन. भारतीय आधुनिक शिक्षा, 31(2), 63, 67
10. श्रीवास्तव, डी.एन. और वर्मा, प्रीति (2007) शिक्षा अनुसंधान में सांख्यिकी विधियाँ आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 50-54

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मालती जोशी की कहानियों में चित्रित परिवारों में बदलते नाते

E. JACQUELINE, Ph.D. Scholar,

Dr. ANURADHA PAKALAPATI, Assistant Professor,

Department of Hindi, School of Languages, Vels Institute of Science, Technology and Advanced Studies (VISTAS)

भूमिका :–

औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण समाज को परिवर्तित करने का कारक हैं। इन परिवर्तनों में परिवार और विवाह भी शामिल है। एक ओर पारिवारिक संरक्षण, पारिवारिक संगठन, पारिवारिक परिवेश, पारिवारिक गतिविधियों और पारिवारिक स्वरूपों में परिवर्तन हुए तो दूसरी ओर वैवाहिक संरचना स्वरूप में भी कई परिवर्तन हो रहे हैं। इनका प्रसंग हमें मालती जोशी जी की कहानियों में देख सकते हैं। इन परिवर्तनों और उनके सक्रिय भागों के बारे में चर्चा इस इकाई में प्रस्तुत की गई है।

परिवार का अर्थ एवं परिभाषा :–

परिवार ही समाज की मुख्य आधार है। आरंभ काल में परिवार का संरचना प्राणी शास्त्रीय आवश्यकताओं के कारण हुआ जो मनुष्य की अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ती का साधन बन गया। अमेरिकी समाज शास्त्री मैकाइवर परिवार को परिभाषित करते हुए कहा, "परिवार वह समूह है जो कि लिंग सम्बन्ध पर आधारित होता है और यह काफ़ी छोटा एवं इतना स्थायी है कि बच्चों की उत्पत्ति और पालन–पोषण करने योग्य है।"[1] इस परिभाषा से स्पष्ट है कि परिवार ही वह समूह है जहाँ पति–पत्नी के यौन संबंधों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है।

आधुनिक परिवार में परिवर्तन :–

आधुनिक दौर में पारिवारिक परिवेश में परिवर्तन बहुत तेज़ी से क्रियाशील हो रहे हैं। समकालीन संदर्भ में इस बात की आवश्यकता महसूस होती है कि परिवार में होने वाले परिवर्तित विषय में अनुसंधान का अध्ययन किये जाए। मालती जोशी जी की कहानियों में मध्यवर्गीय पारिवारिक परिवेश अधिकांशतः देख सकते हैं क्योंकि वे मध्यवर्गीय परिवार में पली–बढ़ी और विवाह हुईं। मालती जोशी जी ने अपने कहानी साहित्य में सामान्य मनुष्य की जिन्दगी में जीवन जीने की विषम आर्थिक स्थितियाँ, वैज्ञानिकीकरण, औद्योगीकरण से उत्पन्न विभिन्न नवीन स्थितियाँ और समस्याएँ, पूँजीवादी व्यवस्था के भयभीत त्रासद परिणाम, नैतिक मूल्यों का विघटन, महानगरीय जीवन की अनेक समस्याएँ, सामाजिक अव्यवस्था के प्रति तीव्र असंतोष, प्रेम का नवीन भाव–बोध, टूटते–बिखरते पारिवारिक संबंध, नारी में आधुनिकता और परंपरा का द्वंद्व, युवा आक्रोश, प्रतिभा की अवमानना, स्त्री–पुरुषों के

संबंधों में बदलाव आदि का यथार्थ चित्रण अधिकांश रूप में किया है।

संयुक्त परिवार का परिवर्तित स्वरूप :-

संयुक्त परिवार भारतीय समाज की अत्यन्त प्राचीन व महत्त्वपूर्ण संस्था है। यह प्रकार का परिवार उन्नीसवीं सदी तक भारतवर्ष में पाया जाता है। इन परिवारों को ज्यादातर गाँवों में दिखाई देती है। औद्योगीकरण, महा–नगरीकरण के कारण संयुक्त परिवार के स्वरूप टूटकर एकल परिवार के स्वरूप धारण लिया है।

परिवार के आकार में परिवर्तन :-

तत्काल के समय में परिवार का आकृति घटता चले जा रहा है अर्थात् पारिवारिक सदस्यों की संख्या सीमित हो जा रही है। लोगों का झुकाव सीमित परिवारों की ओर बढ़ता जा रहा है। परिवार सदस्यों की रुचियों ने परिवारिक सदस्यों की संख्या को सीमित कर दिया है। तत्काल समय में संयुक्त तथा विस्तृत परिवारों के स्थान पर एकल परिवार ही अधिक मात्रा में देखने को मिलते हैं। इस प्रकार के विकसित आधुनिक परिवारों में पति–पत्नी और उनकी अविवाहित संतान ही सम्मिलित रहते हैं।

पति-पत्नी के संबंधों में परिवर्तन :-

पहले के समय में पति में चाहे कितनी भी बुराइयाँ हो, चाहे वह अत्याचारी हो, उसे पत्नी द्वारा परमेश्वर का दर्जा दिया जाता था। पत्नी उसका आदर–सत्कार करती थी। उसकी उचित–अनुचित सभी प्रकार की इच्छाओं का पालन करती थी। पत्नी को पति के भोजन करने के तत्पश्चात ही भोजन करना होता था। इसका उल्लेख मालती जोशी जी की कहानी संग्रह "औरत एक रात है" की कहानी 'स्मृति कल्प' में भी मिलता है। इस कहानी की नायिका शोभा दीदी है। उसकी शादी के कुछ दिन के बाद में पता चलता है कि लड़का तो रोग की पुड़िया है। शोभा ने कहा कि "पति चाहे लंगड़ा, लूला, काना, कूबड़ा हो, तब भी हिन्दुस्थानी पत्नी उसकी दीर्घायु कामना करती है। मनौतियाँ मानती है, क्यों ? क्योंकि उसे मालूम है कि पति के बिना उसका अस्तित्व शून्य है। घर–परिवार में उसका मान–सम्मान, समाज में उसकी प्रतिष्ठा सब पति के दम से होती है।"[2] परंतु वर्तमान समय में ऐसा नहीं है। वर्तमान शिक्षा और सामाजिक चेतना ने स्त्रियों को इतना जागरूक बनाया है कि वे अपने अधिकारों के प्रति समवेत रहना और उन्हीं के अनुरूप व्यवहारों को महत्व देने में समर्थ हो गई हैं। अब वह पति की दासी नहीं अपितु साथी के रूप में जीवन जी रही हैं।

वैवाहिक और यौन संबंधों में परिवर्तन :-

आधुनिक संदर्भ में विवाह और यौन संबंधों में भी काफ़ी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। बाल विवाह लगभग पूरी तरह में समाप्त हो चुके हैं और जीवन की व्यवस्था के कारण विवाह में भी बहुत काल होने लगे हैं। साथ ही जीवन साथी के चयन में भी पहले की तुलना में काफ़ी स्वतंत्रता दी जाने लगी है। परिवार द्वारा तय किये जाने वाले व्यवस्थित विवाह की अपेक्षा प्रम विवाह, अदालत विवाह, अंतर्जातीय विवाह की संख्या में दिन प्रति दिन संवृद्ध होता जा रहा है। विवाह के बारे में मालती जोशी जी का मत है, "विवाह केवल प्रणय का बंधन नहीं है। इससे आगे बहुत कुछ है। एक–दूसरे को सहारा देने की शर्त है। परस्पर के प्रति विश्वास के साथ जीने

की शर्त है।"[3] मालती जोशी जी की कहानी 'स्नेहबंध' में अंतर्जातीय विवाह का उल्लेख मिलता है। कहानी की नायिका मीता और कहानी के नायक ध्रूव ने अंतर्जातीय विवाह किया था। माँ ने शादी के लिए इतनी नाराज़गी व्यक्त नहीं कि जितनी मीता के आचरण पर की। सास ने बहू के लिए एक आचार–विचार संहिता बनाकर दी। जैसे– "मीता अब शादी के बाद ही इस घर में आयेगी। भविष्य में वह बाल नहीं कटवायेगी। हाथ में चूड़ियाँ डालने की आदत डालेगी। शादी में सिर ढँकेगी। घर में मेहमान रहेंगे तब तक साड़ी पहनेगी। लोगों के सामने ध्रूव को नाम लेकर नहीं पुकारेगी।"[4] इसके द्वारा समाज में वैवाहिक और यौन संबंधों में होनो वाले परिवर्तन को हम देख सकते हैं।

विधवा पुनर्विवाह समायोजन :-

आजकल समाज में विधवा स्त्री के प्रति भी परिवार में सहानुभूति का वातावरण प्रकट किया जाने लगा है। वर्तमान संदर्भ समाज में विधवा पुनर्विवाह के लिए सहयोग दिया जा रहा है। इसलिए समाज अनुशंसा करता है कि पति या पत्नी मृत्यु के बाद जीवन साथी के रूप में पुनर्विवाह करें। परिणामस्वरूप यह उन लोगों के पुनर्वास का मार्ग प्रशस्त करता है जिन्होंने इपने पति या पत्नी को खो दिया है।

पिता के अधिकारों में कमी और अन्य सदस्यों का बढ़ता महत्त्व :-

पहले के समय में परिवार में पिता की भूमिका बहुत महत्त्वर्ण होती थी। वह ही आय–व्यय का लेखा–जोखा रखते थे। सभी निर्णय लेने का अधिकार उन्हें ही रहता था। पूरे परिवार पर उनकी सत्ता रहती थी, परंतु अब सभी निर्णयों में पिता के अलावा अन्य पारिवारिक सदस्यों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण हो रहा है। अब कुछ निर्णयों में पत्नी और बच्चों की भागीदारी को भी महत्त्व दिया जा रहा है। अब बच्चों को सुधारने या समझने के लिए पहले की तरह मार–पीट का सहारा नहीं लिया जाता है, बल्कि इसके स्थान पर उन्हें समझाकर सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया जाता है।

सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से स्त्रियों की स्थिति में सुधार :-

वर्तमान समय में स्त्रियों को पहले की तरह चारदीवारी में कैद करके नहीं रखा जाता है। आज हम इस कहावत सच देख सकते हैं कि महिलाएँ राष्ट्र की आँखें होती हैं। अब इन्हें नौकरी करने, व्यवसाय करने, व्यापार करने आदि की स्वतंत्रता प्राप्त है। वे पुरुषों के लिए भार–स्वरूप नहीं रही, अब वे अपना भरण–पोषण कर सकती है। स्त्रियों की आर्थिक दशाओं में सुधार होने के कारण सामाजिक दशा में भी सुधार अवश्य हुआ है और अब उनको पारिवारिक मसलों में महत्त्व दिया जाने लगा है। आज वे सामाजिक जीवन से जुड़ी प्रायः सभी गतिविधियों में भाग लेती हैं। इस परिस्थिति की उल्लेख मालती जोशी जी की कहानी 'आखिरी शर्त' में देख सकते हैं। मम्मी–पापा कहने के बाद भी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। उस समय माँ–बाप कहा करते थे कि लड़की को बी. ए. पढ़ाने पर एम.ए. लड़का कहाँ से लायेंगे। कुसुम ने जब जाना कि दीदी मधु ब्याह करने जा रही हैं तब उसने उसे टोका कहा कि लड़की प्रिलिम की परीक्षा दे रही है। हो सकता है आई.ए.एस. में निकल जाए। उसकी ब्याह अभी करने में क्या तुक है। वह स्कॉलर है। उसे अपना कैरियर बनाने दो। अपने परिवार में कोई तो कलेक्टर

बने। तब आधुनिक युग की माँ ने भी वही कहा जो पुराने जमाने की माँ ने कहा था– "उस कलक्ट रानी के लिए हम कमिश्नर दूल्हा कहाँ से लाएँगे यह भी सोचा है।"[5] हालांकि इन परिवर्तनों ने परिवार में कुछ संघर्ष की दशाओं को भी जन्म दिया है।

नातेदारी का घटता महत्व :-

वर्तमान समय में लोगों के पास समय की अत्यंत कमी जिसके कारण लोग अपने नातेदारों, रिश्तेदारों से दूर होते चले जा रहे हैं। आजकल पति–पत्नी दोनों कार्यभार की वजह घर से बाहर जाना पड़ता है। इसलिए रिश्तों के लिए समय दे नहीं सकता। इसी कारण लोगों के संबंधों में घनिष्ठता की कमी होती चली जा रही हैं। इन आधुनिक परिवर्तनों से नातेदारों का महत्व दिन प्रतिदिन घटता ही जा रहा है।

परिवार में अस्थायित्व व्याप्त होना :-

वर्तमान समय में परिवार अपने स्थायित्व को बनाए रख पाने में असमर्थ होता जा रहा है। पति–पत्नी द्वारा अपने कर्तव्यों के जगह पर अपने अधिकारों को प्राथमिकता दी जाने लगी है। सभी अपनी आवश्यकताओं को किसी भी कीमत पर पूरा करने में मशगूल हैं। इन कारणों से परिवार में तनाव की स्थिति पैदा होने लगी है और इसके परिणामस्वरूप पति–पत्नी में तलाक की घटनाएँ सामने आने लगी हैं। यदि अपने चारों ओर के नगरीय परिवेश को ध्यान पूर्वक देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि इन क्षेत्रों में तलाक की घटनाएँ दिन प्रति दिन बढ़ती ही चली जा रही है। यह परिवार के स्थायित्व के लिए उचित नहीं है।

परिवार के सहयोगी आधार में परिवर्तन :-

वर्तमान समय में व्यक्तिवादिता का भाव बढ़ता ही जा रहा है। व्यक्ति अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगा हुआ है। आज स्वार्थ के लिए माता–पिता, भाई–बहन और अन्य सदस्यों के स्थान पर अपने हित अधिक महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। इस कारण से पारिवारिक संगठन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ का प्रसंग हमें मालती जोशी की कहानी 'साँस–साँस पर पहरा बैठा' कहानी में से मिलता है। इस कहानी की एक पात्र सीमा की माँ एम.बी. बी.एस. पढ़कर किसी प्रैक्टिस किये बिना घर पर रही। मालती जी की नज़र में कुछ पढ़ी–लिखी महिलाएँ निरुपयोगी जीवन जीती हैं। अपनी पढ़ाई–लिखाई बर्बाद करने का उन्हें पूरा अधिकार है परंतु यह बात डॉक्टरों पर लागू नहीं होती। उन्हें इस बात का प्रमाण हमें 'साँस–साँस पर पहरा बैठा' कहानी में ऐसा मिलता है–"डॉक्टर यदि घर में बैठ जाए तो यह अन्याय ही होगा न? एक विद्यार्थी को डॉक्टर बनाने में शासन का कितना खर्च आता है, जानती हो? और तुम जैसे लोग उस कर्च को मिट्टी कर देती हैं। एक तो तुमने एक होनहार छात्र की सीट छीन ली, फिर उसका उपयोग भी नहीं किया। यह दोहरा अन्याय है"[6]। अब पारिवारिक सदस्यों में पहले के समान सहयोग, त्याग, प्रेम आदि की भावना का लोप होने लगा है। आज परिवार की नियंत्रण शक्ति अत्यंत कमज़ोर हो रही है।

निष्कर्ष :- इस इकाई के माध्यम से निःसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि मालती जी ने अपने कहानी साहित्य में विविध विषयों को यथार्थ रूप से अभिव्यक्त कर अपनी अप्रतिम सृजन प्रतिभा का परिचय दिया है।

परिवार के प्रकार्य, परिवार की संरचना पर निर्भर करता है और समाज की प्रकृति, परिवार के प्रकार्यों को निर्धारित करती है। परिवार के प्रकार्य, जैसे– बच्चों का प्रजनन के बाद पोषण एवं संरक्षण प्रदान करना, उन्हें रोटी, कपड़ा और मकान उपलब्ध करवाना, यौन व्यवहार को नियंत्रित करना, समाजीकरण संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करना, भावनात्मक प्रोत्साहन, सामाजिक पहचान दिलवाना आदि कार्य परिवार द्वारा किये जाते रहे हैं। परन्तु आधुनिक भारतीय परिवार में इन कार्यों में परिवर्तन हो रहे हैं, लेकिन इस परिवर्तन में भी परंपरागत परिवार के लक्षणों को देखे जा सकते है।

संदर्भ सूची :-

1. मैकाइवर –सोसाइटी (Society), पृ. सं.–238
2. मालती जोशी – औरत एक रात है, स्मृति कल्प, पृ. सं.–84
3. स्मारिका – 1995, पृ. सं.– 42
4. मालती जोशी – मालती जोशी की कहानियाँ, स्नेहबंध, पृ. सं.– 80
5. मालती जोशी – आखिरी शर्त, पृ. सं.–10
6. मालती जोशी – पिया पीर न जानी, साँस साँस पर पहरा बैठा, पृ. सं.–127

Mail ID : jacquelinejhon@gmil.com, Phone No. : 9841777187

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 55-59

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वाल्मीकि रामायण में निरूपित शैक्षिक मूल्यों का अध्ययन

डॉ. राजेश शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर
विद्या शर्मा, पी.एच.डी. शोद्यार्थी
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

सारांश :-

वाल्मीकि रामायण का विवेचन किया जाए तो शैक्षिक मूल्यों में उनकी दृढ़ आस्था के दर्शन होते है और वर्तमान समय में मूल्यों के प्रति जो गिरावट आई है उनका समाधान मिल सकता है क्योंकि वाल्मीकि ने रामायण में सत्य को शिक्षा को धर्म कहा है धर्म को सत्य कहा है और सत्य को भगवान् कहा है। इस प्रकार अगर वाल्मीकि रामायण के अनुसार हम धर्म का पालन करते है तो सत्य के मार्ग पर चलते है सत्य के मार्ग पर चलने से हमें ईश्वर की प्राप्ति होती है। क्योंकि सत्य एक शाश्वत सार्वभौमिक मूल्य है यह सनातन है। यह बात मनुष्य जब समझ सकता है जब वह चेतना की शक्ति को पहचाने। इसलिए रामायण में हर प्रकार की समस्या का समाधान दिया गया है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित शैक्षिक मूल्यों, धार्मिक मूल्यों, सामाजिक मूल्यों एवं नैतिक–मूल्यों में विशेष अन्तर नहीं है उनका कहना है कि नैतिकता ही है जो मानव व्यवहार में अपनाकर समाज में प्रत्येक होता है।

संकेत शब्द :- महर्षि वाल्मीकि, रामायण, शैक्षिक मूल्य।

प्रस्तावना :-

किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन वहां के जनमानस के आचरण गत–मूल्यों के आधार पर होता है। प्रत्येक राष्ट्र की एक परम्परागत संस्कृति होती है जिसका सृजन उन मूल्यों के आधार पर होता है, जिन्हें वहाँ के महापुरूषों ने अपने जीवन में अपनाया। कई बार साहित्य में मूल्यों का बाह्यारोपण भी दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः उन मूल्यों के और उनके माध्यम से ही उनका चरित्र एवं व्यक्तित्व गौरवमय बनकर स्वर्णाक्षरों में अंकित हुआ है। किसी देश की भौतिक संस्कृति का व प्रगति का बहुत महत्व है लेकिन भौतिक प्रगति को उस देश का शरीर कहा जा सकता है, जबकि उसमें प्राण तत्त्व का संचार करने वाले जीवन–मूल्य ही होते हैं।

किसी भी समाज की धारणाएं, मान्यताएं, आदर्श और उच्चतर आकांक्षाएं ही वहाँ के जीवन–मूल्यों का सृजन करती हैं और ये देश, काल व परिस्थिति के सापेक्ष होती हैं। यद्यपि इन मूल्यों की आधार भूमि में प्रायः परिवर्तन नहीं होता परन्तु उनके वहृत रूप में परिस्थिति जन्य परिवर्तन होता रहता है।

जब साहित्य में मूल्य साहित्यकार की भावभूमि का स्पर्श किये बिना केवल बौद्धिक सहानुभूति से युक्त संवेदनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं, तो ऐसी दशा में साहित्य में मूल्यों का बाह्यारोपण सृजन क्षमता को

कुण्ठित करके कृति को अक्षम बना देता है। परिणामतः कृति भावात्मक संस्पर्श से विरहित होकर कृत्रिम प्रतीत होने लगती है। कलाकृति की सार्थकता इसी में है कि वह अपने सजीव एवं गहन सम्पर्क से संवेदनशील व्यक्ति की अनुभूतियों को जागृत करके एक भिन्न दशा में पहुँचा दे।

स्वतंत्र भारत में भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास किस प्रकार से किया जा सकता है? इस सम्बन्ध में राधाकृष्णनन् आयोग, मुदालियर आयोग और कोठारी आयोग पहले ही अनेक सुझाव दे चुके हैं और यह स्पष्ट कर चुके हैं कि भारतीय शिक्षा प्रणाली भारतीय जीवन मूल्यों और आदर्शों पर आधारित होगी। भारतीय जीवन मूल्यों और आदर्शों का एक मात्र स्त्रोत भारतीय वाड्.मय है, जो ऋगवेद से लेकर रामचरितमानस् तक फैला हुआ है।

भारतीय वाड्.मय में वाल्मीकि रामायण असाधारण महत्व का ग्रन्थ है। यद्यपि इस ग्रन्थ की गणना इतिहास ग्रन्थों के साथ होती है फिर भी शैक्षिक मूल्यों की दृष्टि से यह एक अनुपम, अद्वितीय ग्रन्थ है। वाल्मीकि रामायण लौकिक संस्कृत का आदि काव्य है। इस ग्रन्थ में अयोध्या के राजा दशरथ के राजकुमारों– राम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न – की शिक्षा–दीक्षा का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त महर्षि वाल्मीकि ने राम की शिक्षा–दीक्षा के माध्यम से शिक्षा के जिन आदर्शों एवं सिद्धान्तों का वर्णन किया है वे वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त और कहीं नही मिल सकते हैं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम तथा अन्य राजकुमारों की शिक्षा–दीक्षा परिवार में माता–पिता एवं दशरथ के कुलगुरू वशिष्ठ के द्वारा संपन्न हुई। परिवार के स्तर पर दी गई शिक्षा के द्वारा चारों राजकुमारों में सद्गुणों का विकास करके उन्हें आदर्श मानव बनाया गया।

महर्षि वाल्मीकि के जीवन काल में भारत का संकट इतना गंभीर नहीं था जितना गंभीर संकट भारत के बाह्य और आंतरिक शत्रुओं द्वारा आज उत्पन्न कर दिया गया है। अतः भारतवर्ष के अस्तित्व एवं सुरक्षा की दृष्टि से विद्यार्थियों में राष्ट्रीय दृष्टिकोण एवं राष्ट्रीय चरित्र का विकास किया जाना शिक्षा का सर्वोपरि उद्देश्य होना चाहिए। आज जातिवाद और धर्मनिरपेक्षता, शिक्षा के इस राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधाएं हैं।

आधुनिक युग का युवा वर्ग भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आदर्शों को भूलता जा रहा है, उसमें परम्पराओं के प्रति अभिरुचि कम होती जा रही है। अतएव, युवाओं में अपनी संस्ड्डति की जागृति लाना बहुत आवश्यक है। 'रामायण' मानव रचित सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में से एक है। यह उन ग्रन्थों में से एक है, जिन्होंने जन–मानस के भाव और विचारों को समग्र रूप से प्रभावित किया है, न केवल उनको जो इसको मौलिक या अनुवाद रूप में पढ़ सके हैं, बल्कि हमारे देश के उन लाखों लोगों को भी, जो कदाचित् हमारी सांस्कृतिक पराकाष्ठा के समय में भी निरक्षर रहे होंगे और जिन्होंने यह कथा अपने घर पर माता–पिता से सुनी होगी अथवा बाहर सार्वजनिक उत्सवों पर कथा–वाचकों द्वारा जो इस पुण्यभूमि की एक विशेषता रहे है। सम्भवतः आज की पीढ़ी 'रामायण' से उतनी सुपरिचित नहीं है, जितनी पुरानी पीढी थी। नई पीढी 'रामायण' के सविस्तार कथानक, पात्रों के उत्कृष्ट चरित्र, आख्यानों के महत्त्व और विभव जो प्रायः सभी भारत की प्रादेशिक भाषाओं एवं संस्कृत में उपलब्ध हैं, उनसे पर्याप्त रूप से परिचित नहीं है? क्या यह कहना अतिश्योक्ति होगी कि 'रामायण' का कोई अध्येता, जो इसकी पावनता और हमारी सभ्यता को समझने में इसके बेजोड़ महत्त्व से भली–भाँति परिचित हो। रामायण को शिक्षा से लाभान्वित होने के लिये पढ़ा जाना चाहिए और जीवन के हर मोड़ पर नियमन के लिये,

उससे उच्च कोटि की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

रामायण मे महर्षि वाल्मीकि ने मूल्यों की स्थापना इस भांति की है कि व्यक्ति, समाज, वर्ण व देश जब संकटग्रस्त हो तो रामायण रोशनी प्रदान कर मार्ग प्रशस्त करती है तथा पृथ्वी पर हर तरह से सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करती है। जनमानस को प्रत्येक समस्या के समाधान का कर्त्तव्य बोध कराती है। रामायण व शिक्षा के उद्देश्यों में मूलभूत अन्तर नहीं दिखाई देता, लोग अर्थ को ढंग से समझ नहीं पा रहे हैं। रामायण हमें बताती है कि मनुष्य के भीतर जहाँ अच्छाई होती है वहां कुछ बुराई भी स्वभावतः मिल जाती है। अच्छाई का लाभ तभी मिल पाता है जब हम विनाशक तत्वों पर नियंत्रण रखें। उक्त कलंकित करने वाली घटनाओं से मुक्ति रामायण जैसे काव्यों में वर्णित मूल्यों को जीवन में उतारने से ही सम्भव है, इसका अन्य कोई विकल्प नहीं है।

शोध का महत्व व औचित्य :-

भारतीय संस्कृति को गौरवमयी बनाने में इसके अद्वितीय ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है जिनमें गीता व रामायण महत्वपूर्ण ग्रन्थ माने जाते हैं। रामायण में निहित शैक्षिक आदर्शों का अध्ययन कर वर्तमान में मानव की समस्याओं का समाधान सम्भव है। आज मूल्यों में गिरावट के कारणों का सर्वेक्षण किया जाए तो ज्ञात होगा कि उसका प्रमुख कारण तर्क की प्रधानता एवं विश्वास तथा आस्था की कमी है। आत्मवाद, श्रुति–स्मृति, सांस्कृतिक परम्परायें, सामाजिक प्रथायें आदि हमारे जीवन–मूल्यों के सशक्त स्रोत रहे हैं। आज वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रान्ति ने मानव के न केवल भौतिक उपादानों एवं साधनों को बदल दिया है, अपितु उनकी मानसिक प्रवृत्तियों को भी परिवर्तित कर दिया है। इससे मानव विकम्पित हो गया है। प्राचीन मूल्यों के प्रति उसकी आस्था हिल सी गई है, मान्यताएं बिखर गई हैं। वह बुद्धि तर्क एवं भौतिक उपयोगिता को ही प्रमाण मानने लगा है। ऐसी स्थिति में आस्था का कम होना सहज एवं स्वाभाविक है।

आज का मानव सुविधा एवं उपयोगिता के आधार पर जीवन शैली का निर्माण चाहता है।

श्रीराम को उक्त नैतिक गुणों का खजाना बताया है। उक्त गुणों को धारण करके व्यक्ति राम की तरह ख्याति व आनन्द को प्राप्त करता है। वर्तमान समय में मनुष्य स्वार्थी हो गया है तथा अपने स्वार्थ के लिए अपने चरित्र को दाव पर रख देता है। इसलिए मनुष्य को उक्त नैतिक गुणों पर चलते हुए अपने चरित्र की रक्षा करनी चाहिए। उपर्युक्त नैतिक गुणों के द्वारा व्यक्ति परिवार, समाज एवं राष्ट्र का उत्थान करता है। इसी नैतिकता के कारण भारत को विश्वगुरू की पदवी प्रदान की गई है। वर्तमान में पथभ्रष्ट हुए युवाओं को उक्त मार्ग का अनुसरण करके राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान देना चाहिए। रामायण के नैतिक मूल्य पशुवत् व्यक्ति को भी भवसागर में तारने में समर्थ हैं। वर्तमान में हर जगह दुष्प्रवृत्तियां ही दिखाई दे रही हैं अतः जनसमुदाय को दुष्प्रवृत्तियों से निजात दिलाने हेतु रामायण में वर्णित मूल्यों को आत्मसात् करने के सिवाय कोई श्रेयस्कर विकल्प नहीं है। यह वर्तमान की सर्वग्राह्य प्रमुख आवश्यकता है।

आज हम विकास की सही दिशा से विमुख हैं, क्योंकि जितना मनुष्य ने अपने अन्दर की पाशविक वृत्तियों का विकास किया, उतना ही अन्दर के देवत्व का हनन भी हो गया है। अतः जिस समाज में हम रहते हैं, उसे सही मार्ग दिखाना हमारा परम कर्त्तव्य है। इसी कर्त्तव्य का पालन करने हेतु शोध विषय का चयन किया गया, जिससे प्राचीन मनीषियों द्वारा दिये गये ज्ञान के प्रकाश को चमकाया जा सके। वाल्मीकि रामायण के व्यावहारिक रूप को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना अनुसंधानकर्ता का प्रमुख ध्येय है।

वर्तमान में मानव भौतिकता की चकाचौंध में खो गया है, जिसको पुनः मार्ग पर लाने के लिए रामायण में वर्णित मूल्य ही समर्थ हैं, जिसके द्वारा वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर व्यवस्थित जीवन जी सकता है। वाल्मीकि–रामायण के शाश्वत मूल्य जनमानस के सामने लाकर जीवन में आने वाली समस्याओं से निजात दिलाना ही अनुसंधानकर्ता का प्रमुख ध्येय है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही सम्भव है, अद्यतन मूल्य–निरूपण सम्बन्धी अनेक शोधकार्य हो चुके हैं परन्तु उनसे वर्तमान की प्रासंगिकता पर प्रभाव नहीं के बराबर है। अतः शोधकर्ता ने पूर्ववर्णित अनेक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों का चयन किया है जिनका वर्तमान के भौतिकवादी प्रत्येक मनुष्य में होना जरूरी है क्योंकि इनके द्वारा ही एक श्रेष्ठ समाज व राष्ट्र का निर्माण सम्भव है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य :–

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य वाल्मीकि रामायण में निरूपित शैक्षिक मूल्यों का अध्ययन करना है साथ ही साथ इसका भी अवलोकन करना है कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित शैक्षिक विचार वर्तमान में कहां तक प्रासंगिक है आज की विषम परिस्थितियों में यह भी जानना आवश्यक है कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित शैक्षिक विचार कहां तक प्रभावी रहे हैं। इन सभी बिदुन्ओं को दृष्टिगत रखते हुए शोध अध्ययन के उद्देश्य माने गए हैं–

1. वाल्मीकि रामायण में निहित शैक्षिक तत्वों का अध्ययन करना।
2. वाल्मीकि रामायण में शिक्षा दर्शनों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों का अध्ययन करना।
3. वाल्मीकि रामायण में शिक्षा दर्शनों के अनुसार शिक्षा के पाठयक्रम व शिक्षण विधियों का अध्ययन करना।
4. वाल्मीकि रामायण में वर्णित जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।
5. वाल्मीकि रामायण व अन्य रामायणों में वर्णित शैक्षिक तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
6. वाल्मीकि रामायण में वर्णित गुरू–शिष्य सम्बन्धों का अध्ययन करना।
7. रामायणकालीन शिक्षा प्रणाली की वर्तमान में उपयोगिता का अध्ययन करना।

शैक्षिक मूल्य :–

रामायण युग में शिक्षा में एक तारतम्य या व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना, उनके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक, धार्मिक और व्यवहारिक को उच्च बनान उसका मूलभूत आदर्श था। रामायण युग में सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, निर्लोभी, सत्यवादी तथा अपने ही धन से संतुष्ट रहते थे। इसी प्रकार राम भरत को नीतिशास्त्र के अनुसार राज्य शासन करने के लिए कहते है। इस प्रकार वाल्मीकि के कहने का भाव यह है कि नैतिक मूल्य, नैतिक शिक्षा से श्रेष्ठ बनते हैं, तथा अनैतिकता से जीवन दुःखमय बनता है हमें नैतिक शिक्षा, नैतिक मूल्यों को जीवन में अपनाना चाहिए। वर्तमान समय में वाल्मीकि रामायणकालीन युग की शिक्षा प्रणाली को ग्रहण किया जाए तो शिक्षा में काफी सहयोग मिल सकता है। अतः ऐसे समय पर हमें ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है, जिससे मानवता का दीपक प्रज्जवलित हो, जन–जीवन में स्थायी सुख शांति तथा नैतिक व चारित्रिक विकास हो ऐसे समय पर हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों की शिक्षा का अध्ययन आवश्यक है।

अध्ययन की उपयोगिता :–

रामायण समाज तथा शिक्षा को एक नई राह दिखाकर शिक्षा के लिए आधार प्रदान करती हैं। रामायण जैसे महान् ग्रन्थ पर कार्य करके उसके व्यावहारिक पक्ष को उजागर करने का प्रयास अनुसंधानकर्ता द्वारा किया

गया है। रामायण केवल धर्म ग्रन्थ है इस विचारधारा से अलग हटकर व्यावहारिक दृष्टि से यदि इसका मूल्यांकन किया जाए तो इसका महत्त्व धार्मिक पक्ष से भी ज्यादा प्रबल एवं जीवनोपयोगी है। रामायण में वर्णित मूल्यों द्वारा समाज की चिन्तनधारा को नई दिशा व स्फूर्ति मिलेगी तथा समाज का समुचित विकास होगा। इस दृष्टि से रामायण के मूल्यों के आधार पर मानवीय सम्बन्धों में आई गिरावट फिर से चरमोत्कर्ष को प्राप्त करेगी व भारत विश्वगुरू की गुणवत्ता को बनाए रख पायेगा। रामायण की मूल्य शिक्षा मानव के स्वाभाविक विकास के साथ–साथ जीवन की प्रत्येक समस्या के समाधान में सहायक सिद्ध होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. वाल्मीकीय रामायण।
2. अग्रवाल, गोपालकृष्ण : मानव समाज, पृष्ठ सं. 261
3. अथवाल, विकास : ''मर्यादा सीखें रामायण से'' 01882010)
4. ओझा, राजकिशोर : आध्यात्मिक क्रान्ति, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, 1986–87 पृ.सं. 9–11
5. डॉ. गौरी महूलिकर : ''रामायण का विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं पर प्रभाव का अध्ययन'' (2004)
6. डॉ. बलदेवप्रसाद : भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसी का योगदान, पृष्ठ सं. 77
7. डॉ. मिश्र, बृजेश : वाल्मीकि रामायण में मूल्य चेतना।
8. डॉ. रामेश्वरलाल : ''रामायण और रामचरितमानस'', कल्पना प्रकाशन, मेरठ।
9. डॉ. शर्मिला : 'रामकथा : विविधि आयाम', (2007), पृ.सं. 119–20
10. द्विवेदी, मीरा : रामकथा : विविध आयाम (2007) बालाजी प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ सं. 41
11. पाण्डेय, रामनारायणदत्त : ''मूलरामायण'', गीताप्रेस, गोरखपुर, (2008)
12. प्रधान, साधना : ''रामचरितमानस में जीवन मूल्य वनस्थली विद्या पीठ''।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 60-65

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A Study of Creativity across Gender among Teacher Trainees in Relation to Their Thinking and Learning Style and Problem Solving Ability

Dr. Suman Rani, Associate Professor

Seema Wadhwa, Ph. D. Scholar

Faculty of Education, Tantia University, Sri Ganganagar, Rajasthan.

Keywords :

Creativity, Teacher Trainees, Thinking Style, Learning Style and Problem Solving Ability.

Introduction :-

The importance of the quality of teachers should be overemphasized because the strength and success of an educational system depends on them whether they teach in schools, colleges or universities. Actually the quality of a nation depends on the quality of its citizens, quality of citizens depends on the quality of their education and quality of education depends on the quality of their teachers. Quality depends on a large number of factors. It is on the vision and leadership of the head of the institutions along with his committed team of teachers that the quality mainly depends. A teacher should have thorough understanding about the latest techniques and methods of transaction. He should constantly renew his knowledge, methodology and techniques. The personal and professional qualities of a teacher influence their professional efficiency. More competent and committed teachers are required in the classroom because the best curriculum and the most perfect syllabus remain ineffective in the absence of a good teacher. The teaching profession inherently warrants certain well known self-obvious and implicit obligations, commitments and expectations from its members. Teacher education programmes prepare future teachers for lifelong learning and professionalism. To be professionals, teachers require a foundation of professional knowledge upon which the base instructional decisions depend. As professionals, teachers must base decisions on systematic knowledge to foster enquiry and the discovery of new knowledge. Providing teachers with professional skills consisting of education and training called as education of teachers.

There was the time when we treated creativity as something mysterious-a rare gift that some

fortunate individuals possess. In recent years, our understanding of creativity has broadened. Creativity is not limited to a select few- the artist, the researcher, the scientist, the poet or the inventor. Creativity makes an object or activity better, richer, more productive, fruitful and aesthetically satisfying.

Education point of view it most important that the children can be creative or at least they can experience the process of creativity. This experience will help in developing in them a creative attitude. Ever since educators and psychologists become aware of the importance of creativity in human development, the question of identifying and nurturing creative potential in school children has gained prominence. It has become more obvious than ever before that the abilities involved in creativity are universal. These can be observed and reliably measured through a variety of procedures and that creative abilities can be fostered by programming the educational climate.

In the modern trend the teachers will require learning style and thinking style to bringing out the latent talent of students. The teachers will present the lessons effectively to the students through their learning style, thinking style and teaching competency. Uniform system of education in the present scenario helps teacher about learning and teaching methods of an individual and they were updated through learning style and thinking styles. A teacher could excel in his field through his learning style and thinking styles because his competency could be multiplied through one of these factors.

Teacher have thus a challenging task before them to identify and nurture creativity in children at an opportune time. A teacher education programmes prepare a teacher as more mature and confident to perform his task more efficiently. Proper education to the teacher enables him to have knowledge of how children grow, develop and learn, how they can be taught effectively and how their inner creativity can be brought and developed.

Need of the study :-

Knowledge about learning styles and brain behaviour is a fundamentals new tool at the service of teachers and schools. It is not clearly the latest functional fact. It provides a deeper and more profound view of learner than previously perceived, and is part of basic frame work upon which a sounder theory and practice of learning and instruction may be built.

In India, no such research study at Ph.D level has been undertaken so far which attempts to explore the thinking, learning and problem solving styles of the teacher trainees. Thus, the present study throws light on this neglected aspect of teacher trainees. Further, this study is unique in sense that it explores the relationship of several variables like gender, creativity and thinking styles, learning styles, problem solving styles of teacher trainees, which remained unattempted in previous studies. Hence the present study is justified being first and for breaking new horizons in the field of teacher

trainees.

An understanding of thinking, learning and problem solving styles may enhance student teacher's increase their learning motivation. By understanding their own and teacher educator's thinking, learning and problem solving styles, may start developing changed attributions to academic successes and failures. Thinking styles, learning styles and problem solving styles can also foster the development of interpersonal.

Objective of the study :-

1. To compare in creative ability among teacher trainees across their thinking style.
2. To compare in creative ability among teacher trainees across their learning style.
3. To compare in creative ability among teacher trainees across their problem solving ability.

Hypothesis of the study :-

1. There exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their thinking style.
2. There exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their learning style.
3. There exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their problem solving ability.

Method :-

Researcher choose survey method for this research work.

Sample of the study :-

For this purpose, the investigator takes 600 Teacher trainees studying in different B.Ed. colleges in of Sriganganagar, Hanumangarh district

Tools used :-

1. Thinking Style Inventory (short form)
   By : R. J. Sternberg and Wagner (1992) (Hindi adapted version by B. P. Verma)
2. Kolb's Learning Style Inventory
   (Revided, 1985 (Hindi Adapted Version By B.P. Verma)
3. Problem-Solving Profile Invntory by Basadur (1990)
4. Verbal Test of Creative Thinking

Statistical techniques :-

Mean, standard deviation and t-test were used to analysis the data.

Data analysis :-

1. There exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their

thinking style.

Table – 1

Table : Showing the mean comparison of HI and Low creative ability among teacher trainees across their thinking style (N = 300)

Variable	N	Mean	Std. Deviation	df	t-value
HI creative ability	300	206.46	17.485	598	1.259
Low creative ability	300	207.33	19.001		

In the view of findings obtained in the Null hypothesis 1 that there exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their thinking style, it was found that there was no statistically significant difference between the mean scores of thinking style of HI Creative ability teacher trainees and Low Creative ability teacher trainees. The T-ratio and mean scores of teacher trainees belongs to HI Creative ability and Low Creative ability shows no variance with respect to their thinking style or distribution ratios of both the groups are similar by their thinking style. It is concluded that there exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their thinking style.

2. There exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their learning style.

Table – 2

Table : Showing the mean comparison of HI and Low creative ability among teacher trainees across their learning style (N = 300)

Variable	N	Mean	Std. Deviation	df	t-value
HI creative ability	300	35.65	11.524	598	0.037
Low creative ability	300	35.61	10.563		

In the view of findings obtained in the Null hypothesis 8 that there exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their learning style, it was found that there was no statistically significant difference between the mean scores of Learning style of HI Creative ability teacher trainees and Low Creative ability teacher trainees. The T-ratio and mean scores of teacher trainees belongs to HI Creative ability and Low Creative ability shows no variance with respect to their learning style or distribution ratios of both the groups are similar by their learning style. It is concluded that there exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their learning style.

3. There exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their problem solving ability.

Table – 2

Table : Showing the mean comparison of HI and Low creative ability among teacher trainees across their problem solving ability (N = 300)

Variable	N	Mean	Std. Deviation	df	t-value
HI creative ability	300	46.16	12.513	598	3.752
Low creative ability	300	42.34	12.304		

In the view of findings obtained in the Null hypothesis 15 that there exists no significant difference in creative ability among teacher trainees across their problem solving ability, it was found that there was statistically significant difference between the mean scores of Problem solving ability of HI Creative ability teacher trainees and Low Creative ability teacher trainees. The T-ratio and mean scores of teacher trainees belongs to HI Creative ability and Low Creative ability shows variance with respect to their problem solving ability or distribution ratios of both the groups are different by their problem solving ability. It is concluded that there exists significant difference in creative ability among teacher trainees across their problem solving ability.

Findings of the study :-

High-creative student teachers showed a greater tendency to use legislative, judicial, hierarchical, and right-hemisphere thinking styles, and low-creative student teachers showed higher levels of adoption of executive and monarchical thinking styles. Therefore, style matching should be done in the classroom to develop creativity in highly creative student teachers, and students with low creativity should be taught to develop legislative, judicial and hierarchical and right-hemisphere thinking styles to increase their creativity level. Side by side, they should be adaptable to different teaching styles that support other Type I thinking styles and an integrative hemispheric thinking style.

Training or updating teachers to plan their lessons or instruction according to prevailing individual differences in different thinking and learning styles among students, as teachers are often more preoccupied with strategies for teaching good lessons and paying attention to many demands in the classroom, such as explaining, student participation, classroom management, homework, class exercises and use of teaching materials. For them, the concepts of learning styles, cognitive styles, hemisphericity and thinking are rather theoretical. However, if they have some knowledge of them and are able to apply them along with other effective teaching strategies, their own teaching and the learning of their students will be much more successful.

References :-

1. Albaili, M.A. (1993) Inferred Hemispheric Thinking Style, Gender and Academic Major Among United Arab Emirates College Students Perceptual and Motor Skills, Vol. 76 (3 pt I), 971-977.

2. Al-Sabaty, I and Davis, G.A. (1989) Relationship Between Creativity and Right, Left and Integrated Thinking Styles. Creativity Research Journal, Vol.2, 111-117.
3. Cheung, E. (2002) Students Thinking Styles, Learning Approaches and Instructional Preferences: Their Relationship with Academic Achievement in Different Disciplines. Unpublished Manuscript. The University of HongKong.
4. Donoghu, M.L. (1995) Problem Solving Effectiveness: The Relationship of Divergent and Convergent Thinking Dissertation Abstracts International, Vol. 55 (10), 3073-A.
5. Gupta, B.S. and Gupta, U. (1984) Style of Learning and Thinking Among College Students. Journal of General, Psychology, Vol. Ill, 39-44
6. Migunde, Q. (2011). Career aspirations and career development barriers of adolescents in Kisumu Municipality, Kenya. Journal of Emerging Trends in Educational Research and Policy Studies (JETERAPS), 2 (5), 320-324.
7. Kalpana, V. and Mirdula, K (2007) Styles of Learning and Thinking. Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, Vol. 33 (1), 111-118.
8. Koul, L. (2007). Methodology of educational research. Noida: Vikas Publishing House Private Limited.
9. Sternberg, R. J. (1997). Thinking Styles. New York: Cambridge University Press.
10. www. shodhganga/eduresearch.com
11. www.Shodhganga.inflibnet.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 66-69

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासियों की त्रासदी का जीवंत दस्तावेज 'डूब' और 'पार'

सरिता कुमारी

शोधार्थी (कनीय शोधप्रज्ञा), विश्वविघालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविघालय, दरभंगा।

'डूब' और 'पार' उपन्यास वीरेंद्र जैन का आदिवासी जीवन पर केंद्रित एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसमें लड़ई गाँव की आदिवासियों के रहन–सहन, सभ्यता, आचार–विचार, रीति रिवाज, संस्कृति, लोकगीत, लोकनृत्य इत्यादि को चित्रित किया गया है। समकालीन कथाकार वीरेन्द्र जैन ने अपने इस उपन्यास 'डूब' और 'पार' में मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड के लड़ई और जीरोन गाँव को केन्द्र में रखकर इसकी रचना किए हैं। उपन्यास में राउत आदिवासियों की कथा का जिक्र किया गया है। आदिवासी हमेशा से समाज में उपेक्षित रहा है। यहाँ तक कि उसे अपनी मूलभूत आवश्यकता के लिए भी मोहताज रहना पड़ता है। यह समुदाय आज भी अज्ञानता और अंधविश्वास के कारण जंगलों, पहाड़ों एवं बीहडों में रहना ज्यादा पसंद करते हैं। गिरिराज किशोर के शब्दों में– 'डूब नाम तो एक अच्छा–खासा प्रतीक है ही। यह उपन्यास उन व्यक्तियों का है जो या तो प्रवृतियों के प्रतीक है या संघर्ष के आइने है। साथ ही यह समाज के बिखराव की भी तस्वीर है। यह 'कल्चरल लेग' यानी दो संस्कृतियों के बीच के अंतराल को भी रेखांकित करता है।'[1]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने संघर्ष के आईने में जो लोग आज अपनी जिंदगी जीने के लिए जद्दोजहद में है, उसकी जीवन–गाथा को प्रमुखता से स्थान दिए हैं। वीरेंद्र जैन ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से आदिवासियों के जीवन का चित्रण कर, उन्हें जगाने का प्रयास, अपने हक के लिए लड़ने को प्रेरित करता है। इस उपन्यास में मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित बेतवा नदी के तट पर बाँध बनाने के कारण, 'डूब' क्षेत्र में आनेवाली गाँव की जमीन और प्रकृति को निगलने वाली सरकारी अफसर का भयावह रूप वर्णित है। लेखक प्रस्तुत उपन्यास में विस्थापन के नाम पर होने वाली आदिवासियों की त्रासदी का बहुत ही मार्मिक ढंग से विवेचन किया है। आदिवासी 'राऊत जनजाति' के ऊपर सरकार द्वारा हो रहे अत्याचारों को लेखक ने प्रमुखता से दिखलाया है। विकास के नाम पर किस तरह उसे ठगा जाता है, इसका जीवंत चित्र प्रस्तुत उपन्यास में खींचा गया है। सरकार वहाँ के लोगों की जमीन हरपकर बांध बनवाना चाहती है। वह भोली–भाली, अज्ञानी आदिवासियों को जमीन ना मिलने की वास्ता देकर उसे झूठी आश्वासन देती रहती है।

इस संदर्भ को हम यह इस पंक्ति के माध्यम से समझ सकते हैं– 'मगर आफत यह है कि सरकारों को जमीनें मिल ही नहीं रही। इधर ललितपुर में जमीन के दाम आसमान छू रही हैं, उधर सुना है चंदेरी का भी वही हाल है। सुना है बड़े बड़े सेठ साहूकारों ने पहले ही तमाम खाली जमीनें खरीद ली है। वे जानते जो है, जब बांध बन जाएगा तब उद्योग–धंधे भी लगेंगे। अब उद्योगपति या सरकार जिसे दरकार हों वह खरीद ले जमीन

उनसे उनके मुंहमांगे दामों पर।'[2] इस प्रकार 'डूब' और 'पार' उपन्यास में अज्ञानी आदिवासियों के ऊपर हो रहे शोषण का लेखक ने पर्दाफाश किया है। इन दोनों उपन्यासों में मुख्य रूप से विस्थापन की पीड़ा को दिखाया गया है। आजादी के बाद भारत में जनता को नेताओं ने विकास के नाम पर कई सपने दिखाए, वह सपना तक ही सीमित रह गया। उन्होंने बड़े–बड़े वादे करके, झूठे आश्वासन देकर वोट लूटते रहे।

'डूब' उपन्यास में विस्थापित लोगों की पीड़ा के बारे में क्षितिज शर्मा लिखते हैं– 'डूब में लड़ई डूब क्षेत्र में आ गया था। पार में आकर पता चला लड़ई डूब में नहीं आएगा,–वहाँ अभयारण्य बनेगा। यानी लड़ई की बारी बांध परियोजना पूरी होने के बाद आएगी। विस्थापन की तलवार लटकी हुई है। ज्यों की त्यों पर विकास अब भी नहीं होगा। मुआवजे के इंतजार में कई वर्ष और बैठना होगा।'[3] इस उपन्यास में उपन्यासकार ने बांध निर्माण की समस्या, वहाँ रह रहे लोगों की त्रासदी और विस्थापन के बाद उसे किन–किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, इसका भयानक चित्र खींचा गया है। यह उपन्यास विस्थापन की स्थिति का दर्दनाक वर्णन करता है।

विवेचित उपन्यास में विस्थापन के नाम पर ठगे जाने वाले राजनेताओं का पर्दाफाश किया गया है। यह इसका यथार्थ चित्रण है। 'पार' उपन्यास के बारे में नवभारत टाइम्स एवम समकालीन भारतीय साहित्य में प्रियदर्शन जी लिखते है– "डूब का ही समानांतर विस्तार है पार। यह इसी क्षेत्र के आदिवासी समाज के उजड़ने की कथा है। आदिवासियों के विकास के नाम पर उजारे जा रहे जंगल और राजघाट पर बन रहे बांध के दानवी विस्तार क्षेत्र ने धीरे–धीरे आदिवासी समाजों को ही उजारना शुरू कर दिया। यह समाज अपनी सामूहिकता में जीना चाहता है, मगर सामूहिकता में जीवन यापन की यह इच्छा विकास की नई मजबूरियों से पैदा हुई जरूरतों के आगे नाकाफी है।'[4] दोनों उपन्यास के माध्यम से लेखक ने विस्थापन की मार झेल रहे आदिवासियों की पीड़ा को उजागर करने का सफल प्रयास किया है।

विस्थापन भारत में शुरू से ही जारी है। कभी लोग देश–विभाजन के नाम पर विस्थापित हुए तो कभी विकास के नाम पर। विकास के नाम पर जो विस्थापन होता है, उसकी कसक बहुत ही गहरी होती है। इस विस्थापन के नाम पर नेताओं द्वारा उसे बलपूर्वक अपनी जगह–जमीन से दूर किया जाता है। पैसा–पैसा जोड़कर जिस घर को वह तैयार करता है, वही छोड़कर उसे दूर जाना पड़ता है। विकास के नाम पर विस्थापन करने का सीधा मतलब है बसे बसाये लोगों को उजाड़ना। ऊपर से सरकार मुआवजा का भी स्वप्न ही दिखाते रह जाती है। इस विस्थापन का दंश सबसे ज्यादा आदिवासी समाज को ही झेलना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के बाद के गाँवों की स्थिति का वास्तविक चित्र खींचने का प्रयास किया है। इसमें उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बीच बेतवा नदी पर बांध बनाने और आस–पास के गांवों के लोगों की विस्थापन की त्रासदी को दिखाने का भरपूर प्रयास किया। यह यथार्थवादी उपन्यास है। बांध बनाने के कारण उस क्षेत्र के लोगों को वहाँ से हटाने की बात की जाती है। इसके कारण वहाँ के आदिवासियों को उसके मूल निवास स्थान से दूर जाना पड़ता है। सरकारी अधिकारी मुआवजा की राशि भी उन्हें नही देती है। बिचौलिए द्वारा उस राशि का गबन कर दिया जाता है। सरकार उसके भोलेपन का फायदा उठाकर उसे ठग लेती है। वह अभयारण्य बनाने का वास्ता देकर उससे सब कुछ छीन लेती है। नए सिरे से विकास के नाम पर जनता को छलती है। वह प्राकतिक वनों की संरचना की बात करती है। सरकार कहती है कि हम वहाँ अभयारण्य बनाएंगे, लड़ई गांव को फिर से गुरिला पहाड़ पर बसाएंगे। वहाँ के लोग पहले जैसे रहते थे, उसे जमाने के ढंग का रहना–सहना

तुम लोग सीखोगे जिससे कि भविष्य में कोई भी पर्यटक यहाँ आए तो तुम लोगों को देखकर यहां की प्राचीन संस्कृति से पर्यटक अवगत हो सकें।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने आदिवासी समाज की वस्तु मिलती का प्रत्यक्ष अंकन किया है। मनोहर लाल के अनुसार– 'समाज–शासन धर्म–संस्कृति श्व्यवस्था को दोहरे आचरण को उजागर करना, विरोधाभासों को उघाड़ना, आतंक और आतंकियों की पहचान करवाना शोसितो और भरमाए गए लोगों समुहों के भयातुर मौन को शब्द देना, वीरेन्द्र जैन अपने लेखन का उद्देश्य मानते हैं। वीरेन्द्र जैन परिर्वतन और समानता की आकांक्षा पाले हुए है। व्यक्तिगत नैतिकता और जोखिम उठाने की, हद तक साहस उनका जीवन धार है।'[5] 'डूब' और 'पार' उपन्यास में आदिवासियों स्त्रियों की दशा का भी अंकन किया गया है। सामंत–वर्ग द्वारा उन्हें बहला–फुसलार उसका शोषण किया जाता है। उसे देह व्यापार लिए शहर में ले जाकर बेचा जाता है। आदिवासी स्त्री को घोर प्रताड़ना झेलनी पडती है। वह पेट की आग से मजबूर होकर उसके बुने हुए जाल में फँस जाती है। निर्मल साव को शहर जाकर यह पता चलती है कि यहाँ स्त्रियों की माँग है, तब वह भोली भाली आदिवासी स्त्रियों को बहला–फुसलाकर शहर ले जाकर ऊँची दामों में बेच देता है– 'औरतें ही नहीं बच्चियां भी खरीदी जाती है। अलबता उनका प्रतिज्ञा पत्र नहीं बनता। उनका लेनदेन गुपचुप होता है। उन बच्चियों को कुछ खास गाँवो में रखा जाता है। वहाँ मार–पीट कर उन्हें पतुरिया के लक्षण सिखाए जाते हैं। नचनिया बनाया जाता है, फिर बाजार में बिठाया जाता है।'[6] आदिवासी औरतों को सामंत–वर्ग उपभोग मात्र की वस्तु समझता है। उपरोक्त संदर्भ में हम उसकी गिरी हुई मानसिकता को देख सकते हैं। जीरोन खेरा गाँव की औरतों का शोषण वहाँ के भगवान के दूतावास कहलाने वाले वामन महाराज करते हैं। अक्कल को वह कुमारी अवस्था में ही माँ बना देता है। जबरदस्ती उसके साथ शारीरिक संबंध बनाता है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि किस तरह एक कुंआरी लड़की का सारा जीवन वामन महराज द्वारा बर्बाद कर दी जाती है।

इस उपन्यास में सरकार आदिवासियों को लालच दिखाकर उसका नसबंदी करवा देती है। इस काम को अंजाम देने के लिए वह गाँव के कुछ सामंतो का सहारा लेती है। वह भोली–भाली निरीह जनता को बहला–फुसलाकर शहर लाता है और वहाँ उसकी नसबंदी कर दी जाती है। इसके एवज में सरकार से वह नगद प्राप्त करती है। सरकार कितना क्रुर अत्याचार आदिवासियों पर करती है। लेखक ने कहा है– 'देश की आबादी से परेशान है सरकार, इसिलिए जबरन जनन नस काट दी हमारी।'[7] इस प्रकार लेखक ने आदिवासियों की त्रासदी का यथार्थ अंकन 'डूब' एवं 'पार' में किए हैं। प्रस्तुत उपन्यास उसका मार्मिक दृश्य प्रस्तुत करता है।

इस उपन्यास में बाँध बनाने के नाम पर किसानों को मुआवजा देते समय भी उसकी पूरी रकम नहीं दी जाती है। सरकार भूमि को दो हिस्सों में बाँट देती है। सरकार की क्रूर शासन प्रणाली का को इसमें दिखाया गया है। वह किस तरह आम जनता का शोषण करती है। सरकारों द्वारा किसानों की सिंचित भूमि को भी असिंचित घोषित करने उसका शोषण किया जाता है। लेखक इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– 'सरकार ने सिंचित–असिंचित भूमि का मुआवजा तय किया है, प्रतिबिघा छह सौ रुपया और सिंचित का सोलह सौ। अब जैसा की तुमने देख ही लिया है, अपने यहाँ की ज्यादातर जमीनें दिखाई है असिंचित। यह बिल्कुल गलत बात है। मगर सवाल यह है कि सरकार से झगड़े कौन? उसे हकीकत बतलाएँ किसविधि से?'[8]

'पार' उपन्यास आदिवासी जीरोन खेड़े की शोषण गाथा है। इस उपन्यास में सामंत वर्ग सामंत वर्ग

आदिवासी की जमीन सरकार से मिलीभगत करके हड़प लेती है, उसे दर–दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर कर देती है। निर्मल साव झूठी गवाह पेश करके पूरे जेरोन खेरा अपने नाम करना चाहता है। वह एक अर्जी तहसीलदार को भेजता है– 'पाँच पीढ़ी पहले हमारे पूर्वजों ने एक बार जीरे की खेती में भारी मुनाफा होने पर बसाया था जीरोन खेरा, ताकि वहाँ जीरे की और खेती की जा सके। उन्हीं ने वहां की पथरीली उबर–खबर जमीन समतल करवाई थी। अपने घरू किसानों को बसाया था।'[9] गाँव के अशिक्षित आदिवासियों की शोषण की पीड़ा का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

निष्कर्षः वीरेन्द्र जैन की रचना मे भारतीय गाँव में स्थित वर्तमान समस्याओं का यथार्थ अंकन किया गया है। 'डूब' और 'पार' उपन्यास में आदिवासियों की शोषण–गाथा को दिखाया गया है। लेखक ने लड़ई एवं जीरोन खेरा की आदिवासियों की मार्मिक स्थिति का चित्रण किया है। इन दोनों उपन्यासों में लेखक ने आदिवासियों की वस्तु से पाठक को परिचय करवाया है। वहाँ की रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान, अंधश्रद्धा, लोकगीत, लोकसंगीत इत्यादि को इस दोनों उपन्यासों में दिखाने का प्रयास किया हैं। विकास के नाम पर उसे किस तरह उच्च वर्ग के अधिकारियों द्वारा ठगा जाता है, प्रताडित किया जाता है, इत्यादि को लेखक ने उजागर करने का सफल प्रयास किया है। किस प्रकार सामंतों द्वारा आदिवासी स्त्रियों का शोषण किया जाता है। उसकी जमीन से उसे बेदखल किया जाता है आदि समस्या को लेखक ने जीवंतता के साथ इस दोनों उपन्यासों में दिखाया है। आदिवासियों की त्रासदी को सूक्ष्म और संवेदनशील विश्लेषण व्यापक दृष्टि के साथ लेखक ने 'डूब' और 'पार' में किया है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. नवभारत टाइम्स, समकालीन भारतीय साहित्य।
2. वीरेंद्र समग्र, मनोहरलाल, पृष्ठ–30
3. 'डूब', वीरेंद्र जैन, पृष्ठ–33
4. वहीं, वीरेंद्र जैन, पृष्ठ–36
5. पार, वीरेंद्र जैन, पृष्ठ–65
6. वहीं, वीरेंद्र जैन, पृष्ठ–75

Email : saritakroy@gmail.com

M. 8102730430

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 70-72

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

यशपाल की कहानियों में सुधारवादी दृष्टिकोण

डॉ. सी.हेच.वी.महालक्ष्मी

सहायक आचार्या, सेंट थेरेसा कालेज फॉर विमेन, एलूरू...पश्चिम गोदावरी, आंध्र प्रदेश।

महत्वपुर्ण कृतियाँ या तो अपने समय का सवाल होती है या फिर उनका जवाब।

''सहितस्य साहित्यं'' कहा गया है। साहित्य शब्द में ही समाज की भलाई निहित है। सामाजिक भलाई चाहने वाला हर एक व्यक्ति साहित्य से संबंध रखता है। वह या तो रचनाकार या पाठक होता है।

अक्सर कहा जाता है कि युग वही सवाल करता है जिसका लेखक जवाब देने मे सक्षम होता हैं। वह समाज का अंग बनकर उससे प्रश्न करता है कि समस्या का हल क्या है। अगर उसे जवाब मिली तो सही नहीं तो पाठक के सामने वह प्रश्न छोड़कर उसे भी उसमें भागी बना देता है। इस प्रकार साहित्यकार मानव जीवन की व्याख्या करता है और साथ ही नए नैतिक आदर्शों की स्थापना करता है।

आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति के प्रवेश ने भारतीय जीवन दर्शन को अनेक रुपों में प्रभावित किया। स्वातंत्रयोत्तर काल में बढ रही इन नवीन चेतना के कारण गावों, शहरों, विशेषकर महानगरों में तीव्र गति से परिवर्तन आ रहा है। हमारे बहुत सारे कथाकार मध्य वर्ग के कहानीकार है। सहज ही उन्होंने मध्यवर्गीय मानव जीवन का वित्रण किया है।

साहित्य अपने समकालीन संवेदना की भावात्मक अभिव्यक्ति है। अस्तु स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न परिस्थितियों के कारण साहित्य की सभी विधाओं में बदलाव आयी। साहित्य में अनेक समस्याओं का यथार्थ की भूमि पर प्रस्तुतीकरण होने लगा। इसलिए उनके लेखन केंद्र में लेखक ने संघर्प और तीखापन को अनुभूति की माध्यम के रुप में स्वीकार कर लिया। इस प्रकार के लेखक के कलम से सामाजिक जवाबदेही पूर्ण रचनाएं निकलीं। रचनाकारों ने आत्म प्रश्न का सहारा लेकर कहीं युग की विसंगतियों का पर्दाफाश किया। उन्होंने अफसरशाही, सरकारी कर्मचारियों की अनियमितता, सामान्य जनता को लूटने खसोटने की दुप्ट प्रवृत्ति आदि को उजागर करने की कोशिश की।

हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेमचंद का अपना एक विशिष्ट स्थान है। उन्होंने यथार्थ चित्रण को अपनी कहानियों का मूलाधार बनाया। वे इस प्रयत्न में पूर्णतः सफल भी हुए। उनके बाद की कहानीकारों में यशपाल भी एक प्रमुख व्यक्तित्व है जिन्होंने प्रेमचंद की शैली को आगे बढाने का चित्रण किया है। उन्होंने पूँजीवादी शोपण, सामाजिक धार्मिक रुढ़ियों और कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य किया। साथ ही एक नए समाज की स्थापना का संदेश दिया। यशपाल के कहानी संग्रह है...पिंजरे की उड़ान, वो दुनिया, तर्क का तूफान, ज्ञानदान, अभिशप्त, फूलों का कुर्ता, धर्मयु, उत्तराधिकारी, चित्र का शीर्षक, तुमने क्यों कहा था कि मैं सुदर हूँ, उत्तमी की माँ, ओ भैरवी, सच बोलने की भूल, खच्चर और आदमी, लैंप शेड।

यशपाल की प्रथम कहानी ''मक्रील'' कलकत्ता से प्रकाशित 'विश्वामित्र' पत्रिका में छपी थी। पहली कहानी से ही उनकी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय मिलती है। उनकी 'परदा' कहानी सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने वाली है। अतीत की प्रतिष्ठा में फँसकर झूठी प्रतिष्ठा का परदा फाड़कर रूढ़िवादी शोषित अर्धनग्न नारी का भी भत्स रुप को यह कहानी सामने लाती हैं। परलोक, पीर का मजार, मजहब...आदि धार्मिक अंधश्रद्धा पर प्रकाश डालती है। इन कहानियों में लेखक ने स्पष्ट किया कि धर्म मानव के लिए नैतिकता के मार्ग पर चलने का संदेश देता है न कि उसका अंधानुकरण करने का। यशपाल की जीवन दृष्टि मानव हित को मानने वाली है।

यहीं कारण है कि उन्होंने पुरातन आदर्शों, संस्कृति एवं रूढ़ियों को आँख मूँदकर न स्वीकार करते हुए मानव...हित के आधार पर उनका वस्तुनिष्ठ चिंतन कर अवरोध दिखाई देने वाली बातों का उन्होंने विरोध किया। उनकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक तथ्यों को स्पर्श करते हुए सामाजिक यथार्थ को ही प्रस्तुत करती है।

यशपाल ने अपना चौथा कहानी संग्रह ज्ञान दान! 1943! में ज्ञानतत्व की व्याख्या कर उसे समाज परिवर्तन का साधन माना।

दुःखी...दुःखी कहानी आर्थिक विषमता से ग्रस्त जीवन की मार्मिक एवं दयनीय स्थिति को स्पष्ट करती है। आर्थिक विपन्न्ताग्रस्त और भूख से व्याकुल व्यक्ति के सामने आदर्श और नैतिकता कहाँ तक ठिकते है? यह सोचने की बात है। दुःख के माध्यम से आर्थिक विषमता को उभारा है। एक खरबूजा बेचने वाली अपने बेठे की मृत्यु पर धनी औरतों की भाँति अधिक दिनों तक घर में शोक मना सकने में असमर्थ है। अतः बेटे की मृत्यु के दूसरे दिन की वह खरबूजा बेचने सड़क पर आ जाती है क्योंकि उसके सामने बच्चे की भूख और बहु के इलाज की समस्या है। उसके इस काम पर दया दिखने की बजाय लोग उससे घृणा करते है। किंतु उसकी मजबूरी को कोई समझते नहीं। अमीर और गरीब के इस अंतर को स्पष्ट कर लेखक ने शोषित वर्ग की विवषता को पूरी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया। इस विषय में यशपाल खुद कहते है कि ''मैं समझता हूँ चार दिन निरंतर भूखा रहने से मनुष्य में व्यक्तित्व और विवेक नहीं रह जाता''। गंडेरी, कुड समझ न सका, पर या सुख, जबरदस्ती, हलाल का टुकड़ा जैसी कहानियों में नारी की पुरुषाधिक्यता कुंठा, प्रेम विवाह आदि समस्याओं का चित्रण किया।

क्हानीकार यशपाल की और एक कहानी है समय जिसकी कथावस्तु तो बहुत ही संक्षिप्त है लेकिन उसकी बहुत कुछ विशेषता है। इस कहानी का प्रमुख पात्र है जो रिटायर होने के बाद किस प्रकार अपना जीवन बिताता है। कथावस्तु तो बहुत ही संक्षिप्त है। लेकिन आजकल की दुनिया में पारिवारिक रिस्तों का बदलाव की स्थिति को दिखाती है।

कहानी में बच्चे, बचपन में पापा के साथ समय बिताने के लिए उत्सुक रहते थे। लेकिन वही पापा रिटायर होने के बाद उन्हे अकेले छोड़ देते हैं। अब उनके पास पापा के साथ बैठने केलिए समय नही है। पापा अभी उनके लिए बूढे हो गए। पापा को हर काम मे हाथ लगाना उनके लिए बाधक बनती है। कहानी आत्मकथात्मक है। उपा प्रियंवदा की वापसी इसी कोटि की कहानी लगती है।

यशपाल की काला आदमी भी एक भाव प्रधान कहानी है कहानी का मुख्य पात्र है, शैक मुनव्वर अहमद' है जो साहब बनना चाहता है। उसे साहब बनने की भौक थी। वह काला रंग का आदमी है, लेकिन वह खुद अंग्रेजी सीख कर, अपना वेश...भूशा बदलकर साहब बनने का प्रयत्न करता है। वह पंद्रह दिन में तीन सौ रुपये खर्च कर, अपनी इस ऐसे लोग दिखाई पडते है जो हिंदुस्तानी होकर भी अंग्रेज बनने की लालसा में रहते हैं।

यशपाल शोषितों में आत्मविश्वास निर्माण कर उनको अंधेरे से दूर रहने की प्रेरणा दी हैं। इस प्रकार वे जनवादी कहानीकार ही सिद्ध होते है। वे एक ऐसे शोषण मुक्त समाज की रचना चाहते थे, जिसमें मानवता के लिए सबसे अधिक महत्व हो। यशपाल के कथा...साहित्य में उनकी कहानियों का महत्व असाधारण है। उनकी कहानियाँ प्रेमचंद की कहानियों की अपेक्षा बहुत छोटी हैं। छोटी कहानी की दृष्टि से इतनी छोटी सारगर्भित कहानियाँ हिंदी मं दुर्लभ है।

यशपाल की कहानियों के केंद्रीय बिंदु भारतीय समाज में स्त्री की स्वाधीनता का प्रश्न है। उन्होंने बदलते हुए समाज जीवन की नब्ज पहचान कर ऐसी स्त्रियों को अपने है। स्वभाव और प्रकृति में स्वाभिमानी स्त्रियाँ पुरूष के मिथ्याहंकार पर जबर्दस्त चोट करती हैं। उन्हे चुनौती देती है। यशपाल ने नारी जीवन के अंतर्द्वद्व, मनोव्यथा, खीज, चुप्पी छटपटाहट, स्त्री जन्य भावुकता इत्यादि को स्त्री मन के धरातल पर जाकर पकड़ने की चेष्टा की। यशपाल की कहानियों में शब्दाडंबर का कहीं कोई स्थान नहीं है।

यशपाल की विचारशील दृष्टि स्त्री के किसी भी तरहकी गुलामी के खिलाफ है। वेभ देने के समर्थक है। वे स्त्री...दासता के इन जंजीरों को तोड़ना चाहते हैं। उन्ही के शब्दों में...आज हमारे समाज का आधा भाग'नारीसमाजकीकठिनाईऔर संघर्ष में अपने आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक दायित्वों को समझें, वे केवल पुरूषों के कंधों पर बोझ न बनी रहें।''

सुरेशचंद्र तिवारी लेखक बारे में ''यशपाल की प्रर्यवेक्षण शक्ति बहुत ही सूक्ष्म एवं कुशल है। ऐसी बहुत सी बातों को जिन्हें हम समझते है, उनका ध्यान न गया होगा। भचौंका देते है.....औरत बह में विश्वास होता है कि लेखक हमने बीच में रहकर लिख रहा है, हमसे दूर रहकर नहीं।''...कहते हैं।

उनकी कहानियों में हम मध्यवगीय जीवन को देख सकते है। वह खुद मध्यवर्ग के होने के कारण मध्यवर्गीय जीवन से वे परिचित थे। अतः उनकी कहानियाँ इतनी स्वाभाविक बन पड़ी।

हिंदी साहित्य को आधुनिक बनाने की उनकी योगदान के बारे में कमलेश्वर लिखते है...यशपाल में आध ुनिकता की सतत प्यास है और उसी ने हिंदी कहानी को आधुनिक बनाया। यशपाल की रचनाओं ने हमारे पाठकों के स्वरूप को बदला, और उन्हे जिंदगी के प्रयोजन का अनुभव दिया। यशपाल ने प्रत्येक पाठक के मानस की सांस्कारिक और परंपरागत ग्रंथियों को खोलकर, उन्हें नए और आधुनिक को स्वीकार करने लायक बनाया।

यशपाल अपने साहित्य में सुधारवादी ही दिखाई देते है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण सामाजिक यथार्थ को ही वे सबसे अधि महत्व देते है। इस कारण उनका साहित्य सामाजिक न्याय, नीति, समानता की प्रस्थापना के लिए ही दिखाई देते है। इसमें शोषकों के प्रति घृणा का भाव एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति है। समाज में मानवता जा बढाने के लिए ही उनका साहित्य है। इस आधार पर कहानीकार यशपाल की विचारधारा प्रगतिशील ही है।

संदर्भ ग्रंथ...सूची :-

1. यशपाल का व्यक्तित्व और कृतित्व...डॉ. भूलिका त्रिवेदी
2. यशपाल और हिन्दी कथा...साहित्य....सरेशचंद्र तिवारी
3. सामयिकी...पं. शान्तिप्रिय द्विवेदी
4. समीक्ष से समीक्षा तक...डॉ. हणमंतराव पाटिल।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 73-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजर्षि संत पीपा के साहित्य में पर्यावरणीय चेतना

डॉ. आदित्य कुमार गुप्त
शोध निर्देशक एवं सह आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)
रामकिशन माली
शोधार्थी एवं सहायक आचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.)

पर्यावरण शब्द दो शब्दों के योग से बना है – परि तथा आवरण। परि से तात्पर्य चारों ओर से तथा आवरण का तात्पर्य है–ढका हुआ या आच्छादित अर्थात् चारों ओर से आच्छादित या ढका हुआ। जो हमें चारो ओर से आवृत्त किये हुए है, वहीं पर्यावरण है।

डगलस व रोमन हॉलेण्ड़ के अनुसार पर्यावरण उन सभी बाहरी शक्तियों व प्रभावों का वर्णन करता है जो प्राणी जगत् के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, विकास एवं परिपक्वता को प्रभावित करता है। व्यापक अर्थ में पर्यावरण का सम्बन्ध प्रकृति के समस्त जैविक तथा अजैविक घटकों से हैं, जो मनुष्य को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रुप से प्रभावित करते हैं। जर्मन वैज्ञानिक अर्नेस्ट हैकिल का कथन है कि किसी भी जीव–जन्तु के समस्त कार्बनिक–अकार्बनिक वातारण के परस्पर संबंधो को परिस्थिति या पर्यावरण कहते हैं।

पर्यावरण समस्त भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत इकाई है जो प्रत्येक जीव को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रभावित करते है। पर्यावरण के दो घटक है– जैविक तथा अजैविक घटक। ''प्रकृति के समस्त जैविक एवं अजैविक अंगो के परस्पर अन्तः सम्बन्ध, अन्तः प्रतिक्रिया एवं अन्तः प्रकार्यो द्वारा निर्मित विभिन्न स्वरूपों एवं भू–दृश्यों का पर्यावरण के अन्तर्गत समावेश है।''[1]

सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव से विशालकाय जीव तक जैविक घटक में समाहित होते हैं तथा जीवेतर प्रकृति के तत्त्व यथा – जंगल, पर्वत, झरना, तालाब, जल, वायु, धरातल आदि अजैविक घटक में शामिल किये जाते हैं। मनुष्य का शरीर भी प्रकृति के पाँच तत्त्वों – जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, अग्नि के संयुक्त पुंज से निर्मित हैं। अतः पर्यावरणीय तत्त्वों से निर्मित होने के कारण पर्यावरण प्रत्यक्ष रुप से मनुष्य को प्रभावित करता है।

भारतीय साहित्य में वैदिक परम्परा से आधुनिक साहित्य तक में स्पष्ट है कि मानव शरीर प्रकृति के पाँच तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु से निर्मित हुआ है, जिन्हे पंचमहाभूत कहा जाता है। मनुष्य आजीवन पर्यावरण से आबद्ध रहता है जहाँ एक ओर स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण मानव संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में सकारात्मक योगदान प्रदान करता है, वहीं दूषित पर्यावरण सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक, आर्थिक तथा वैज्ञानिक विकास तथा प्रगति को अवरुद्ध कर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

पर्यावरण, प्रकृति तथा मनुष्य में परस्पर अन्तर्सम्बन्ध है जो एक–दूसरे को प्रभावित किये बिना नहीं रह

सकते। भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन प्रकृति के नाना–तत्त्वों की महत्ता को समझकर ही वृक्ष, वन, नदी, पर्वत, जल, वायु, आकाश आदि को देवतुल्य मानकर उनकी पूजा–अर्चना तथा सुरक्षा की प्रेरणा देते है। भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से है। पर्यावरण के भौतिक–अभौतिक घटकों जल–वायु–आकाश–अग्नि–पृथ्वी, पशु–पक्षियों, वन्यजीव, नदी, पर्वत आदि को पूज्य माना गया है। जीवेम शरद शतम् तथा वसुधैव कुटुम्बकम् आदि आदर्श वाक्यों द्वारा सम्पूर्ण वसुधा को एक ही परिवार मानकर समस्त प्राणियों हेतु सौ वर्षों तक जीवित रहने के लिए कामना तथा प्रार्थना की गई है। सौ वर्षों तक जीवित रहने के लिए स्वस्थ एवं स्वच्छ पर्यावरण की महत्ता प्रारम्भ से अद्यतन स्वीकार की गई है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति, धर्म तथा दर्शन नाना रुपेण पर्यावरण की आराधना करते आये है। अथर्ववेद में कहा गया है कि 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'।।

अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उसका (पृथ्वी) पुत्र हूँ। संस्कृत भाषा की एक सूक्ति में भी कहा गया है कि –

''परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गायः परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।

वृक्ष परोपकार के भाव से ही फल देते हैं, नदियाँ परोपकार हेतु ही जल प्रवाहित करती है, गायें भी परोपकार के लिए दूध देती है निश्चित ही यह शरीर भी परोपकार के लिए ही है। प्रकृति और पर्यावरण का प्रत्येक घटक मानव हेतु उपयोगी हैं।

हिन्दी साहित्य में भी आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक इस सर्वमान्य मत का समर्थन अनेक कवियो, भक्तों, संतों, लेखकों तथा विचारकों ने किया है। हिन्दी साहित्य में भी आदिकाल से आधुनिक काल तक स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण की महत्ता को स्वीकार किया गया है। पदावली, पृथ्वीराजरासो, पदमावत्, रामचरितमानस, सुजान–रसखान, कामायनी, असाध्य वीणा, साकेत, कुटज, अशोक के फूल आदि अनेक ग्रंथ और रचनाएँ आद्यन्त पर्यावरणीय चेतना के पक्षधर है। छायावादी युग के कवि सुमित्रानन्दन पंत तो प्रकृति की गोद में जन्मे। उन्होने अपने अधिकांश काव्य में प्रकृति को पृष्ठभूमि बनाया। उनके प्रकृति प्रेम के कारण पंत को प्रकृति का सुकुमार कवि भी कहा जाता है।

आदिकालीन कवि विद्यापति की पदावली में प्रकृति के सुरम्य दर्शन होते हैं :–

मौली रसाल मुकुल भेल ताब, समुखहिं कोकिल पंचम गाय।।

भारतीय समाज तथा संस्कृति के उन्नायक भक्तिकाल के विख्यात महाकवि तुलसीदास ने भी नश्वर शरीर को पंच महाभूतो से ही निर्मित माना है।

''तारा विकल देखि रघुराया, दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया।
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा।।''[2]

तुलसीदास के समान ही भक्ति कालीन कवियो, भक्तों, संतों में कबीरदास, सूरदास, रसखान, मलिक मोहम्मद जायसी, संत जाम्भोजी, संत जसनाथ जी आदि नें पर्यावरण के प्रति प्रेम को प्रदर्शित कर पर्यावरण रक्षा, संरक्षण एवं अपनत्त्व द्वारा पर्यावरणीय चेतना एवं पर्यावरणीय प्रेम का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

राजपूताने के प्रसिद्ध संत जाम्भोजी ने अपने अनुयायियो के लिए 29 नियमो का विधान किया। जिसका अनुसरण करने वाले (20+9) विश्नोई कहलाये। विश्नोई सम्प्रदाय के 29 नियमों में से अनेक नियम पर्यावरण

चेतना, पर्यावरण संरक्षण तथा प्राणिप्रेम से सम्बन्धित है। इतिहास गवाह है कि संत जाम्भोजी के बताये मार्ग पर चलकर ही विश्नोई सम्प्रदाय के लोगो ने पशु–पक्षियो तथा वृक्षों की रक्षार्थ अपने प्राणो का बलिदान कर दिया। हरे वृक्ष नहीं काटना, जीव दया का पालन करना आदि विश्नोई सम्प्रदाय के पर्यावरण सम्बन्धी नियम है जिसका पालन सभी अनुयायियों को करना पड़ता है। संत जाम्भोजी के पर्यावरण प्रेम के कारण उन्हें पर्यावरण प्रेमी संत अथवा पर्यावरण वैज्ञानिक कहकर भी पुकारा जाता है। संत जाम्भोजी की प्रेरणा से प्रभावित होकर सन् 1787 ई. में मारवाड़ के खेजड़ली ग्राम के महिला पुरुषों ने अमृता देवी विश्नोई के नेतृत्व में जोधपुर नरेश अभयसिंह की आज्ञा के विरोध में वृक्षो से लिपटकर वृक्षो को नही काटने दिया परिणामस्वरुप राजहठ के सामने 363 निर्दोष पर्यावरण प्रेमियो को अपने प्राणो का बलिदान देना पड़ा। संतो की प्रेरणा से ही जोधपुर रियासत मे करमाबाई और गोराबाई ने वन्य प्राणियो हेतु अपने प्राणों का बलिदान दिया। वन्य जीवों की रक्षार्थ प्राण त्यागने के अप्रतिम उदाहरण राजपूताना मे सर्वप्रथम दिखाई देते हैं। जो संतों विशेषतः राजपूताना की धरा में जन्मे संतो की वाणियो, संदेशो की प्रेरणा के ही सुपरिणाम है।

राजस्थान के ही अन्य संत जसनाथी सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत जसनाथ जी द्वारा अपने अनुनायियों के लिए 36 नियमों का प्रतिपादन किया गया जिसमें से अनेक नियम पर्यावरण चेतना से सम्बन्धित है। राजस्थान के संतो जाम्भोजी, जसनाथजी, सुन्दरदास, संत पीपा ने तत्कालीन समय में ही पर्यावरण की महत्ता को समझकर वन तथा वन्यजीवो की रक्षार्थ लोगों को प्रेरित किया। ''संतो की सामाजिक चिंता के आयाम बहुत ही व्यापक रहे है। वेदों में जिस प्रकार ऋषि मुनियों ने वृक्षो और वनस्पति की पूजा और रक्षा की बात मानव समाज के हित में कही है, उसी परम्परा में संतो ने भी वृक्षों के संरक्षण की बात कही है। न केवल वृक्षो की रक्षा अपितु जल, कीट, पतंगो की, पशु पक्षियों की रक्षा की बात भी संतो ने कही है। पृथ्वी का पर्यावरण संतुलन सभी जीवो के लिए आवश्यक होता है, मनुष्य के लिए तो और भी आवश्यक है।''[3]

राजपूताने के मध्यकालीन संतो समान ही संत पीपा ने पर्यावरण को अपने साहित्य में विविध रुपों में स्थान देकर पर्यावरण चेतना का प्रसार किया। संत पीपा ने पर्यावरण तथा मानव अन्तर्सम्बन्धो के अर्थ को समझकर मानवहित में स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण को परमावश्यक माना। यद्यपि मनुष्य ने अपने भौतिकतावादी विकास की लालसा तथा अन्य से अपने को श्रेष्ठ बनाने की प्रतिस्पर्धा में पर्यावरण को नुकसान पहुँचा कर अपनी जीवन लीला समाप्त करने की ओर कदम बढ़ाना मानव सभ्यता के उद्‌भव से ही आरम्भ करना दिया था। मनुष्य द्वारा किया गया अवैज्ञानिक, अवांछित भौतिकतावादी विकास पर्यावरण के लिए अभिशाप हो गया। फलतः संत पीपा ने अपने जीवन काल में पर्यावरण संरक्षण के लिए चिंतन करते हुए समाज को सावचेत किया। संत पीपाजी का जन्म ही प्रकृति की गोदमुकुन्दरा पहाड़ी की तलहटी में स्थित आहू और काली सिंध नदियों के संगम पर स्थित विश्व विख्यात जल दुर्ग गागरोन में हुआ था। 'वर्ष 2013 ई. की 21 जून को इस जलदुर्ग गागरोन को यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में शामिल किया गया है।'[4] संत पीपाजी ने प्रारम्भ में तो क्षत्रिय कूल की परम्परा के अनुरूप ही बलि हिंसा को अपनाया। वे अपनी कुलदेवी जालपा माता को प्रसन्न करने के लिए नवरात्र के समय बलि दिया करते थे किंतु एक दिन रात्रि के समय मायावी दैत्य के द्वारा विकराल रुप प्रदर्शित करने से मन में भय उत्पन्न होने पर कुलदेवी से मुक्ति का विश्वास उठ गया। उन्होने देवी पूजा का परित्याग कर कुलदेवी जालपा के आर्शीवाद से संतमार्ग को अपनाकर बलि हिंसा को त्यागकर मोक्ष के मार्ग का अनुसरण किया। इस

चमत्कारी घटना के पश्चात् संत पीपा ने पशु बलि एवं हिंसा त्याग कर जीवों के प्रति प्रेम किया। उन्होंने अपने पशु प्रेम के वशीभूत होकर ही जंगली हिंसक पशु शेर को अपना पालतू बनाया। संत पीपाजी के प्रभाव से ही जंगल के हिंसक जीवों बाघ, बाघिनी, शेर आदि ने जीवों की हत्या करना बंद कर दिया।

''उठ्यो गिलार खांण कूं ध्यायौ, पीपा देखत माथौ क्षायौ।
सुंमत ऊपजी मन में भारी, इन दोऊँ हरजन की बलिहारी।।
करै लुर खरी जैसे स्वांनू, बाघ सयैत भयौ मन सयांनू।
सीता सीत देखन हि डरपी, तनम न रही रांम कूं अरपी।।
पीपा कौ मन हर सुं सांचौ, सीता कौ ताही तैं रांचौ।
पीपे माथै हाथ लगायौ, माला दीनी तिलक चढ़ायौ।।
अबहि न मारौ मांनस गाई, तोहि आज तैं राम दुवाई।
और जीव की तुम ही जांनौ, ऐह परमोद हमारौ मांनौ।।
वाघ वाघनी सीस नवाई, जैसे स्वांन सपरसै पाई।
पीपा को लागौ परमोधू, बाघ बाघनी क्षारयौ, क्रोधू।।
तब तै मानस गाय न खाई,जब तै दीनी रांम दुवाई।
भूत सरप स्यावज पसु पंखी, तिनहु गुर की अग्या रखी।।''[5]

इस घटना का वर्णन अनेक रचनाओं में वर्णित है। ''चले मग दूसरे सु ता में एक सिंह रहै आयो, वास लेत शिष्य कियो समझायों है''[6]। संत पीपाजी द्वारा दिखाये गये पशु प्रेम तथा प्रदत्त प्रवचनों को सुनकर जंगली हिंसक शेर ने जीव हत्या करना बंद कर दिया था। ''पीपाजी के स्पर्श और उपदेश से सिंह में अद्भूत संचार हुआ और वह चुपचाप जंगल की और चला गया उसने हिंसक वृत्ति त्याग दी। दरअसल पीपाजी ने सिंह में भी आत्मा के दर्शन किये''[7]। संत पीपाजी ने पशु, पक्षियों, वन्य जीवो, प्रकृति आदि की सुरक्षा, संरक्षण एंव प्रेम की शिक्षा प्रदान पर अपने पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी विचार प्रकट किये। मनुष्यों को सावचेत करते हुए उन्होने पशु हिंसा, माँस, शिकार आदि पर प्रतिबंध लगाने एवं इसी प्रकार के दुष्कर्म को त्यागने का आह्वान किया। उन्होने चेतावनी देते हुए बताया कि :–

जीव मार जीमण करै, खाता करे बखाण।
पीपा परतख देखले, थाली माही मसाण।।

अर्थात् पिताजी ने पशु हिंसा का विरोध करते हुए कहा है कि मनुष्य जीव को मारकर भोजन बनाए और उसे खाते हुए उस भोजन की प्रशंसा करे तो समझ लो की थाली मे ही प्रत्यक्ष शमशान है।

राजर्षि संत पीपाजी ने केवल जीव दया का संदेश ही नहीं दिया अपितु उन्होने वृक्ष–पेड़–पोधो आदि वनस्पतियों के संरक्षण की भी प्रेरणा प्रदान की है। उन्होने स्वयं कहा है कि मैं ऐसे मनुष्य की वंदना करता हूँ जो वृक्षो का पालन–पोषण करते है, वृक्षों से पुत्रवत प्रेम करते हैं।

''पीपा इन वंदन करूँ, बिरछ देख हरसाय।
आम्बा सेवे बाग मे, बाडे नीम लगाय।।
पीपा इन वंदन करुँ, नितंका बिरछ लगाये।

पारे, पोखे पूत ज्यु, निरख–निरख सुख पाए।।
पीपा इन वंदन करू, करे बिरछ को मान।
एक बिरछ पालन करे, दस पुत्रो वरदान।।''[8]

संत पिपाजी ने वृक्षो को देवतुल्य और सुख की खान बताया है। उन्होने बताया कि राजपूताने की धरा को हरा–भरा बनाकर सुशोभित करने वाले वृक्षो की मैं वंदना करता हूं।

''पीपा ईन वंदन करू, नीत पीपरी आम।
चोथी धोकू खेजडी, चारई सुख का धाम।।
पीपा इन वंदन करुँ, गऊ, गंगा, गुरुधाम।
वन, वरसालो खेजड़ी, निसिदिन सिमरुँ राम।''[9]

संत पीपाजी ने राजस्थान के राज्य वृक्ष खेजडी की महत्ता का पतिपदित करते हुए नीम, पीपल, आम और खेजड़ी चारों को सुख का धाम बताया है। संत पीपा के साहित्य में गाय, गंगा, वन, खेजड़ी आदि प्रकृति और पर्यावरण के विविध उपादानों को पूज्य एवं वन्दनीय बताया है। संत पीपा ने बताया है कि विपरीत विकट परिस्थितियों तथा अकाल की स्थिति में भी गाय माता, गंगा मैय्या, गुरु आश्रम, खेजड़ी आदि प्राणियों की रक्षा करतें है। अतः हमें उनकी वंदना करना चाहिए। संत पीपा ने वृक्षों को दीपक और संतों के समान बताया है जो स्वयं का अहित करने वाले को भी सुफल प्रदान कर अमरता प्रदान कर देते हैं। वृक्ष निष्काम भाव से दीपक और संतो की भांति विश्वकल्याण के भाव से प्राणियों का कल्याण करते रहते हैं।

''पीपा इन वंदन करुँ, बिरछ दीप अर संत।
बिस पीवे इमरत अरे, कद्याँ नि वे मदमंत।
पीपा इन वंदन करुँ, सबै बिरछ फलदार।
भात्ता खा रीसे नहीं, फल बगसे रसदार।।''[10]

संत पीपा ने स्वयं कहा है कि मैं वृक्षों, दीपक तथा संतों की वंदना करता हूँ क्योकि ये तीनों ही विष पीकर अर्थात् अपना विरोध सहन करके भी अमृत प्रदान करते है तथा अपने स्वभाव और करनी पर कभी भी अभिमान नहीं करते हैं।

संत पीपा ने भी वृक्षों को परोपकारी बताया है। उन्होंने वृक्षों को मानव जाति तथा प्रकृति के लिए वरदान बताते हुए कहा हैं कि वृक्ष दुनिया के सबसे बड़े परोपकारी है जो निसिवासर विकट परिस्थितियों को सहनकर अज्ञानी तथा स्वार्थी मानवों द्वारा पत्थर मारने पर उन्हें सुखद भाव से रसदार फल प्रदान कर देते हैं। संत पीपा ने कहा है कि मैं उन फलदार वृक्षों की वन्दना करता हूँ जो पत्थर की चोट खाकर भी नाराज नहीं होते और पत्थर मारने वाले को भी रसदार फल मुक्त में ही प्रदान कर देते हैं।

प्रकृति की प्रत्येक वनस्पति, वृक्ष, पेड़–पौधे स्वंय में औषधि है। भारतीय आयुर्वेद बताता है कि सम्पूर्ण प्रकृति ही औषधिमय है। प्रत्येक वृक्ष एवं जड़ी–बूटियाँ न जाने कितने असाध्य रोगों की रामबाण औषधि है। पर्यावरण का प्रत्येक वृक्ष सैकड़ों रोगों का दवाखाना है। भारतीय संस्कृति वृक्षों की उपादेयता के कारण उन्हे देवतुल्य मानकर पूजा करने का संदेश देती है।

संत पीपा ने भी वृक्षों को सैकड़ो रोगों के उपचार की औषधि प्रदान करने वाला बताया है। उन्होंने वृक्षों,

पेड़–पौधों को निरोगी काया प्रदान करने वाला बताया है।

''पीपा इन वंदन करुँ, सतगुरु, पीपर, नीम।
तीन ई करे निरोगड़ा, तीनई बड़ा हकीम।।
पीपा इन वंदन करुँ, सतगुरु अर पिव नाँव।
आँगण, गऊ अर लीमड़ी, माता पिता की छाँव।।''[11]

इस साखी में संत पीपा ने कहा है कि मै स्वयं सतगुरु, पीपल तथा नीम की वंदना करता हूँ। जो भी इनके सम्पर्क में आता है, इनके साथ तादात्म्य स्थापित करता है उनको ये तीनों निरोगी बना देते हैं, ये तीनो ही बड़े हकीम है। भक्ति के क्षेत्र में सद्गुरु की महिमा अपरमपार है जो साधक को साधना के मार्ग द्वारा परमात्मा तक पहुँचा देता है। संत पीपा ने कहा है कि सद्गुरु की भाँति ही आँगन, गाय, नीम, माता–पिता हमेशा सबका कल्याण चाहते है। अतः मैं तो इन सभी का वंदन करता हूँ। संत पीपा की पर्यावरणीय चेतना संबंधी अनेक विचार अन्य ग्रन्थों एवं रचनाओं में भी उपलब्ध हैं।

संत पीपा सद्गुरु, गुरुभाई तथा नीम को पूजनीय मानते हैं क्योंकि ये तीनों कटु सत्य के द्वारा अपनों का कल्याण ही करते हैं, उनका उत्थान करते हुए अहं से दूर रहते हैं।

''पीपा इन वंदन करुँ, सतगुरु, दास कबीर।
तीजी बूंदू लीमड़ी, मेटे जग की पीर।।''

इस साखी में संत पीपा ने कहा है कि मैं सद्गुरु, गुरुभाई तथा नीम की वंदना करता हूँ जिन्हें स्पर्श मात्र या जिनके सानिध्य में रहने मात्र से ही सांसारिक दुःख, कष्ट, पीड़ा, रोग–दोष स्वतः ही समाप्त हो जाते है। संत पीपा ने वृक्ष काटना महापाप माना है। उनके अनुसार एक वृक्ष का पालन–पोषण करने से दस पुत्र प्राप्ति का वरदान मिलता है। वृक्ष काटना पाप है तो वृक्ष काटने वाला पापी है जिसका मुखदर्शन कर लेने मात्र से ही पाप की प्राप्ति हो जाती है।

''पीपा इन वंदन करुँ, ब्रिछ करे माँ बाप।
ब्रिछ काट बालण करे, मूंड़ो देख्याँ पाप।।''

इस साखी में संत पीपा ने कहा है कि मैं ऐसे मनुष्यों का वंदन करता हूँ जो माता–पिता के समान वृक्षों की रक्षा करता है, सार सम्भाल करता है। जो व्यक्ति वृक्षों को काटकर उनकी लकड़ियों या शाखाओ को ईंधन के रूप में जलाता है ऐसी व्यक्ति पापी है तथा उसका मुख देखना भी पाप है। संत पीपा ने अपनी वाणी एवं साखियों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण तथा प्रकृति की रक्षार्थ अनेक तर्कों के माध्यम से अपनी वाणी को अभिव्यक्ति प्रदान कर जनसामान्य तथा भौतिकतावादी विकास का राग अलापने वालो को प्रकृति और पर्यावरण रक्षार्थ कार्य करने हेतु प्रेरित किया है।

''पीपा इन वंदन करुँ, जल ब्रिछ राखन हार।
दोई ब्रहम सरुप है, जीवन का आधार।।''

इस साखी में संत पीपा ने भी स्पष्ट कहा है कि मैं जल और वृक्ष की रक्षा करने वालो की वंदना करता हूँ। जिस प्रकार से ब्रहम जीवों की रक्षा पालन, पोषण एवं संरक्षण करता है उसी प्रकार जल और वृक्ष भी जीवों की रक्षा, पालन पोषण एवं संरक्षण करते है। संत पीपा ने जल के साथ–साथ वृक्ष को ब्रह्म स्वरुप मानकर यह

भी कहा है कि वृक्ष से प्यार करना ब्रहम से प्यार करने के समान है जो परम ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता है वह वृक्ष से प्यार करे।

''पीपा इनं वंदन करुँ, करे बिरछ ते प्यार।
जो जन काटे बिरछ ने, करे ब्रहम पे वार।।''

संत पीपा ने स्पष्ट कहा है कि जो वृक्षों से प्यार करते है, मैं उनकी वंदना करता हूँ। वृक्ष ब्रहम समान है, जो व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु वृक्षों को काटता है, वह ब्रह्म पर आघात करता है। ऐसे व्यक्ति का कभी भी कल्याण नहीं हो सकता है। संत पीपा केवल वृक्षो को ही नही अपितु वृक्षों से प्यार करने वालों की भी वंदना करते है। वैदिक परम्परा में भी वृक्षों को देवतुल्य मानकर पूजनीय और वंदनीय बताया गया है। वैदिक देवता किसी न किसी प्रकृति के तत्व से सम्बन्धित थे। जल, जंगल, जमीन आदि को प्रारम्भ से ही मानव हितैषी मानकर भारतीय संस्कृति घोर भौतिकतावादी विकास का विरोध करती रही है। भारतीय संस्कृति में वृक्ष को देव व पितृ तुल्य माना गया है। संत पीपा ने भी कहा है कि एक वृक्ष लगाकर उसका पालन पोषण करने से दस पुत्र प्राप्ति का वरदान मिलता है। जल, गाय, वृक्ष की पूजा, पालन, पोषण, संरक्षण करने वाले को अतुल्य पुण्य एवं सुख की प्राप्ति होती है तो जो इन पर घात लगाता है, इनका अनिष्ट करता है उसकी एक पीढ़ी तो क्या उसकी सात पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती है।

''पीपा इन वंदन करुँ, जल, गुरु, बिरछ पनाह।
जो इन पे घातो करे, पीढ़ी सात फनाह।।''

संत पीपा ने प्रकृति तथा पर्यावरण के प्राकृतिक तथा कृत्रिम घटकों–कूप, बावड़ी तथा तालाब की वंदना कर इनकी रक्षा का संकल्प दिया तथा अकाल के समय भी जीवों को जीवनदान प्रदान करने के कारण इन्हें पूज्य तथा उपास्थ बताया।

''पीपा इन वंदन करुँ, कूप, बावड़ी, ताल।
वे अतरे हद नी नटे, राखे काल–सुकाल।''

इस साखी में संत पीपा ने स्पष्ट कहा है कि मैं कूप, बावड़ी, तालाब की वंदना करता हूँ जो अपने में जल रहते प्राणियों द्वारा उसका उपभोग करने के लिए कभी भी मना नहीं करते तथा अकाल, अनावृष्टि के समय भी सुकाल बनाये रखते हैं, अतः पर्यावरण के ये सभी घटक वंदनीय हैं।

वृक्षों, नदियों, गायों को पृथ्वी का सबसे बड़ा परोपकारी माना गया है। ये निष्काम भाव से बिना किसी स्वार्थ के स्वंय को अंग–प्रत्यंग सहित अन्य प्राणियों की सेवा में समर्पित करते है, इन्हें बिना किसी स्वार्थ के अन्य प्राणियों के हित में, फल, लता, छाया, प्राणवायु, जल, दूध आदि प्रदत्त करने में आनन्दानुभुति होती है।

संत पीपजी ने अपने जीवन काल में न केवल स्वयं पर्यावरण प्रेम तथा संरक्षण का पाठ पढ़ाया अपितु उन्होने अपने साहित्य के माध्यम से लोगो को पर्यावरण संरक्षण तथा पर्यावरण प्रेम के लिए प्रेरित किया। राजस्थान का अधिकांश भाग मरूस्थल होने के कारण यहाँ पर्यावरण की रक्षा एवं जैव विविधता का संरक्षण आवश्यक है जिसका आदर्श उदाहरण भक्तिकाल मे संत जाम्भोजी के साथ–साथ राजर्षि संत पीपाजी ने प्रस्तुत किया। राजस्थान की प्रमुख वन सम्पदा के लाभ एंव उपयोगिता को समझकर ही उन्होने खेजड़ी को भी सुख की खान बताया है। खेजडी की उपयोगिता को समझकर ही राजस्थान सरकार द्वारा राज्य वृक्ष घोषित किया गया है।

संतों की पर्यावरण चेतना तथा चिंता के आयाम बहुत ही विस्तृत थे। वेदों, पुराणों आदि मे ऋषियों, मुनियों ने वृक्षों वनस्पति, जीव, जंगल आदि के संरक्षण की बात कही है। उसी प्रकार संतों ने भी वृक्ष, जल आदि के सरक्षण वन्य जीव पशु–पक्षी, नदियों–तालाबों की रक्षा संरक्षण तथा पालन पोषण की प्रेरणा प्रदान की है। ''इनके प्रभाव से गौ और व्याघ्र एक घाट पर पानी पीते थे।''[12]

संत पीपा की पर्यावरण चेतना तत्कालीन समय में ही नहीं अपितु वर्तमान में भी प्रासंगिक है। वर्तमान में अनेक पर्यावरणविद्, वन, वन्य जीव, जल, आदि पर्यावरणीय घटकों के मानक स्तरो में हो रहे विघटनकारी परिवर्तनो से चितिंत है। भौतिकतावादी संस्कृति के इस युग में हमें संत पीपा की पर्यावरणीय चेतना को आत्मसात् कर पर्यावरण प्रेम, संरक्षण तथा सुरक्षा के स्वर को बुलन्द करना होगा। मानव जाति को निष्काम भाव से मुक्त अभयदान करने वाले पर्यावरण का संरक्षण करना ही होगा, नहीं तो दोहन के विध्वंस को झेलने वाली हमारी आगामी पीढ़ियां हमें कोसते हुए कभी माफ नहीं करेगी तथा विनाश के अभिशाप को स्वतः ही प्राप्त हो जायेगी। निश्चित ही संत पीपा के साहित्य में अभिव्यक्त पर्यावरणीय चेतना सार्वभौमिक, सार्वकालिक और वर्तमान समय में भी प्रासगिंक है।

संदर्भ सूची :–

1. भट्ट, गदाधर, पर्यावरण प्रकृति एवं धर्म, 2012, पृष्ठ 3
2. तुलसीदास, रामचरित मानस, किष्किंधा काण्ड, पृष्ठ 693
3. दाधीच, डॉ. रामप्रसाद, राजस्थान के संत कवियों की लोकदर्शिता एवं लोकधर्मिता, 2009, पृष्ठ 111
4. शर्मा, ललित, झालावाड़ : इतिहास संस्कृति ओर पर्यावरण, 2017, पृष्ठ 78
5. अनन्तदास, पीपाजी की परची, सं. डॉ. हुकम सिंह भाटी, परम्परा, 2006, भाग 145, पृष्ठ 32
6. भक्तमाल अंक, कल्याण, 2013, पृष्ठ 251
7. शर्मा, ललित, राजर्षि संत पीपाजी, 2017, पृष्ठ 62
8. सहगल, डॉ. पूरन, संत पीपाजी एवं भक्ति आंदोलन, पृष्ठ 288
9. वही, पृ. 291
10. वही, पृ. 285
11. वही, पृ. 287
12. शर्मा, पंड़ित रामनिवास, संत अंक, कल्याण संवत् 2073, पृष्ठ 552

मो. नं. : 9929296393

ई–मेल : malirkgolana@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 81-85

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

औद्योगिकरण से पर्यावरण प्रदूषण

सुमित कुमार जाट

शोधार्थी, भूगोल विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

सारांश :–

प्राचीन काल मैं प्रकृति और मानव के बीच भावात्मक संबंध था। मानव अत्यंत कृतज्ञ भाव से प्रकृति के उपहारों को ग्रहण करता था प्रकृति के किसी भी अवयव को क्षति पहुंचाना पाप समझा जाता था। परंतु बढ़ती जनसंख्या एवं भौतिक विकास और असीमित औद्योगिकरण के कारण प्रकृति का असीमित दोहन प्रारंभ हुआ भूमि से हमने अपार खनिज संपदा डीजल, पेट्रोल आदि निकालकर धरती की कोख को उजाड़ दिया, वृक्षों को काट काट कर मानव समाज ने धरती को नग्न कर दिया। वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास वनों के कटने के कारण वन्यजीव बेघर होते गए। तीव्र औद्योगिककरण के कारण लगातार जहर उगलती चिमनियो ने वायुमंडल को विषाक्त एवं मिश्रण बना दिया। हमारी पावन नदियां अब गंदे नाले का रूप ले चुकी हैं, नदियों का जल विषाक्त होने के कारण उसमें रहने वाले जलीय जीव तड़प–तड़प कर मर रहे हैं। बढ़ते ध्वनि प्रदूषण से कानों के पर्दो पर लगातार घातक प्रभाव पड़ रहा है। लगातार घातक रासायनिक उर्वरकों का उपयोग भूमि को ऊसरीला बनाता जा रहा है। पृथ्वी पर अम्लीय वर्षा का प्रकोप धीरे– धीरे बढ़ता जा रहा है। तथा लगातार तापक्रम बढ़ने से पहाड़ों की बर्फ पिघल रही है जिससे पृथ्वी का अस्तित्व संकटग्रस्त होता जा रहा है, औद्योगीकरण से पर्यावरण प्रदूषण आज विभिन्न घातक रूपों में विद्वान है जो मानव सभ्यता के अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। स्थिति यहां तक आ गई है कि सृष्टि का भविष्य संकटग्रस्त है। लेकिन देश को विकसित करने के लिए औद्योगीकरण भी अनिवार्य है, इसलिए यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि इन सब के लिए प्राकृतिक संसाधनों के साथ इस हद तक छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिए जिससे कि मानव के स्वयं के अस्तित्व के लिए संकट उत्पन्न हो जाए।

प्रस्तावना :–

प्राचीन काल में प्रकृति और मानव के बीच भावनात्मक संबंध था। मानव अत्यंत कृतज्ञ भाव से प्रकृति के उपहारों को ग्रहण करता था। प्रकृति के किसी भी अवयव को क्षति पहुँचाना पाप समझा जाता था। बढ़ती जनसंख्या एवं भौतिक विकास के फलस्वरूप प्रकृति का असीमित दोहन प्रारंभ हुआ। भूमि से हमने अपार खनिज संपदा, डीजल, पेट्रोल आदि निकालकर धरती की कोख को उजाड़ दिया। वृक्षों को काट का टकर मानव समाज ने धरती को नग्न कर दिया। वन्य जीवों के प्राकृत वास वनों के कटने के कारण वन्य–जीव बेघर होते गए। असीमित औद्योगीकरण के कारण लगातार जहर उगलती चिमनी में ने वायुमंडल को विषाक्त एवं निष्प्राण बना दिया। हमारी पावन नदियां गंदे नाले का रूप ले चुकी हैं। नदियों का जल विषाक्त होने के कारण उसमें रहने

वाली मछलियां एवं अन्य जलीय जीव तड़प–तड़प कर मर रहे हैं। बढ़ते ध्वनि प्रदूषण से कानों के परदों पर लगातार घातक प्रभाव पड़ रहा है। लगातार घातक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग भूमि को उस रीला बनाता जा रहा है। पृथ्वी पर अम्लीय वर्षा का प्रकोप धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है तथा लगातार तापक्रम बढ़ने से पहाड़ों की बर्फ पिंघल रही है जिससे पृथ्वी का अस्तित्व संकटग्रस्त होता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण आज विभिन्न घातक स्वरूपों में विद्यमान है जो मानव सभ्यता के अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। स्थिति यहां तक आ गई आ गई है कि सृष्टि का भविष्य संकट ग्रस्त है। पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख स्वरूप निम्न प्रकार है।

1. वायु प्रदूषण :–

मानव को प्रकृति प्रदत एक निःशुल्क उपहार मिला है और वह है वायु। यह उपहार सभी जीवों का आधार है मानव बिना भोजन एवं बिना जल के कुछ समय भले ही व्यतीत कर ले, बिना वायु के वह 10 मिनट भी जीवित नहीं रह सकता। यह अत्यंत चिंता का विषय है कि प्रकृति प्रदत्त जीवनदायिनी वायु लगातार जहरीली होती जा रही है। शहरों का असीमित विस्तार, बढ़ता औद्योगिकीकरण, परिवहन के साधनों में लगातार वृद्धि तथा विलासिता की वस्तुएं (जैसे–एयर कंडीशनर रेफ्रिजरेटर आदि वायु प्रदूषण को लगातार बढ़ावा दे रही हैं। मानव 24 घंटे में लगभग 22000 बार सांस लेता है तथा इसमें प्रयुक्त वायु की मात्रा लगभग 35 गैलन या 16 किलोग्राम हैं। ऐसी वायु जो हानिकारक अवयवों से मुक्त हो उसे शुद्ध वायु कहते हैं। वायु के मुख्य संघटको में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड हैं। उक्त के अतिरिक्त वायुमंडल में थोड़ी मात्रा में आर्गन यानि ऑन जैसी गैसे भी पाई जाती हैं। वायुमंडल की प्रमुख गैसों की सांद्रता निम्न प्रकार है–

1.	नाइट्रोजन	79–20 प्रतिशत
2.	ऑक्सीजन	20–60 प्रतिशत
3.	कार्बनडाई आक्साइड	20 प्रतिशत
4.	अन्य	अति सूक्ष्म रूप में।

1. वायु प्रदूषण को रोकने हेतु प्रमुख उपाय निम्न प्रकार हैं।

वायु प्रदूषण रोकने में वृक्षों का सबसे बड़ा योगदान हैं। पौधे वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित कर हमें प्राण वायु ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। अतः सड़कों नहर पटरियों तथा रेललाइन के किनारे तथा उपलब्ध रिक्त भू–भाग पर व्यापक रूप से वृक्ष लगाए जाने चाहिए ताकि हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ वायुमंडल भी शुद्ध हो सके। औद्योगिक क्षेत्रों के निकट हरी पट्टियां विकसित की जानी चाहिए जिसमें ऐसे वृक्ष लगाए जाएं जो चिमनियों के धुएँ से आसानी से नष्ट न हो तथा घातक गैसों को अवशोषित करने की क्षमता रखते हों पीपल एवं बरगद आदि का रोपण इस दृष्टि से उपयोगी है।

2. औद्योगिक इकाईयों को प्रयास करना चाहिए कि वायुमंडल में फैलने वाली घातक गैसों की मात्रा निर्धारित मानकों के अनुसार रखें जिसके लिए प्रत्येक उद्योग में वायुशुद्धिकरण यंत्र अवश्य लगाए जाएं।

3. उद्योगों में चिमनियों की ऊंचाई पर्याप्त होनी चाहिए ताकि आस–पास कम से कम प्रदूषण हो।

4. पेट्रोल कारों में कैटेलिक कनवर्टर लगाने से वायु प्रदूषण को बहुत हद तक कम किया जा सकता है। इस प्रकार की कारों में शीशा रहित पेट्रोल का प्रयोग किया जाना चाहिए।

5. घरों में धुआं रहित इंधनों को बढ़ावा देना चाहिए।

2. जल प्रदूषण :–

जल में ठोस कार्बनिक अकार्बनिक पदार्थ रेडियो एक्टिव तत्व उद्योगों का कचरा एवं सीवेज से निकला हुआ पानी मिलने से जल प्रदूषित हो जाता है।

जल प्रदूषण के कारण :–

जल प्रदूषण के मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं।

1. उद्योगों से निकलने वाला कचरा कई धातुएं जैसे मर्करी कैडमियम एवं लेड आदि अपने साथ निकालता है।
2. सीवेज का जल मानव तथा पशुओं के मल को अपने साथ ले जाता है जिसमें कई जीवाणु हानिकारक पदार्थ जैसे यूरिया एवं यूरिक एसिड आदि मिले रहते हैं!
3. बहुत से साबुनो से निकलने वाला पानी भी जल को प्रदूषित करता है।
4. कच्चा पेट्रोल कुओं से निकलते समय समुंद्र में मिल जाता है जिससे जल प्रदूषित हो जाता है।

जल प्रदूषण के प्रभाव :–

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली बीमारियों का एक मुख्य कारण प्रदूषित जल है अतिसार, हैजा एवं टाइफाइड आदि दूषित जल के प्रयोग से ही होते हैं मनुष्य द्वारा पृथ्वी का कूड़ा कचरा समुद्र में डाला जा रहा है नदियां भी अपना प्रदूषित जल समुद्र में मिलाकर उसे लगातार प्रदूषित कर रही हैं वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि भूमध्य सागर में कूड़ा कचरा डालना बंद नहीं किया गया तो डॉल्फिन और टूना जैसी सुंदर मछलियों का यह सागर शीघ्र ही इनका कब्रगाह बन जाएगा।

जल प्रदूषण रोकने के उपाय :–

1. अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को रोका जाना चाहिए तथा उसके स्थान पर गोबर की खाद का प्रयोग किया जाना चाहिए।
2. रासायनिक साबुनों के बढ़ते प्रयोग को कम किया जाना चाहिए।
3. रेडियो एक्टिव पदार्थ, अस्पतालों एवं रासायनिक प्रयोगशालाओं के कूडे को जल में मिलाने के स्थान पर उसे जमीन में गाड़ना चाहिए जल संकट की ओर विश्व जनमत का ध्यान आकृष्ट करने हेतु प्रतिवर्ष 22 मार्च को विश्व जल दिवस मनाया जाता है।

3. ध्वनि प्रदूषण :–

अनियंत्रित अत्यधिक तीव्र एवं असहनीय ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण कहते हैं ध्वनि प्रदूषण की तीव्रता को डेसीबल इकाई में मापा जाता है 0 डेसीबल ध्वनि की तीव्रता का वह स्तर है जहां से ध्वनि सुनाई देने लगती है फुसफुसाहट में बोलने पर ध्वनि की तीव्रता 30 डेसीबल होती है वैज्ञानिकों के अनुसार 40 से 50 डेसीबल तक की ध्वनि मनुष्य के रहने लायक होती है उससे अधिक की तीव्रता की ध्वनि मनुष्य के लिए हानिकारक होती है।

ध्वनि प्रदूषण का कारण :–

1. औद्योगिक क्षेत्रों में उच्च ध्वनि क्षमता के पावर सायरन और मशीनों के द्वारा होने वाले शोर।
2. शहरों एवं गांवों में किसी भी त्यौहार व उत्सव में राजनीतिक दलों के चुनाव प्रचार में रैली में लाउड स्पीकरों का अनियंत्रित इस्तेमाल करना।

3. अनियंत्रित वाहनों के विस्तार के कारण उनके इंजन एवं हार्न के कारण।

4. जनरेटर एवं डीजल पंपों आदि से ध्वनि प्रदूषण।

ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव :–

पर्यावरण प्रदूषण के अन्य स्वरूपों के साथ ध्वनि प्रदूषण भी हमारे लिए बड़े खतरे का कारण है अधिक शोर से हमारे मस्तिष्क पर घातक प्रभाव पड़ता है तथा सुनने की शक्ति लगातार घटती जाती है जिससे धीरे–धीरे बहरापन आ जाता है। ध्वनि प्रदूषण से हृदय गति बढ़ जाती है जिससे रक्तचाप, सिरदर्द एवं अनिद्रा जैसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं नवजात शिशुओं के स्वास्थ्य पर ध्वनि प्रदूषण का बुरा प्रभाव पड़ता है तथा इससे कई प्रकार की शारीरिक विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं गैस्ट्रिक अल्सर और दमा जैसे शारीरिक रोगों का तथा थकान एवं चिड़चिड़ापन जैसे मनोविकारों का कारण भी ध्वनि प्रदूषण ही है।

ध्वनि प्रदूषण का नियंत्रण :–

1. यथासंभव लाउड स्पीकरों का प्रयोग प्रतिबंधित कर देना चाहिए। जब तक अत्यंत आवश्यक न हो इनके प्रयोग की अनुमति नहीं देनी चाहिए लाउड स्पीकरों का प्रयोग चिकित्सालय एवं शिक्षण संस्थाओं आदि से 500 मीटर से अधिक दूरी पर ही किया जाना चाहिए।

2. घरों में रेडियो टेलीविजन का प्रयोग कम आवाज में करना चाहिए वाहनों के हॉर्न का प्रयोग कम से कम करना चाहिए।

3. वाहनों के साइलेंसर एवं इंजन की देखभाल समय से करनी चाहिए !

4. मृदा प्रदूषण :–

वर्षा से भूमि की संरचना का बिगड़ना, दिन–प्रतिदिन उर्वरकों का प्रयोग चूहे मारने की दवा आदि का प्रयोग तथा फसलों को बीमारी से बचाने के लिए दवा का छिड़काव भूमि की उर्वरता को नष्ट कर देता है तथा ऐसा प्रदूषण मृदा प्रदूषण कहलाता है।

मृदा प्रदूषण का कारण :–

1. सल्फर डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन डाइऑक्साइड वर्षा से क्रिया करके अम्ल बनाते हैं जिसे अम्लीय वर्षा कहते हैं। अम्लीय वर्षा भूमि की उर्वरता को नष्ट करती है।

2. कई उर्वरक जैसे अमोनियम सल्फेट, यूरिया, कैलशियम साइनामाइड अमोनियम नाइट्रेट एवं कैलिशियम सुपर फास्फेट भी मृदा प्रदूषण के कारण हैं।

मृदा प्रदूषण का प्रभाव :–

मृदा प्रदूषण से भूमि की उत्पादकता घटती है तथा उसमें कोई भी फसल एवं पेड़–पौधे आदि नहीं तैयार हो पाते हैं। धीरे–धीरे भूमि उसरीली हो जाती है। नग्न भूमि मृदा क्षरण को बढ़ावा देती है जिससे बाढ़ की विकराल समस्या आती है।

मृदा प्रदूषण का नियंत्रण :–

1. कृषि कार्य में रासायनिक खादों के स्थान पर गोबर घास कूड़े आदि से निर्मित कंपोस्ट खाद एवं हरी खाद का प्रयोग करने से मृदा प्रदूषण को रोकने में सहायता मिलती है।

2. एक खेत में एक ही फसल उगाने के स्थान पर अलग–अलग फसल को उगाने से मृदा प्रदूषण को रोकने में सहायता मिलती है!

5. रेडियो एक्टिव प्रदूषण :–

नाभिकीय परमाणु परीक्षणों के फलस्वरूप कई रेडियो एक्टिव तत्व जैसे यूरेनियम, थोरियम, प्लूटोनियम तथा रेडियो एक्टिव किरणें जैसे–अल्फा बीटा गामा किरणें वातावरण में प्रवेश करके रेडियोधर्मी प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।

रेडियो एक्टिव प्रदूषण का कारण :–

नाभिकीय भटिया तथा युद्ध में प्रयोग हो रहे नाभिकीय बम तथा अन्य सामग्री तथा नाभिकीय परीक्षण आदि रेडियो धर्मी प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं। इन सबके द्वारा हानिकारक रेडियो एक्टिव तत्व, किरणें आदि निकलकर वातावरण में प्रवेश कर वायु, जल तथा मृदा को हानि पहुंचाती है।

रेडियो एक्टिव प्रदूषण का प्रभाव :–

रेडियो एक्टिव पदार्थ वातावरण में इतनी अधिक मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित करते हैं कि इससे पौधों की कोशिकाएं तथा जानवरों एवं मनुष्य की कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं।

1. रेडियो धर्मी प्रदूषण के आसपास रहने से ट्यूमर हो जाता है तथा समय से पूर्व ही सफेद हो जाते हैं।
2. नाभिकीय विस्फोट से नदियों तथा समुद्र का जल प्रदूषित हो जाता है जिससे समुद्री जीव–जंतु नष्ट हो जाते हैं।
3. रेडियो एक्टिव तत्व स्ट्रन्शियम मृदा को नष्ट कर देता है।

6. जलवायु परिवर्तन :–

पृथ्वी के उर्द्धव से लेकर आज तक इसमें निरंतर परिवर्तन हो रहा है। इसकी गति कभी तीव्र होती है तो कभी मंद। पर्यावरण के प्रमुख भौगोलिक घटक जैसे– ताप, वायुदाब, आद्रता, वायु वेग, वर्षा आदि जलवायु का निर्माण करते हैं।

विगत वर्षों में जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकरण, वन विनाश, स्वचालित वाहनों में वृद्धि तथा रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से पर्यावरण को क्षति पहुंची है तथा जलवायु के विभिन्न तत्वों जैसे– ताप वायुदाब, आद्रता वायु वेग वर्षा आदि में व्यापक परिवर्तन हुआ है। इन परिवर्तनों के कारण मानव अस्तित्व खतरे में है।

जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारण निम्न है :–

प्राकृतिक कारण :– मृदा क्षरण, बाढ़, तुफान, चक्रवात, भूस्खलन, ज्वालामुखी, दावाग्नि, सूखा, आंधी, तडित एवं भूकंप आदि।

मानवीय कारण :– जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकीकरण, वन विनाश, यातायात के साधन, आनियोजित नगरीकरण, संसाधनों का असीमित विदोहन आदि।

7. वैश्विक ताप वृद्धि :–

सामान्य परिस्थितियों में पृथ्वी का ताप इस से टकराने वाले सूर्य विकिरण तथा अंतरिक्ष में वापस लौट जाने वाली किरणों द्वारा नियंत्रित होता है। जब वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता बढ़ जाती है तो इस गैस की मोटी परत किरणों को परावर्तित होने से रोकती है। यह मोटी ग्रीन हाउस की कांच की दीवार तथा कार की खिड़की के कांच की भर्ती होती है। यह दोनों ही गर्मी को बाहर विकृत होने से रोकती हैं। इसे ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं। यही क्रिया प्रकृति में भी होती है यहां कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, ओजोन, जलवाष्प मिथेन, नाइट्रोजन, ऑक्साइड तथा क्लोरोफ्लोरोकार्बन गैसे एक मोटी परत पृथ्वी के वातावरण में बना लेती हैं।

जो ग्लास हाउस के कांच की भांति ही कार्य करती हैं। अर्थात सूर्य ऊष्मा जो भीतर आती है पूरी की पूरी वापस नहीं जाने पाती जिससे विश्व स्तर पर वातावरण की निचली परत में वायु का ताप बढ़ जाता है। बढ़ी हुई कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा को समुद्रों के द्वारा अवशोषित किया जा सकता है परंतु औद्योगिकरण तथा ऊर्जा के अत्यधिक उपयोग से समुद्री अवशोषण क्षमता की तुलना में वायुमंडल में अधिक कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन हो रही है। इस प्रकार वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता निरंतर बढ़ रही है। कार्बन डाइऑक्साइड पृथ्वी के ताप में 50 प्रतिशत एवं क्लोरोफ्लोरो कार्बन में 20 प्रतिशत तक की वृद्धि करती है।

वैश्विक ताप वृद्धि से उत्पन्न प्रमुख समस्याएं :–

1. जैविक विविधता में तेजी से कमी आएगी तथा महत्वपूर्ण प्राकृतिक स्रोतों का ह्रास होगा।
2. 1 डिग्री ताप वृद्धि अक्षांश के 100 किलोमीटर परिवर्तन के बराबर होगा।
3. बड़े हुए ताप से विश्व के अनेक भागों में तूफान आएंगे उन क्षेत्रों में भी तूफान आ सकते हैं जहां पहले कभी ऐसा नहीं होता था।
4. ताप बढ़ने से वर्षा एवं मानसून के स्वरूप में परिवर्तन होगा कहीं पर सूखा होगा तथा कहीं अत्यधिक वर्षा होगी इसे मृदा क्षरण बढ़ेगा।
5. पर्वत शिखरों एवं ग्लेशियरों की बर्फ पिंघलने से समुद्र का स्तर बढ़ेगा।

8. अम्लीय वर्षा :–

वायुमंडल में विधमान कार्बन डाइऑक्साइड गैस पानी में घुलकर कार्बोनिक अम्ल बनाती है। वर्षा के जल में कार्बनिक अम्ल मिले होने के कारण वर्षा के जल का पीएच सामान्य से कुछ कम लगभग 6–5 होता है। घातक गैसे सल्फर डाई ऑक्साइड सल्फर डाईऑक्साइड तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड आदि जो वायु प्रदूषण के कारण वायुमंडल में विद्वान रहती हैं वर्षा जल को अवशोषित कर उसका पीएच और कम कर देती हैं यही अम्लीय वर्षा कहलाती है।

अम्लीय वर्षा के प्रमुख स्रोत :–

सल्फर डाइऑक्साइड कोयले के जल ने विद्युत शक्ति संयंत्रों एवं पेट्रोलियम शोधन से सल्फर डाइऑक साइड गैस निकलती है इसी के साथ कुछ मात्रा में सल्फर डाईऑक्साइड भी निकलती है। प्राकृतिक स्रोतों में ज्वालामुखी प्रमुख है। हाइड्रोजन सल्फाइड गैस प्राकृतिक रूप से सल्फर को अपचयित करने वाले जीवाणुओं से प्राप्त होती है तथा दलदली भूमि से निकलती रहती है यह देश जीवाश्म ईंधनों के आंशिक रूप से जलने एवं अनेक उद्योगों में द्वितियक उत्पाद के रूप में प्रकट होती है। नाइट्रोजन की विभिन्न ऑक्साइड गैसे अनेक जीवाश्म ईंधनों के जलन तथा विस्फोटक उद्योगों से निकलकर वायुमंडल में मिल जाती हैं। आजकल होने वाली 60 से 70 प्रतिशत अम्लीय वर्षा सल्फर के विभिन्न ऑक्साइड से होती है। 30 से 40 प्रतिशत अम्लीय वर्षा नाइट्रोजन ऑक्साइड एवं अन्य कारण से होती है।

संदर्भ :–

1. सिंह केदारनाथ (2002) 21वीं सदी की वानिकी वितरक नटराज पब्लिशर्स।
2. श्रीवास्तव मनोज (2010) पर्यावरण प्रदूषण के खतरे ग्लोबल ग्रीन्स इलाहाबाद।
3. चौधरी बीएल एवं प्रसाद जितेंद्र (2013) पर्यावरण अध्ययन, एसएफ. पब्लिकेशन हाउस दरियागंज नई दिल्ली।
4. जोसेफ बेनी (2005) एनवायरमेंटल स्टडीज टाटा मैकग्रा हिल।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 86-89

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सार्वभौम एवं सार्वजननीन वैदिक धर्म

डॉ. कविता जैन

सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, पिड़ावा (झालावाड़)

वेद विश्व का प्राचीनतम धर्म ग्रन्थ है। वेद अपौरुषेय हैः धृ घातु से निष्पन्न धर्म पद का सामान्य अर्थ धारण करना आलम्बन देना, पालन करना है। धर्म शक्तियों प्रत्युत यह जीवन की एक पद्धति या आचरण संहिता है। जिसमें मनुष्य मात्र अपने श्रेष्ठ कृत्यों को करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति करता है। वेद एक ऐसा जीवन दर्शन है जो लोक मंगल की भावना से समत्व की भावना का दिव्य संदेश देता है।

धर्म को दो भागों में विभाजित किया है। अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह शोच, संतोष तप स्वाध्याय, ईश्वर चिन्तन धृति, क्षमा, दम अक्रोधादिक सम्यक चरित्र को सामान्य धर्म में निहित किया है। धर्म एक शाश्वत एवं सार्वभौम जीवन–मूल्य है। सार्वभौम धर्म की परिभाषा बड़ी सरल है किन्तु उसकी क्रियान्वित उतनी ही कठिन देश काल की सीमा में आबद्ध किसी जातिविशेष के कर्त्तव्य व्यवहारों या धर्म गुरुओं की देशनाओं के परिपालन मात्र को सार्वभौम धर्म नहीं कहा जा सकता क्योकि वे सनातन शाश्वत नहीं हो सकता न ही सार्वजनीनः व्यष्टि में समीष्ट भाव का उदय ही वस्तुतः सार्वभौम धर्म है :

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः''।

''सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुखभाग्यवेत्''।

की वैदिक धारणा इसी समाष्टि भाव की निदर्शिका है। इसी समाष्टि भाव के उदय होने से ही वैदिक ऋषि कह उठता है– 'ईशा वास्यामिदं सर्व यत्किचं जगत्यां जगत्' इस जगतीतल पर जो स्यावर जंगजात्मक विश्व है–वह परमेश्वर से व्याप्त है। उसी परमपिता को विद्वज्जन अग्नि, वरुण, इन्द्र, रुद्र, यम, मातरिश्वा, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि नामों से पुकारते हैं वहीं सबका उपास्य है किन्तु किसी एक विशेष नाम से ही उपासना को नियन्त्रित करना या वर्ग विशेष को ही उसका अधिकारी बतलाना धर्म की सार्वभौमिकता का उपहास करना है और धर्म को संकुचित करना है। इस प्रकार संकोच को प्राप्त धर्म सम्प्रदाय मत बनकर रह जाता है।

अतः सार्वभौम धर्म का प्रथम लक्षण है एक ईश्वर में विश्वास सार्वभौम धर्म की दूसरी कसौटी है–विश्वजनीनता वही धर्म सार्वभौम कहा जा सकता है जो विश्व के सभी प्राणियों के हित की भावना से ओत प्रोत हो। देश विशेष या कालाविशेष या जाति विशेष के हितो से बंधा हुआ धर्म सार्वभौम नहीं हो सकता।

इस कसौटी पर सनातन वैदिक धर्म ही खरा उतरना है क्योंकि यही धर्म सनातन और सर्वादेशिक है सभी प्राणियों की हितचिन्ता इस धर्म का वैशिष्ट्य है। सार्वभौम धर्म सम्पूर्ण मानव जाति के इहलौकिक अभ्युदय और

पारलौकिक सुख की कामना के साथ व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का अवसर प्रदान करता है–बिना किसी भेदभाव के सार्वभौम धर्म व्यष्टि को समष्टि से जोड़ता है।

वह समाष्टि और सृष्टिकर्ता परमेश्वर के बीच एक सोपान है–जिसके माध्यम से प्रत्येक प्राणी ईश्वर पर पहुंचता है। इसलिए सत्य को धर्म कहा है अंहिसा को धर्म कहा है –आचार को धर्म कहा है स्वभाव,आत्माभाव आत्मा की पहचान को धर्म कहा है। निःस्वार्थरुप से परोपकारर्थ किया जाने वाले कर्म धर्म है निष्काम भाव से किया जाने वाला कर्म ही मोक्ष का जनक है, यह कर्म जीवात्मा में परमात्मा को धारण करता है–अतः धर्म प्रद वाच्य है। निष्काम कर्म सार्वजनीन एवं सार्वभौम है। अतः सार्वभौम धर्म है,''कुर्वन्नेवेह कर्माणि'' का यही फलितार्थ हैं धर्म की इस भावना को भक्ति कालीन कवियों ने सही रुप में पहचाना था–तभी तो गोस्वामी तुलसीदास ने कहा था ''परहित सरिस धरमुनहिभाई'' ''तस्य निःश्वसित वेदाः–'' वेद ईश्वर के निःश्वास है, अतः अपौरुषेय है–अनादि है। आर्यो की मान्यता है कि वेद के अन्दर परमात्मा ने मानव जाति के लिए उपयोगी सभी ज्ञान का उपदेश दिया है। क्योकि आर्य वेद को अपना धर्मग्रन्थ मानते है।

इसलिए महर्षि ने वेद का पढ़ना और सुनना, सुनाना सब आर्यो का परम धर्म कहा है, सत्य को धारण करना, सत्या सत्य के विवेकपूर्वक कर्म करना संसार का उपहार करना, प्रीती पूर्वक यथायोग्य व्यवहार करना, अविद्या का विनाश करना सर्वोदय की कामना करना और सर्वहितकारी नियमों में स्वच्छन्ता न वर्तना धर्म बतलाया है।

वस्तुतः यही सार्वभौम और शाश्वत धर्म है। इसी धर्म में सम्पूर्ण मानवों का हित निहित है यह बिना किसी भेदभाव के मानव जाति को धारणा करने में समर्थ है। विश्व का कोई धर्मगुरु इसे नकार नहीं सकता और न ही इसकी सार्वभौमिकता की कोई चुनौती दे सकता है। अभ्युदय और निःश्रेयस् कारक जो भी शाश्वत सिद्धान्त विश्व के विभिन्न धर्मो में उपलब्ध है उस अंश में वे धर्म की सार्वभौम है किन्तु सर्वाश में तो वैदिक धर्म ही सार्वभौम है। यदि विश्व के धर्मो के सार्वजनीन और सार्वभौम सिद्धान्तों का ही अनुसरण किया जाये और उनके साम्प्रदायिक तत्वों को निकाल दिया जाऐ तो विश्व में एक सार्वभौम धर्म की स्थापना हो सकती है और सम्पूर्ण मानव जाति सौयनस्य और शान्तिपूर्वक रहते हुए ''वसुद्यैव कुटुम्बकम्'' की उदार भावना के स्वप्र को साकार कर सकती है। सार्वभौम धर्म होने के कारण ही वैदिक धर्म धर्मप्रचार में बल प्रयोग का समर्थन नहीं करता वेद तो कहता है कि ''तुम्हारा हृदय एक हो, मन एक हो, तुम किसी से द्वेष न करो एक दूसरे को प्यार से चाहो जैसे गौ अपने नये पैदा हुए बछड़े को प्यार से चाहती है जैसे देव लोग परस्पर विरुद्ध आचरण नहीं करते और आपस में नहीं लड़ते वही ज्ञान में तुम्हारे घर में भी देता हूँ।[1]

वैदिक धर्मानुयायी सदैव यही प्रार्थना करता है कि ''हे भगवान। मुझे समर्थ बनाइये सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखे''।[2] इसी भावना से अनुप्राणित होकर वैदिक धर्मानुयायी आर्यसमाजी संसार के सभी मनुष्यों को अपना मित्र समझता है। अन्य धर्मानुयायीयों की आलोचना उन्हे सन्मार्ग पर जाने के लिए करता है–द्वेष से नहीं। सन्मित्र का यही कर्त्तव्य है किन्तु इसमें बल प्रयोग की अनुमति आर्य समाज की दृढ़ धारणा है कि पृथिवी के ऊपर रहने वाले बहुभाषी और विभिन्न धर्मावलम्बी लोगों को आपस में इस प्रकार प्रेम से रहना चाहिए जैसा एक घर

में रहने वाले लोग रहते है।[3]

एक परिवार के लोग कभी–कभी आपस में लड़ पड़ते है उनमें मनमुटाव और विचार–भेद भी हो जाता है, पर इससे वे एक–दूसरे के रक्त के प्यासे नहीं हो जाते। शीघ्र ही वे पुनः पूर्ववत् प्यार और मुहब्बत करने लगते है वैदिक धर्म :

''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के सिद्धान्त का पालन करता और कराता है। अतः सार्वभौम धर्म कहलाता है।

संदर्भ :–

1. सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
   अनयो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाहन्या।। अथर्व .3.30.1
   येन देवा न विभन्ति नो च विद्विषते मिथः।
   तत्कृऽमो ब्रह्म वो गृहे संज्ञान पुरुषेभ्यः। अथर्व 3.30.4
2. यजु. 36.18
3. जनं विभ्रती बहुधा विवाससं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। अथर्व 12.1.45

मो.नं. 82090–28617

RAINBOW09052006@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 90-93

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मानवीय विकास में वैदिक शिक्षा

डॉ. जोगेन्द्र कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, बी. एल.जे.एस. महाविद्यालय, तोशाम (भिवानी)

मानव जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है। शिक्षा के बिना मनुष्य पशु के तुल्य है। शिक्षा ही मानव को महामानव बनाती है। बशर्ते वह शिक्षा गुणवत्ता परक हो अन्यथा मानव को दानव बनाने से कोई नहीं रोक सकता। अतः शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास के लिए अमोघ साधन है। आज शिक्षा का अर्थ मात्र साक्षरता अथवा जीविकोपार्जन रह गया है। आज व्यक्ति शिक्षित होकर डॉक्टर, इंजीनियर, वकील अध्यापक, राजनेता या व्यापारी तो बन सकता है, किन्तु वह शान्ति एवं मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से यदि मानव कल्याण हो जाता तो समाज में व्याप्त अशान्ति, भ्रष्टाचार, चोरी, डकैती, हिंसा, आतंक आदि का प्रसार न होता। इसके विपरीत मानव अभी भी इससे मुक्त होना चाहता है। लेकिन इसके लिए आवश्यक है गुणवत्तापरक शिक्षा। जो मानव का कल्याण कर सके। ऐसी शिक्षा वेदों में निहित है। वेदों में निहित मूल्यों को शिक्षा में समावेश की आवश्यकता है जिन पर समग्र संस्कृति आधारित है। वैदिक संस्कृति मानवमात्र के कल्याण को लक्ष्य कर इसके समाधान को कहती है 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वह है जो सब प्रकार के दुःखों से मुक्ति दिलाए।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भौतिकता का विकास तो चरम सीमा पर पहुंच रहा है, शिक्षा में नए–नए कीर्तिमान स्थापित हो रहे हैं। परन्तु मानव में मानवता का निरंतर पतन होता जा रहा है। किसी वैज्ञानिक ने कहा था – 'आज मनुष्य आकाश में उड़ना सीख गया है, समुद्र की सतह पर चल सकता है, वह पाताल की गहराइयों में पहुंच गया है, मगर उसे जमीन पर चलना नहीं आता है।' यह कथन वर्तमान स्थिति पर सटीक बैठता है। आज की शिक्षा धनोपार्जन पर सिमट कर रह गई है। आज भौतिक रूप से मानव इतना विकसित होने के उपरान्त भी आत्मरक्षा, अशांति, निराशा, कुंठा, बेईमानी, भ्रष्टाचार आदि का शिकार बन रहा है – ऐसा क्यों? शायद इसका कारण गुणवत्तापरक शिक्षा का अभाव है। परन्तु वैदिक शिक्षा भौतिकता के साथ–साथ आध्यात्मिक मार्ग भी प्रशस्त करती है। जहाँ वयं स्याम पतयो रयीणाम्[1] का सन्देश देती है वहीं 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा[2]' कहकर त्यागवाद का आदेश देती है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को केवल त्यागवादी न बनाकर बालक का सर्वांगीण विकास करना ही शिक्षा का मुख्य ध्येय है। शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक उन्नति करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य बताता हुआ उपनिषद्कार कहता है कि–

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्य करवावहै।
तेजस्वीनावधितमस्तु मा विद्विषावहै[3]।।

अर्थात् शिक्षा छात्रों की आत्मरक्षा करने में समर्थ हो, उनकी आजीविका की समस्या का समाधान कर सके, छात्रों को तेजस्वी और आत्म गौरवशाली बना सके, शिक्षक था शिष्य दोनों में द्वेष की भावना के स्थान पर पारस्परिक सहयोग की भावना से ओत–प्रोत होनी चाहिए। परन्तु आजकल की शिक्षा प्रणाली में विद्यमान प्रतियोगिता केवल द्वेष भावना को प्रोत्साहित करती है।

वैदिक शिक्षा न केवल भौतिक चिन्तन अपितु आत्मचिंतन का ध्येय भी निर्धारित करती है। गीता कहती है – शिक्षा अध्यात्मपरक होनी चाहिए[4]।

यजुर्वेद का कथन है 'आधत्त पितरो गर्भ कुमारं पुष्कर सृजम्। यथेह पुरुषोसत्[5] अर्थात् जब माता–पिता अपने बालक को गुरु के पास विद्याध्ययन हेतु ले जाकर कहते थे– हे गुरुवर ! कमल फूलों की माला पहने हुए आप इस अबोध बालक को अपने गर्भ में धारण कीजिए जिससे यह मानव बन जाए। गुरु शिष्य दोनों के कर्तव्य बताता हुआ अथर्ववेद कहता है कि 'पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्[6]' अर्थात् गुरु उत्तम से उत्तम विद्या प्रदान करने वाला हो, विद्या पढ़ाने का तरीका भी उत्तम श्रेणी का हो, वह छात्रों को शुभ संकल्प के साथ पढ़ाए। आनन्द के साथ खेल–खेल में बच्चों को विषयों का ज्ञान कराए। बच्चों के प्रश्नों का आदरपूर्वक व प्रेमपूर्वक समाधान करे।

जिस प्रकार रोगी के लिए औषधि की आवश्यकता होती है। औषधि से रोग दूर हो जाता है, उसी प्रकार अध्यापक उत्तम शिक्षा से छात्रों के अज्ञान रूपी रोग का विनाश करता है। इसलिए अथर्ववेद में आचार्य को औषधि कहा गया है[7]। गुरु सब प्रकार से छात्र की रक्षा करता है तथा उसके दुर्गुणों को कुल्हाडे के समान काट देता है 8। अध्यापक को चाहिए कि छात्र के दोषों को दूर करने के लिए यथासमय डांटें। लालन की अपेक्षा ताड़न की प्रक्रिया को श्रेष्ठ बताता हुआ शास्त्रकार कहता है कि 'लालनाश्रयिणो दोषाः ताडनाश्रयिणो गुणाः' लालन से दोष तथा ताड़न से गुण आते हैं। अतः जब भी छात्र पर दोष हावी होने लगे तो अध्यापक को उसे डांटने का संकोच नहीं करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि तप में किसी प्रकार के सुख का स्थान नहीं है तथा अध्ययन से बढ़कर कोई तप या श्रम नहीं है। अध्यापक एक शिल्पी के समान है। जब भी कोई शिल्पकार किसी वस्तु का निर्माण करता है तो उसे उचित एवं अनुकूल आकार प्रदान करने के लिए उसे ठोकता पीटता है। उसी प्रकार बालक के सर्वांगीण विकास के लिए उसे डांटता पीटता है। अध्यापक का आचरण इतना पवित्र होना चाहिए कि छात्र उसे अपना आदर्श मानकर उसका अनुकरण करने में प्रवृत्त हो। शिष्य भी इस प्रकार के होने चाहिएँ कि वे उस ज्ञान को प्राप्त करने की जिज्ञासा रखते हों। हम सदैव अपने ज्ञान में वृद्धि करते रहें और कभी ज्ञान की उन्नति में बाधा न डालें। ज्ञान का मिथ्या प्रचार न करें। जो कुछ हम अपने गुरु से सुनें उसे जीवन में धारण करें तथा उसे कभी न भूलें[9]। परन्तु आधुनिक छात्र अपने वृद्धजनों, माता–पिता एवं गुरुजनों के प्रति आदर सम्मान को विस्मृत कर चुका है। गुरु की बात को न सुनना, विद्यालयों, महाविद्यालयों में मोबाइल फोन रखना एक फैशन समझने लगा है। अतः मनुस्मृतिकार शिष्य को समझाता हुआ कहता है कि वह अपने गुरु को पूर्णरूपेण आदर सत्कार करे[10]। अपने गुरुजनों और बड़े–बूढ़ों के सम्मान से ही छात्र का सर्वांगीण विकास सम्भव है। मनु का कथन है –

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्[11]।।

अध्यापक को चाहिए कि जिस प्रकार प्रत्यञ्चा से धनुष को तान दिया जाता है, उसी प्रकार अपनी वाणी से विषय वस्तु को छात्रों की बुद्धि में तान दें अर्थात् ऐसे समझाए कि वह कभी भी छात्रों को विस्मृत न हो[12]। 'विद्या विनयं ददाति' अर्थात् जहाँ विद्या नम्रता प्रदान करती है, मन को पवित्र करती है। ज्ञान चक्षुओं को खोलती है वहीं आज इसके विपरीत हो रहा है। वैदिक शिक्षा गुरुकुल पद्धति पर निर्भर करती थी। माता–पिता बालक को गुरु के पास शिक्षा पूर्ण होने तक छोड़ देते थे तथा उन्हें एकान्त स्थान पर प्रकृति के मनोहर वातावरण में उनकी बुद्धि को शुद्ध विचारों से संस्कारित करता था। 'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धियो विप्रो अजायत'[13]। परन्तु आज इस भौतिकता की चकाचौंध में मनुष्य इतना अन्धा हो गया है कि उसे धन के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता। वैभवपूर्ण जीवन जीने के लिए वह छल–कपट, रिश्वत एवं झूठ का आश्रय ले रहा है। आज विद्या का व्यापारीकरण हो गया है। पैसे के बल पर अल्प मानसिक योग्यता वाले छात्रों को लिखित परीक्षा में पास करवाकर विद्यालय, महाविद्यालयों में प्रवेश देना या नौकरी पाना आसान हो गया है जबकि उच्च योग्यता वाले को स्थान नहीं मिल पाता। आज शुद्ध विचारों से संस्कारित शिक्षा का स्थान जातिवाद, अमीरी–गरीबी, घृणा, द्वेष एवं परिवारवाद की भावना है। ऊँच–नीच के भेदभाव को छोड़कर गुरु–शिष्य के तादात्म्य सम्बन्ध को प्रकट करता हुआ अथर्ववेद कहता है–

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्ति उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुभिसंयन्ति देवाः[14]।।

अर्थात् बालक को शिक्षा प्रदान करने के लिए आचार्य उसे अपने गर्भ में सुरक्षित रखता है। जैसे माता अपने बच्चे को गर्भ में रखती है। गुरु–शिष्य के सम्बन्ध की उपमा माता तथा गर्भ के साथ की गई है। ऐसी सुन्दर उपमा संसार के किसी साहित्य में उपलब्ध नहीं होगी। इस मन्त्र में 'गर्भ' शब्द से तात्पर्य है कि शिक्षक अपने उत्तम गुणों का बालक को आकर्षित करने वाला हो। 'उदर' शब्द से तात्पर्य ऐसे सुरक्षित स्थान या प्रबन्ध से है जिससे बालक सांसारिक बुराई से बचकर सर्वांगीण विकास प्राप्त कर सके। जिस प्रकार बालक माता के उदर में विकसित होता है तथा बाहर के कष्टों से बचा रहता है। इसलिए बालक अपने विकास में निरन्तर तत्पर रहे तथा बाह्य कुचेष्टताओं दुर्व्यसनों से बचता रहे। ऐसे बालक को देखने के लिए देवता आते हैं अर्थात् देवगण भी उसका आदर सत्कार करते हैं। अतः आज के शिक्षण संस्थानों में ऐसी शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज के इस भौतिकता प्रधान युग में यदि मानव सही रूप में शिक्षित होना चाहता है, जीवन का समग्र विकास चाहता है तो उसमें मानव कल्याण की भावना, नैतिक मूल्य, कर्तव्यपरायणता, सत्यमार्गानुगामी की कल्याणपरक शिक्षा का अनुसरण करना होगा। वर्तमान शिक्षा पद्धति में 'असतो मा सद्गमय', 'तमसो मा ज्योतिर्गमय', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे प्राचीन आदर्शभूत मूल्यों की ओर ध्यान देना होगा तथा यह स्मरण रखना होगा कि जो प्राचीन है वही श्रेयस्कर नहीं है और जो अर्वाचीन है वही निर्दोष नहीं है। प्राचीन और अर्वाचीन दोनों के समन्वित रूप से ही राष्ट्र का भाग्योदय हो सकता है तथा मानव का सर्वांगीण विकास हो सकता है।

सन्दर्भ :-

1. यजुर्वेद 10.20
2. ईशोपनिषद् 1.1
3. तैत्तिरीयोपनिषद्
4. अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। भगवद्गीता 10.32
5. यजुर्वेद 2.33
6. अथर्ववेद 1.1.2
7. अथर्ववेद 11.5.14
8. यजुर्वेद 6.15
9. संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि। अथर्ववेद 1.1.4
10. लौकिकं वैदिकं वोपि तथोध्यात्मिकमेव च।
    आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमाभिवादयेत्।। मनुस्मृति 2.117
11. मनुस्मृति 2.121
12. इहैवाभि वितनूभे आर्त्नी इव ज्यया।
    वाचस्पतिर्नियच्छतु मय्येवास्तु मयिश्रुतम्।। अथर्ववेद 1.1.3
13. ऋग्वेद 5.8.14
14. अथर्ववेद 11.5.3

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 94-98

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ममता कालिया का व्यक्तित्व

डॉ. संजय कुमार यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय श्री धूलेश्वर आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, मनोहरपुर, जयपुर

कालिया एक प्रमुख भारतीय लेखिका हैं। वे कहानी नाटक, उपन्यास, निबंध, कविता, पत्रकारिता अर्थात् साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य करती हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने न केवल महिलाओ से जुड़े सवालों को उठाया है, अपितु उनके उत्तर देने कि भी कोशिश की है। उनके पात्र जीवन कि जटिलताओं के बीच जीते हुए अच्छे सुलूक कि मांग करते हैं, जहाँ आक्रोश व भावुकता कि जगह सत्य और संतुलन का आग्रह हो। उन्होंने रोजमर्रा के जीवन में संघर्षरत स्त्री के व्यक्तित्व को उभारा है, जो किसी भी मायने में पुरुष के संघर्ष से कम नहीं है।

किसी भी लेखक के कृतित्व का उसके व्यक्तित्व से गहरा सम्बन्ध होता है। कृतित्व को गहराई से समझने के लिए व्यक्तित्व से अवगत होना आवश्यक है। डॉ. कामिनी तिवारी इस संदर्भ में कहती हैं –"किसी भी साहित्यकार के कृतित्व में उसका व्यक्तित्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रतिबिम्बित होता ही है। व्यक्तित्व में व्यक्ति कि सवेंदना उसके स्वभावगत संस्कार, परिवेशगत अनुभव, किसी प्रसंग से उसके मन व मस्तिष्क पर होने वाली क्रिया प्रतिक्रियाऐं आदि समाहित रहती हैं। साहित्यकार के कृतित्व का सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन हेतु उसके व्यक्तित्व से अवगत होना समीचीन होता हैं।"[1]

किसी भी साहित्यकार के साहित्य का विवेचन–विश्लेषण करने से पूर्व उसके जीवन को जानना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है क्योंकि पारिवारिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत परिस्थितियों का उसके व्यक्तित्व एवं जीवन पर विशेष प्रभाव पडता है। इन सबको अनुभूत करके वह साहित्य सृजन की ओर अग्रसर होता है।

1. जन्म, बचपन एवं शिक्षा :–

ममता कालिया का जन्म 2 नवम्बर, 1940 को वृंदावन (उत्तर प्रदेश) में हुआ। इनके पिता का नाम विद्या भूषण अग्रवाल तथा माता का नाम इन्दुमति था। ममता जी के दादा मथुरा में आढ़त का व्यापार किया करते थे। जो अग्रवाल परिवार का पुश्तैनी व्यवसाय था। वे चाहते थे कि उनका बेटा भी यही काम करें। लेकिन इनके पिताजी उस समय एम.ए. पास कर चुके थे। उन्होंने घर से बगावत कर नौकरी करनी शुरु कर दी। तत्पश्चात उन्होंने शम्भूदयाल कॉलेज, गाजियाबाद में प्रिंसिपल के पद पर कार्य किया। ममता जी की माँ पुरानी रूढ़ियों परंपराओं को मानने वाली थी वे बहुत भोली और शालीन महिला थी। पिता श्री विद्याभूषण अग्रवाल तथा माता इंदुमती के लाड़ प्यार में इनका पालन पोषण हुआ। एक संपन्न परिवार में जन्म के कारण बचपन व जवानी अत्यंत सुखपूर्वक बीता। डॉ फैमिदा बीजपुरे कहती हैं– "एक संपन्न परिवार में जन्म लेने के कारण ममता जी

का बचपन सुखपूर्ण रहा। उनकी बड़ी बहन व ममता दोनों को पिता ने लाड प्यार से पाला।"[2] इनके चाचा भारत–भूषण अग्रवाल अपने समय के प्रख्यात साहित्यकार थे। ममता कालिया की एक बड़ी बहन है। जिसका नाम है प्रतिभा। बचपन से ही वह ललित कालाओं में निपुण रही। पिता श्री विधाभूषण अग्रवाल प्रसिद्ध विद्वान तथा साहित्य प्रेमी थे। इनके पिताजी की साहित्य के प्रति गहरी रूचि एवं लेखन कार्य करते रहने के कारण; इनके घर में हमेशा साहित्यिक गोष्ठियाँ चलती थी। विष्णु प्रभाकर, जैनेन्द्र, अज्ञेय मुक्तिबोध आदि साहित्यकार भी इनके घर आते थे। पिता पहले अध्यापन तथा बाद में आकाशवाणी में कार्यरत रहे। वे हिन्दी व अंग्रेजी साहित्य के विद्वान थे और अपनी बेबाक बयानी के लिए जाने जाते थे। ममता पर पिता के व्यक्तित्व कि स्पष्ट छाप दिखाई देती है।

इनके स्कूली जीवन का आरम्भ गाजियाबाद से शुरु हुआ। इनकी पूरी स्कूली पढ़ाई कॉन्वेंट मे अंग्रेजी माध्यम से हुई। बाद में इनके पिता जी गाजियाबाद की प्रिंसिपली छोड़कर आकाशवाणी दिल्ली आ गये थे। ममता जी की शिक्षा गाजियाबाद, मुंबई, पूना इंदौर, दिल्ली आदि महानगरों में सम्पन हुई। पिता श्री विद्याभूषण अग्रवाल आकाशवाणी में कार्यरत होने के कारण हर दो सालों में तबादला हो जाता था। अतः ममता जी को हर साल में स्कूल भी बदलना पड़ता था। इस तबादले से उन्होंने जीवन में सामंजस्य सिखा। इसका जिक्र फैमिदा बीजापुरे करते हुए कहती हैं– "उनकी पूरी स्कूली पढाई कान्वेंट में अंग्रेजी माध्यम से हुई उनकी पिता का हर दो साल बाद तबादला हो जाता था और स्कूल बदल लेना पड़ता था शायद इसी वजह से उन्होंने एडजस्ट करना सिखा।"[3] पुणे से इन्होंने एस. एस. सी. की परीक्षा दी। सन् 1961 में इंदौर के विक्रम विश्वविद्यालय से उच्च श्रेणी से बी.ए. कि परीक्षा उर्त्तीण की। उसके पश्चात् दिल्ली विश्वविद्यालय से 1963 ई. में अंग्रेजी में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। ममता जी को एम.ए. की उपाधि प्राप्त करते ही दौलतराम कॉलेज, दिल्ली में प्राध्यापक की नौकरी मिल गई। तत्पश्चात् श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकुरसी महिला विश्वविद्यालय (एस.एन.डी.टी.) मुंबई तथा सन् 1973 से महिला सेवासदन डिग्री. कॉलेज इलाहाबाद में प्रधानाचार्य की हैसियत से नौकरी की। अब नारी चिंतन के प्रति अपने लेखन कार्य के दौरान स्वतंत्र जीवन बीता रही हैं। सन् 2003 से भारतीय भाषा परिषद की निर्देशक का कार्यभार संभाला। आजकल वे दिल्ली में रहकर अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन कर रही हैं।

2. परिवारिक परिवेश :–

बचपन से ही ममता कालिया साहित्यिक वातावरण में पली बढ़ी। अतः साहित्य के प्रति रूचि होना स्वाभाविक ही था। प्रमुख साहित्यकारों से परिचय तथा बहस करने का अवसर प्राप्त था। ममता जी का विवाह 12 दिसम्बर 1964 को दिल्ली के समानधर्मी रचनाकार रविन्द्र कालिया के साथ संपन्न हुआ। दोनों का परिचय एक साहित्यक गोष्ठी में हुआ पिता के घर के बाद उन्हें पति के घर में भी साहित्यक वातावरण मिला। अतः उनका लेखन कर्म और अधिक चमक उठा। रविन्द्र से उनका पारिवारिक जीवन अत्यंत सुखद एवं संघर्ष रहित था। रचनाकार रवीन्द्र कालिया ने चंडीगढ़ से हिंन्दी में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की है। वे शादी के वक्त टाइम्स ऑफ इण्डिया में काम करते थे। इनकी शादी काफी शानदार ढंग से हुई। जैनेन्द्र कुमार, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, प्रभाकर माचवे और न जाने कितने प्रसिद्ध लेखक इसमें शामिल हुए। यह विवाह महज दो कलाकारों या लेखकों का सम्बन्ध नहीं, दो संस्कृतियों का भी संक्रान्ति बिन्दु था। रवीन्द्र कालिया स्वयं कहते

है "हम दोनों एक–दूसरे के विलोम है जो मुझे पसंद है ममता को सख्त नापसंद। जो रंग ममता को पसंद है मुझे नापसंद। मुझे अगर निराला की कविताएं पसंद है तो उसे माधुरी दीक्षित, मुझे शशि पसंद है तो उसे रवि।"[4] इन दोनो के व्यक्तित्व में काफी अंतर था। रवीन्द्र सुन्दर थे और ममता जी हड्डियों का ढांचा थी। सभी सोच रहे थे कि यह शादी ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगी परन्तु उन दोनों का आपस में विश्वास था।

लेखिका के स्वयं के शब्दों में – "दोनों के लेखक होने से टकराव या विरोध एक आसान वारदात होती इस लिहाज से हम हिंदी जगत के सबसे खुशकिस्मत दम्पत्ति हैं, रवि मेरे लेखन को लेकर अक्सर लतीफे गढ़ते हैं। जब मेरे उपन्यास पर पाठकों के पत्र आते है तो उनका जिक्र गिनती में नहीं, ग्राम में करते है यह कहना मुश्किल है कि टकराव नहीं होता, पर वह लेखकीय स्पर्धा के कारण नहीं, किसी निहायत मामूली सी बात को लेकर होता है।"[5] शादी के बाद आरंभिक कुछ वर्ष उन्हें परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा। लेकिन आज वे अपने पारिवारिक जीवन से काफी संतुष्ट हैं, उनके दो बेटे है – अनिरूद्ध और प्रबुद्ध। आजकल अनिरूद्ध बम्बई में एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी में नेशनल सेल्ज मैनेजर है। छोटा बेटा प्रबुद्ध इलाहाबाद में सॉफ्टवेयर तकनीकि विशेषज्ञ है।

3. हिन्दी साहित्य में प्रवेश :-

ममता कालिया जीवन संघर्षों को अपने साहित्य का प्रेरणा स्त्रोत मानती हैं वे अपने परिवेश के आसपास ही कथानक को बुन लेती है। सन् 1960 ई. सन् में पढ़ते समय ही कविताएँ लिखना प्रारंभ कर दिया। उनकी पहली कविता 'जागरण' पत्र के रविवारीय अंक में 'प्रयोगवादी प्रियतम' छपी थी। इनकी प्रारंभिक रचनाओं में आक्रोश पाया जाता है। इनकी पहली कहानी 1963 में 'ऊँचे–ऊँचे कंगूरे' ने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' पत्रिका हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उसके बाद उनकी रचनाएँ सुप्रभात, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान सारिका आदि पत्रिकाओं में भी छपती रही। अपनी रचनाओं के प्रथम आलोचक अपने पिता को मानती हैं– "मेरी सारी रचनाओं के वे प्रखर आलोचक भी रहे। मेरे उच्चारण को सुधारने में मेरे पिताजी ने काफी सहयोग किया। गलत उच्चारण वे बर्दास्त नहीं कर पाते थे।"[6] इनके पिताजी कि साहित्य के प्रति गहरी रूचि थी और लेखन कार्य करते थे इनके चाचा भारतभूषण अग्रवाल इनके प्रेरणा स्त्रोत रहे। इस प्रकार धीरे–धीरे कविताएँ लिखने लगी और बाद में कहानी उपन्यास व नाटक लिखे। ममता कालिया कहती हैं–" 1965 की जनवरी में रविन्द्र कालिया से मिलना मेरे रचना धर्म के लिए एक ऐसा द्वार बना, जिसने मेरे सोच विचार और जीवन को गति दी, पहली ही मुलाकात में उन्होंने मेरी आँखों पर से पापा का चश्मा उतार कर अपनी नजर से जीवन को देखने के लिए उकसाया। वे न मिलते तो मैं ममता अग्रवाल ही रही होती और दृष्टि के धुन्धजाल में ही समय बीता देती। रवि के दुस्साहस और दबंगई ने मुझे एक नयी रचनात्मक उर्जा से भर दिया।"[7]

ममता कालिया अपने साहित्य के दो प्रेरणा स्थान मानती है– मथुरा व मुंबई। वो कहती हैं–"मथुरा मेरी कहानियों में भी धड़कती रहती है– कभी आवेश बनकर, कभी परिवेश बनकर मथुरा की यादें दराज में मुड़े तुड़े कागजो की तरह हैं जिनमें तारतम्य नहीं बैठा पाई हूँ।"[8] लेखिका का मानना है कि वास्तव में जीवन कहानी, नाटक, उपन्यास से भी अधिक नाटकीय रूप में होता है और उसी जीवन से प्रेरणा लेकर ही साहित्यकार द्वारा कोई कृति या लेखन कार्य किया जाता है। साहित्यकार द्वारा कोई कृति या लेखन कार्य किया जाता है साहित्यकार का स्वयं का व्यक्तित्व उसके जीवन की घटनाओं, अनुभवों, 'प्रेरणा स्त्रोतों' की झलक साहित्य में

दिखाई देती है।

ज्योति चावला ममता जी से बातचीत के दौरान लिखती हैं– "ममता कालिया बेहद हँस मुख है, लेखन में जितनी गंभीर, व्यवहार में उतनी सरल और जीवंत है। साठोत्तरी कहानी की प्रमुख हस्ताक्षर ममता कालिया का लेखन कार्य आज भी जारी है। वे कहती हैं लेखन मेरा धर्म है।"[9]

ममता कालिया अपने जीवन में साहित्य को बहुत महत्वपूर्ण मानती हैं और उनका मानना है कि जिनके जीवन में साहित्य नहीं होता वे लोग अभागे होते हैं। इसके अलावा अपने लेखन कार्य को उन्होंने सदैव अपने साथ पाया। इस सम्बन्ध में वो कहती हैं– "हर हाल में लिखा, हर मूड में लिखा अपना गुस्सा अपना प्यार अपनी शिकायतें अपनी परेशानियां तिरोहित करने के लिए लेखन का हर समय मददगार पाया। जो कुछ रूबरू कहने में सात जन्म लेने पड़ते, वह सब रचनाओ में किसी न किसी मुहँ में डाल दिया। मेरा यकीन है कि लेखन से अच्छा जीवन साथी मुझे क्या किसी को भी नहीं मिल सकता।"[10]

अतः ममता कालिया ने अपने जीवन कि कठिन से कठिन परिस्थितयों में भी संतुलन को बनाए रखने के लिए लेखन कार्य अपनाया। ममता कालिया कवि बनना चाहती थी और जब एक बार इनके चाचा भारत भूषण अग्रवाल भोपाल से इंदौर आए इन्हें इधर उधर दौड़ भाग करते हुए व्यस्त पाया तो डांट लगाकर कहा– "तुम कवि बनना चाहती हो तो यह दसों दिशाओ में क्या हाथ पैर फेंकती रहती हो, चुपचाप अपने कमरे में बैठ किताबें पढो, मन में कुछ आये तो लिखो और फाड़ो लिखो और फाड़ो। गोष्ठियों में अभी से जाने की क्या जल्दी मची है। कहीं रचना भेजनी है तो संपादक को चिट्ठी लिखने कि जरुरत नहीं बस रचना पर लिखो 'प्रकाशनार्थ' बीस पैसे का टिकट लगाओ और बुक पोस्ट कर दो।"[11]

एक अध्यापिका होने के कारण जीवन भर ही लिखना पढ़ना, पढ़ाना चलता रहा। इनकी प्रारम्भ कि कविताओं के विषय में रविन्द्र कालिया लिखते हैं–"मेरे संपर्क में आने से पूर्व ममता कहानियां कम कविताऐं ज्यादा लिखती थी, 'बोल्ड'' किस्म कि कविताऐं लिखकर उसने तमाम लेखकों का ध्यान आकर्षित कर लिया था। उनकी प्रारम्भ की एक कविता तो डॉ रघुवंश अथवा लक्ष्मीकांत वर्मा ने क. ख. ग. के मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित की थी और एक अर्से तक उसकी चर्चा रही थी–

"प्यार शब्द घिसते घिसते चपटा हो गया है
अब
हमारी समझ में सहवास आता है।"[12]

जीवन कि विषम परिस्थितियों से उबरने के लिए भी ममता लेखन कार्य की ओट लेती हैं। लेखन के पश्चात् वो स्वयं को संतुलित महसूस करती हैं। रविन्द्र कालिया इस विषय में कहते हैं–"ममता के लिए लेखन सबसे बड़ा प्यारा पलायन भी है। वह किसी बात से परेशान होगी तो लिखने बैठ जाएगी। उसके बाद एकदम संतुलित हो जाएगी।"[13]

सारांश में कह सकते हैं ममता कालिया भी एक सामान्य सी महिला कि तरह रोजमर्रा के जीवन में संघर्षरत एक महिला है, जो साहित्यकार भी है। जिसे एक गृहिणी कि तरह परिवारिक स्तर पर संघर्ष के साथ–साथ, कॉलेज की प्राचार्या होने के स्तर पर, साहित्यकार होने के साथ अन्य कई उत्तरदायित्वों को निभाते हुए निरंतर लेखन कार्य कर रही हैं। नारी मनोविज्ञान का चित्रण उनके साहित्य में प्रमुखता से हुआ है। प्रारंभ

में वो नारी जीवन से सम्बंधित बोल्ड कविताएँ लिखने के बाद ये कथा साहित्य कि और मुड़ गई। इनको उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का महादेवी वर्मा स्मृति सम्मान, यशपाल स्मृति सम्मान, कमलेश्वर स्मृति सम्मान, अभिनव भारती कलकत्ता का रचना सम्मान, सावित्री बाई फुले सम्मान, हिन्दी साहित्य परिषद् सम्मान आदि पुरुस्कारों से सम्मानित यह रचनाकार अभी मौलिक रचना करने में लगी हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कामिनी तिवारी, प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श, पृ. – 14
2. डॉ. फैमिदा बिजापुरे, ममता कालिया व्यक्तित्व पृ. – 10
3. वही, पृ. – 10
4. रविन्द्र कालिया, प्रीजन के सहयात्री पृ. – 57
5. अनिता गुलाटी, रचना धर्मिता से प्रतिबद्ध ममता कालिया, दैनिक प्रद्युम्न, 3 जनवरी 1981 पृ. – 3
6. ममता कालिया, कितने शहरों में कितनी बार, पृ. – 73
7. सं. हरिनारायण, कथादेश, जनवरी 2001, पृ – 10
8. सं. अखिलेश, तद्भव, अगस्त (अंक 11), पृ. – 189
9. सं. देश निर्मोही, हरिगंधा, अक्टूबर 2008, पृ. – 49
10. ममता कालिया, दस प्रतिनिधि कहानियां, पृ. – 8
11. ममता कालिया, कितने शहरों में कितनी बार, पृ. – 75
12. रविन्द्र कालिया, सर्जन के सहयात्री, पृ. – 39
13. वही।

डॉ. संजय कुमार यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय श्री धूलेश्वर आचार्य संस्कृत महाविद्यालय मनोहरपुर जयपुर

डॉ. संजय कुमार यादव एसोसिएट प्रोफेसर

राजकीय धूलेश्वर आचार्य संस्कृत महाविद्यालय मनोहरपुर

तहसील शाहपुरा, जिला जयपुर, राजस्थान, पिन कोड 303104

मोबाईल नम्बर– 637753968, 9460580927

EMAIL ID sk19yadav70@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 99-101

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्री भर्तृहरि विरचित नीतिशतकम् में वर्णित मूर्ख पद्धति की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सार्थकता

डॉ० केसर कमल शर्मा

(एम०ए० संस्कृत, पी०एच०डी०, एम०ए० हिन्दी, साहित्याचार्या)

असिस्टेंट प्रोफेसर जी०एस०पी०जी० कॉलेज चान्दपुर, जिला बिजनौर उ०प्र०।

हमारा संस्कृत वाड्.मय अनेक विद्वान रूपी मोतियों से भरा है जिन्होनें अपनी लेखनी से इस साहित्य को समृद्ध करने में अपनी महती भूमिका निभाई है। कालिदास, भारवि माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों ने जहाँ गीतिकाव्य, नाटक, महाकाव्य लिखकर जहाँ इस भाषा की श्रीवृद्धि की वहीं महात्मा विदुर, कौटिल्य, भर्तृहरि जैसे विद्वानों ने नीति सम्बन्धी ग्रन्थ लिखकर इस भाषा में चार चाँद लगा दिए। तथा आज भी उनके ग्रन्थ समाज का मार्गदर्शन करने में सक्षम है। महाराज भर्तृहरि जिन्हें योगिराज भर्तृहरि भी कहा गया है, इन्होंने अपनी रचनाओं में अपने स्थिति काल एवं जीवन चरित्र के विषय में कुछ नहीं लिखा है। इन्होनें तीन ग्रन्थों की रचना की श्रृंगार शतक, नीति शतक और वैराग्य शतक। नीतिशतक मुक्तक शैली में लिखी गई उनकी रचना है। इसमें वर्णित नीति का सम्बन्ध राजनीति से न होकर लोक व्यवहार से है। तथा मनुष्य के गम्भीर सांसारिक अनुभव पर आधारित है। इन सांसारिक अनुभवों को कवि ने अपने बुद्धि विवेक से दस पद्धतियों जैसे मूर्खपद्धति, विद्वत्पद्धतिः, मानशौर्य पद्धतिः, अर्थपद्धतिः, परोपकारपद्धतिः, सन्मित्रपद्धतिः, धैर्यपद्धतिः, दैवपद्धतिः, कर्मपद्धतिः, भाग्यपद्धति में विभाजित कर जहाँ अपनी विद्वता का परिचय दिया है। वहीं मानव जीवन में इनकी उपयोगिता भी प्रतिपादित की है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो कवि द्वारा वर्णित मूर्ख पद्धति पूर्णतः सार्थक है। जैसे :–

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूर्शिताः।
अबोधोपहताऽचान्ये जीर्णमड्. गे सुभाषितम्।।[2]/पृष्ठ 12

इस मुक्तक में कवि महता है कि विज्ञजन तो असूया (ईष्या) से आक्रान्त हैं, राजा आदि ऐश्वर्यवान् पुरूष गर्व से दुर्विनीत हैं और दूसरे लोग अज्ञानी हैं। अतः सुभाषित भीतर ही छिपा हुआ हैं। आज भी जो विद्वान है वे आपस में ईर्ष्यावश एक दूसरे के दोष ढूंढने में लगे रहते हैं अर्थात् एक दूसरे के प्रिय वचनों को भी सुनना नहीं चाहते कहने का तात्पर्य यह है कि वे विद्वान् तो है पर सहृदय नहीं हो इसीलिए वे सुभाषित भी सुनना नहीं चाहते। ठीक इसी तरह जो आज धनवान हैं वे अहंकार वश इतने दुर्विनीत हो गये है कि उन्हें किसी के प्रिय निश्छल वचन भी अच्छे नहीं लगते। और जो अल्पज्ञ हैं वे वैसे ही अपनी मूढ़ता के कारण सुभाषित नहीं सुनना चाहते यही कारण है कि वर्तमान समय में भी जो विद्वान व्यक्ति हैं सुभाषित उनके हृदय में ही छिपा हुआ रह जाता है वह बाहर नहीं निकल पाता। कहने का तात्पर्य है कि वे अच्छी बातों को भी कहने में झिझक महसूस

करते हैं।

इसी तरह कवि द्वारा वर्णित मूर्खजन के चित्त की दुराध्यता यथा –

प्रसह्य मणिमुद्धरेन् मकरवक्त्रदष्ट्रान्तरात्,
समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम्।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचितमाराधयेत्।।[4]/ पृष्ठ 14

अर्थात् यदि कोई मनुष्य चाहे तो मगर के मुख की दाढ़ों के भीतर से बलात् रत्न को भी निकाल ले, चंचल लहरों के समूह से विक्षुब्ध समुद्र को भी तैरकर पार कर लें, अति क्रुद्ध सर्प को भी पुष्पमाला की तरह सिर पर धारण कर लें, किन्तु दुराग्रही हठी मूर्खजन के चित्त को कोई वश में करने का साहस न करें। यद्यपि कवि द्वारा कहे हुए ये कार्य असंभव है फिर भी यदि कोई बलवान् ऐसा निश्चय करे तो हो सकता है कि वह सफलता प्राप्त करले किन्तु मूर्ख को समझाना असभंव है। यदि वर्तमान में देखें तो ऐसे अनेक मूर्खजन हमें मिल जायेंगे जिन्हें कितना भी समझाओं पर वे अपनी जिद्द के आगे किसी की नहीं सुनते और विनाश को प्राप्त करते हैं।

मूर्ख पद्धति में ही कवि ने एक मुक्तक में निर्देश किया है कि :–

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं गज इव मदान्धः समभवं,
त्दा सर्वज्ञोऽमीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित् किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खो स्मीति ज्वर इव मदो में व्यपगतः।।[8]/पृष्ठ 20

अर्थात् मैं (भृतहरि) कुछ थोड़ा सा जानकार होकर जब हाथी की तरह घमण्ड से कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेक से रहित हो गया तब 'मैं' (भतृहरि) तो सर्वज्ञ हूँ। यह समझकर मेरा मन अति गर्वित हो गया, परन्तु जब विद्वानों के सम्पर्क से कुछ–कुछ जाना या सीखा तब 'मैं तो मूर्ख हूँ।'' इस प्रकार वह मेरा मद ज्वर की भाँति उतर गया। कवि ने यहाँ स्वयं के लिए ऐसा कहा है। परन्तु हमें अपने आज के परिवेश में भी आस–पास ऐसे अनेक विद्वान समझे जाने वाले व्यक्ति मिल जायेंगे जो अल्पज्ञानी होते हुए भी स्वयं को बहुत ज्ञानवान् समझते हैं। पर जब उन्हें कोई अपने से अधिक ज्ञानी नहीं मिल जाता तब तक वे अपने मन में ये स्वीकार करने को तैयार नहीं होते कि उन्हें अल्पज्ञान है। कवि ने मूढ़ता दूर करने के लिए अपने नीतिशतक ग्रन्थ में लिखा है कि कोई भी शास्त्रविहित औषधि नहीं है जो मूर्ख की मूर्खता को दूर कर सके। इसी आशय को प्रकट करता हुआ कवि कहता है–

शक्यो वारयितु जलेन हुतभुक् शूर्पेण सूर्यातपो,
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभः।
व्याधिर्भेशजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रैः प्रयोगैविशं,
सर्वस्यौशधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौशधम् ।।[11]/पृश्ठ 26

अर्थात् अग्नि को जल से शान्त किया जा सकता है, शूर्प या छाते से सूर्य की धूप से बचा जा सकता है, मतवाले हाथी को तीक्ष्ण अंकुश से तथा वृषभ एवं गर्दभ को डण्डे से वश में किया जा सकता है, विविध प्रकार की औषधियों से व्याधि को तथा विविध प्रकार के मन्त्रों एवं प्रयोगों से विष को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार

सबके लिए प्रायः शास्त्रोक्त औषधियां है। परन्तु मूर्ख के लिए कोई औषधि नहीं है। यहाँ कवि के कहने का भाव यह है कि सभी दाहक पदार्थो से बचने के लिए एवं हिंसक और उद्दण्ड जीवों को वश में करने के लिए अनेकानेक उपाय व औषधि पर मूर्ख की मूढ़ता दूर करने के लिए कोई भी उपाय नहीं है।

ठीक उसी तरह वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी अनेक ऐसे मूर्ख व्यक्ति हमें मिल जायेंगे जिन पर भृतहरि जी की ये मूर्ख पद्धति के अक्षरशः घटित होते दिखाई देंगे। इसलिए वर्तमान में उनके द्वारा रचित नीतिशतकम् में कही गई मूर्ख पद्धति को यदि हम ध्यान में रखें तो हम बहुत सारी सामाजिक व मानसिक परेशानियों से बच सकते है। और स्वयं को सुखी बनाने में सफल हो सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. श्री भर्तृहरि कृत – नीतिशतकम् सम्पादक – बाबूराम त्रिपाठी।
2. वही 2/पृष्ठ 12
3. वही 4/पृष्ठ 14
4. वही 8/पृष्ठ 20
5. वही 11/पृष्ठ 26

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 102-108

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजेश जोशी की कविताओं में युगबोध

उर्वशी सिंह

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

कविता मनुष्य के जीवनानुभवों का प्रकटीकरण है। कविता अपने माध्यम से मनुष्य जीवन की क्रियाओं को प्रकट करती है। समाज में जब राजनैतिक, आर्थिक आदि विभिन्न स्तरों पर मानवीय मूल्य घटने लगते हैं तब काव्य के माध्यम से कवि अपने दायित्व को सामने लाता है। रचनाकार अपनी कृति के माध्यम से संदर्भित युग को सहेजता है। वर्तमान समय में कविता के विभिन्न आयामों में से एक हमारे समाज की नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों या मान्यताओं को संरक्षित करना भी है। प्रत्येक युग के साहित्य में समाज की युगीन चेतना प्रतिबिंब होती है। साहित्यकार युगीन चेतना से प्रभावित और प्रेरित होकर साहित्य सृजन करता है। युगबोध प्रत्येक रचनाकार के लेखन के केंद्र में रहता है। युगबोध 'युग' और 'बोध' दो शब्दों के मेल से बना है जिसका अर्थ काल, समय, समयावधि, जमाना आदि है। 'युगबोध' से आशय कालावधि की प्रवृत्ति, प्रगति एवं समय आदि के बारे में जानना अथवा समझना है इसलिए युग की मान्यताओं, स्थितियों एवं संदर्भों की समझ को युगबोध कहा जाता है।

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि विशेषताओं के आधार पर जब किसी भी रचनाकार की रचनाओं का अवलोकन करते हैं तो उनकी रचनाओं में वर्णित युगीन अनुभव रचनाकार के युगबोध को दर्शाता है।

हिंदी कविता की परंपरा में समकालीन हिंदी कविता का महत्वपूर्ण स्थान है। काल एवं समय के अनुरुप समसामयिक वस्तु–स्थितियों के चित्रण को ही समकालीन कविता कहा गया है। समकालीन हिंदी कविता तत्कालीन समाज की विविध परिस्थितियों से प्रभावित है। समकालीन कविता वर्तमान जीवन के यथार्थ की परतों को बड़ी सच्चाई एवं ईमानदारी से खोलती है, साथ ही इससे उलझ रहे मनुष्य की मानसिकता एवं उसमें आए बदलाव पर सटीक टिप्पणी करती है। यही कारण है कि इस युग की कविताओं में समकालीन जीवन से जुड़े सभी मुद्दों का बारीकी से चित्रण मिलता है फिर चाहे वो पारिवारिक विघटन, सांप्रदायिकता, छद्म धर्मनिरपेक्षता, भ्रष्टाचार, बाजारीकरण, भूमंडलीकण, बेरोजगारी, असंतुलित पर्यावरण, भाषावाद, प्रांतवाद आदि ही क्यों न हो।

हिंदी की समकालीन कविता के प्रमुख कवि के रूप में राजेश जोशी का नाम सम्मान से लिया जाता है। समकालीन समय की नब्ज़ पकड़ना राजेश जोशी बेहतर जानते हैं। समाज और जीवन में व्याप्त विसंगतियों को उन्होंने अपने काव्य का मुख्य विषय बनाया। वर्तमान समय में प्रचलित कोई भी विषय उनसे अछूता नहीं रहा है।

कवि राजेश की रचना यात्रा का आरंभ 'समरगाथा' नाम की एक लंबी कविता से सन् 1977 ई. से हुआ।

इसका प्रकाशन 'पहल' पत्रिका में हुआ। इसके बाद इनके द्वारा अभी तक कई कविता–संग्रहों का प्रकाशन हुआ है। इसके अलावा इन्होंने कहानी, नाटक, आलोचना, डायरी, अनुवाद, पटकथा, संपादन आदि साहित्य की विधाओं में भी सृजन किया है। इतने वर्ष पूर्व प्रकाशित इस कविता के विषय में स्वयं कवि कहते हैं– 'सन् 1977 ई में 'समरगाथा' कविता 'पहल' नामक पत्रिका में छपी थी, यह कविता धर्म के विरुद्ध लिखी गई थी। समरगाथा की चंद पंक्तियां निम्नलिखित है–

'तोड़ दो
तोड़ दो गुलामी की जंजीरें
तोड़ दो द्वार अंधेरे की कारा का
मोड़ दो रुख समय की धारा का
रोशनी में बदलता पानी
और इस्पात की नस्रें पर उठती दुनिया
समय है सर्वहारा का।'[1]

कवि के इस कथन के आलोक में हम यह कह सकते हैं कि इस कविता में कवि का विद्रोही स्वर मुखर है। यह कविता 12 परिच्छेदों में विभक्त है।

राजेश जोशी का पहला कविता संग्रह सन् 1980 ई. में प्रकाशित 'एक दिन बोलेंगे पेड़' है। इसके अंतर्गत कुल मिलाकर 42 कविताओं का समावेश है। डॉ. अर्चना वर्मा जी 'एक दिन बोलेंगे पेड़' काव्य–संग्रह के बारे में लिखती है : 'राजेश जोशी जैसे किसी प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित, स्थापित हो चुके कवि के प्रथम संग्रह को देखने का अर्थ केवल किसी पहले संग्रह को देखना नहीं बल्कि किसी घने छतनार पेड़ के भीतर विलीन हो चुके उस बिरवे को देखना है जो पहले पहल बीज से अंकुर बनकर फूटा था, उस बीज को भी देखना है जो अंकुर में फूटने के बाद स्वयं शेष नहीं रहता लेकिन नष्ट भी नहीं होता, पेड़ में बदल जाता है'[2]। इस काव्य संकलन की कविताओं में नारी की दयनीय स्थितियों का अंकन, व्यापक मानवतावादी धर्म, सामान्य मजदूरों के प्रति आस्था, भ्रष्ट व्यवस्था का अंकन, सांप्रदायिकता आदि विषयवस्तु को अंकित किया गया है। स्वाधीनता के बाद भी निचले तबके की स्थिति अपरिवर्तित है।

आज भी आम आदमी दरिद्रता एवं निर्धनता से पीड़ित है। अभी भी वह अपनी एक छोटी सी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता है। इसी विषय को कवि ने 'एक आदिवासी लड़की की इच्छा' कविता के माध्यम से दिखाया है। कविता का एक अंश उद्धृत है–

'लड़की की इच्छा है
छोटी सी इच्छा
हाट इमलिया जाने की
सौदा–सूत कुछ नहीं लेना
तनिक–सी इच्छा है काजल की
बिंदिया की
सौदा–सूत कुछ नहीं लेना

तनिक–सी इच्छा है सुग्गे की
फुग्गे की
लड़की की इच्छा है
छोटी–सी।'[3]

इस प्रकार से इस संकलन में बहुत सारी ऐसी कविताएं हैं जिसके माध्यम से हम अपने समय में मौजूद विभिन्न व्यवस्थाओं को जान सकते हैं एवं विभिन्न मुद्दों से अवगत हो सकते हैं।

'मिट्टी का चेहरा' राजेश जोशी का दूसरा काव्य संग्रह है। इसका प्रकाशन सन 1985 ई. में हुआ था। इस संकलन की कविताओं के माध्यम से कवि ने समाज में व्याप्त विविध समस्याओं का चित्रण किया है। इस संग्रह में कुल 40 कविताएं संकलित हैं जो कवि के जीवनानुभव का सच्चा दस्तावेज है। वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था से तंग आकर व्यक्ति का अपने जीवन से विश्वास उठ गया है। इसलिए वह व्यक्ति इस व्यवस्था से बहुत दूर जाकर रहने की उम्मीद रखता है। 'मैं उड़ जाऊंगा'

कविता इसी विषय को प्रस्तुत करती है। यथा–

'सबको चकमा देकर एक रात
मैं किसी स्वप्न की पीठ पर बैठकर उड़ जाऊंगा
हैरत में डाल दूंगा सारी दुनिया को
सब पूछते बैठेंगे
कैसे उड़ गया?

तंग आ गया हूं मैं हर पल नष्ट हो जाने की आशंका से भी, इस दुनिया से और भी ढेर तमाम जगह है इस ब्रह्मांड में मैं किसी भी दूसरे ग्रह पर जाकर बस जाऊंगा।'[4]

इसी प्रकार इस काव्य संकलन में संकलित कविता 'वे तीन' वर्तमान शिक्षा प्रणाली का जो स्वरूप है उसे वास्तविक रूप में दर्शाती है और उसमें परिवर्तन की अपेक्षा रखती है। 'महान कला मूल्य' कविता कलाकार की कला संबंधी उदासीनता, परिवेश संबंधी उदासीनता को सशक्त रूप में व्यक्त करती है। ऋतुराज जी लिखते हैं – 'राजेश जोशी की कविताओं में कहीं भी पराजित होकर दूर खड़े रहने का भाव नहीं है। वे अपने परिवेश और लोगों से गहरे जुड़े हैं और उन्हीं से अपनी कविताओं के लिए ऊर्जा और आस्वाद ग्रहण करते हैं।'[5] 'मिट्टी का चेहरा' काव्य संकलन सचमुच एक स्थानीय मनुष्य की आंखों से देखा गया कविताओं का एक ऐसा संग्रह है जिसकी कविताएं स्थानीय रंग देने के बावजूद सार्वभौमिक है, जिसके चेहरे के दर्पण में एक बेहतर दुनिया बनाने का संकल्प है।

'नेपथ्य में हंसी' सन् 1994 ई. में प्रकाशित राजेश जोशी का तीसरा कविता संकलन है। इस काव्य संग्रह में कवि की जो चिंता है उसका व्यापक स्वरूप दिखाई पड़ता है।

इस संग्रह में किस प्रकार की कविताएं संकलित हैं। इसे राजेश जोशी स्वयं स्पष्ट करते हैं, 'निराशा, उदासी और उम्मीद के इस दृश्य के बीच भी उम्मीद बची है और यह उम्मीद है – इस देश की विशाल श्रमशील जनता जो बहुत थोड़े में अपना गुजर बसर करते हुए भी, ज्यादा से ज्यादा जगह को मनुष्य के रहने लायक और सुन्दर बनाने में जुटी है। ये कविताएं उस धुंधले उजाले को देख और दिखा सकें ऐसी मेरी इच्छा है।'[6] प्रस्तुत

संकलन में कुल 41 कविताएं संग्रहित है। इस काव्य संग्रह में समकालीन परिवेश की विसंगतियां चित्रित है। वर्तमान समाज का जो विसंगति बोध है वह समाज में एक चुनौती के रूप में उपस्थित है। आज मनुष्य अपने रिश्तों को ही महत्व नहीं देता है, इसके चलते आत्मीयता समाप्त होती जा रही है। इस संकलन में 'प्लेटफार्म पर' एक कविता है जो इस आत्मीयभाव को बचाए रखने की कोशिश करती है–

'हर दिन लंबी होती सड़कों और बड़े होते शहरों में अब
कम होता जा रहा है चलन किसी को
लेने आने या छोड़ने जाने का
अब तो पूरी शिद्दत से कोई लड़ता भी
नहीं
बहुत खामोशी से चलती है ठंडी कटुता
की
दुधारी छुरी
उदासी बढ़ रही है कस्बों में और शहरों
में उदासीनता।'[7]

हमारे समाज में जो बाल मजदूरी है इससे कवि का मन काफी बेचैन है। बाल मजदूरी की समस्या पर राजेश जोशी अपनी कविता 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' में मार्मिक व्यंग कसते हैं। वो सिर्फ व्यंग तक नहीं रुकते बल्कि इस समस्या को हल्के में लेने की हमारी प्रवृत्ति पर प्रहार भी करते हैं।

'बच्चे काम पर जा रहे है
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह।'[8]

इसी संग्रह में एक और कविता है 'मारे जाएंगे'। इसमें कवि ने हमारे समाज में व्याप्त उस यथार्थ को दिखाया है जिसके चलते आज आम आदमी व्यवस्था का शिकार बन रहा है। समाज में व्याप्त जो असुरक्षा की दशा है उसे भी दिखाया है। देश में मौजूद सामान्य जन का जीवन हर क्षेत्र से बेदखल है। देश की राजनीतिक परिस्थिति का वर्णन है एवं उच्चवर्ग उनके शोषण का कारण बनते हैं। इस प्रकार से राजेश जोशी ने इस काव्य संग्रह में महत्वपूर्ण बिंदुओं को रेखांकित कर अपने काव्य संग्रह को जीवंत किया है।

'दो पंक्तियों के बीच' इनका चौथा काव्य संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 2000 ई.में हुआ था। इस संकलन में कवि की विचारधारा की अनेकरूपता उपस्थित है। इस संग्रह में 54 कविताएं संकलित है। इस संग्रह की रचनाओं में सृजन प्रक्रिया, आम आदमी के अस्तित्व का संकट, नारी की पीड़ा, भ्रष्ट शिक्षा व्यवस्था, सांप्रदायिकता, अंधविश्वास, संयुक्त परिवार की आवश्यकता आदि भावों की सशक्त उपस्थिति है। 'दो पंक्तियों के बीच' संग्रह का शीर्षक राजेश जोशी की कविता के उस बुनियादी चरित्र की ओर संकेत करता है जो उन्हें अनेक समकालीनों से अलग करता है। 'दो पंक्तियों के बीच' कविता उस अनछुए मर्म तक ले जाती है जहां काव्यार्थ सबसे अधिक स्पंदित होता है। पिछली संग्रहों से जोशी जी की पहचान युवा कवि के रूप में रही परंतु इस संग्रह

की कविताओं में प्रौढ़ता का साक्षात्कार होता है। 'हमारी भाषा' कविता इस बात का प्रमाण है कि कवि राजेश जोशी में भाषा की एक ऐसी प्रखर चेतना है जो लगभग विरल है। इस भाषिक चेतना– जो वस्तुतः यथार्थ की चेतना का ही सृजनात्मक रूप है– का सबसे अद्‌भुत उदाहरण 'सहायक क्रिया' कविता है। सहायक क्रिया एक अजब ढंग से समाज के उन असंख्य लोगों का संकेतक बन जाती है जो जाने अनजाने किसी अदृश्य वर्चस्व के नीचे एक सहायक की भूमिका निभाते हैं।

कवि ने 'इत्यादि' कविता के माध्यम से आम आदमी को संबोधित किया है। आम आदमी की जो पीड़ा है, दुख दर्द है उसे चित्रित किया है। हमारे समाज में आज इत्यादि किस प्रकार से शोषित होते जा रहे हैं और किस प्रकार उसे समाज से बेदखल करके हाशिए पर धकेल दिया जाता है, ऐसी भयानक परिस्थिति का यहां उद्‌घाटन हुआ है। उल्लेखित पंक्तियां उपयुक्त संदर्भ में दृष्टव्य है–

'कुछ लोगों के नामों का उल्लेख किया
गया था जिनके ओहदे थे
बाकी सब इत्यादि थे
इत्यादि तादाद में हमेशा ही ज्यादा
होते थे
इत्यादि भाव ताव करके सब्जी खरीदते थे और खाना वाना खाकर
खास लोगों के भाषण सुनने जाते थे
इत्यादि हर गोष्ठी में उपस्थिति बढ़ाते थे
इत्यादि हर जगह शामिल थे पर उनके नाम कहीं भी
शामिल नहीं हो पाते थे
इत्यादि बस कुछ सिरफिरे कवियों की कविता में
अक्सर दिख जाते थे।'[9]

'दो पक्तियों के बीच' वस्तुतः एक वयस्क कवि की प्रौढ़ कृति है जहां उसकी राजनीतिक चेतना उसके छोटे–छोटे अनुभवों के साथ ऐसी घुल–मिल गई है कि उसे अलग से लक्षित नहीं किया जा सकता पर यह भी सच है कि बिना उस चेतना के ये कविताएं लिखी भी नहीं जा सकती थी। अपने अनुभव की परिपक्वता, गहरे कलात्मक अनुशासन और अपने समय के साथ एक बिल्कुल अछूते संबंध के कारण इस कठिन दौर में भी यह संग्रह लंबे समय तक याद किया जाएगा।

'चांद की वर्तनी' :– यह सन् 2006 ई. में प्रकाशित कवि राजेश जोशी का पांचवा और एक महत्वपूर्ण काव्य संकलन है। इसमें 49 कविताएं संकलित हैं। इस काव्य संग्रह की गुणवत्ता को देखते हुए एवं कवि राजेश जोशी के काव्य चिन्तन को रेखांकित करते हुए अरुण कमल इसकी भूमिका में लिखते हैं – 'राजेश की कविता हमारे समय का ऐसा संघनित दस्तावेज है कि केवल उसके आधार पर हम समकालीन भारत का एक दृश्य लेख बना सकते हैं। उनकी कविता साहस के साथ सत्ता के सभी पायदानों पर वार करती है, एक विराट सत्ता जो अर्थव्यवस्था से लेकर हमारी रसोई तक व्याप्त है। नागार्जुन और धूमिल के बाद सत्ता के तिलिस्म को उघाड़ने वाले सर्वाधिक सशक्त कवि राजेश जोशी है।'[10]

इस संग्रह में कवि ने स्त्रियों को लेकर बहुत मार्मिक कविताओं की रचना की है। इस विषय में 'बेटी की विदाई' कविता उदाहरणीय है। इसी क्रम में हमें इस संग्रह में बहुत सारी ऐसी कविताएं प्राप्त होती है जो वर्तमान समाज की परिस्थिति एवं विडंबना को उद्वेलित करती है।

जोशी जी का 'ज़िद' एक महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है। इस संकलन का प्रकाशन सन् 2015 ई. में राजकमल से हुआ। इस कविता संग्रह में लगभग 55 कविताएं संग्रहित है। इस संग्रह में एक कविता है 'अतिरिक्त चीजों की माया'। यह कविता वर्तमान समय के बाजारवाद को दर्शाती है। हमारा समाज बाजारवाद का किस प्रकार शिकार हो रहा है, उसका जिक्र कवि ने इस कविता में किया है–

'बाजार से लेने जाता हूं जरूरत की
कोई चीज़
तो साथ थमा दी जाती है एक और
चीज़ मुफ्त
उस चीज की कोई जरूरत नहीं मुझे
पर लेने से इनकार नहीं कर पाता उसे
अतिरिक्त हमारी मन की कमजोरी को
पहचानता है
लालच धीरे–धीरे पांव पसारता है
एक अतिरिक्त दूसरे अतिरिक्त को
बुलाता है
और दूसरा अतिरिक्त तीसरे अतिरिक्त
के लिए
जगह बनाता है
एक दिन सारी जगह
अतिरिक्तों से भर जाती है।'[11]

कवि अपनी रचना के जरिए खोते हुए सामाजिक मूल्यों की तलाश करते हैं। इसी प्रकार अपनी कविताओं में कवि राजेश जोशी ने वर्तमान युग का स्पष्ट वर्णन किया है जिसके जरिए हमें अपने युग का बोध होता है।

अंत में निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि राजेश जोशी समकालीन कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। उनकी कविताओं में एक बच्चे की दुनिया और शिशुवत जिज्ञासाओं से लेकर परिपक्व जीवन–दर्शन तक की यात्रा का सिलसिलेवार ब्यौरा है। वास्तव में राजेश जोशी की कविताएं अनुभव की ज़मीन पर विचारधारा, कल्पना और पक्षधरता के खाद–पानी के संतुलित प्रयोग से निर्मित हुई है। उनमें अपनी कल्पना के माध्यम से पाठक को कल्पना जगत की सैर कराते हुए वर्तमान में प्रचलित भ्रष्ट–व्यवस्था के विरुद्ध जागरूक करने की अपार विद्वता है। यही नहीं इनकी रचना घर, परिवेशगत विसंगतियों का चित्रण करते हुए उनमें भविष्य का सुंदर स्वप्न भी दिखाने में सफल होती है।

संदर्भ– ग्रंथ सूची :–

1. राजेश जोशी के साथ डॉ. वर्षा देशमुख का साक्षात्कार से।
2. सं. विजय कुमार, सामयिक मीमांसा, जुलाई–सितंबर, 2008, पृ. 91
3. जोशी, राजेश. प्रतिनिधि कविता, पृ. 24
4. जोशी, राजेश. प्रतिनिधि कविता, पृ. 36
5. राजेश जोशी, धूपघड़ी, भूमिका से।
6. जोशी, राजेश. नेपथ्य में हंसी, भूमिका से।
7. जोशी, राजेश. नेपथ्य में हंसी, पृ. 17–18
8. गूगल, कविता कोश, राजेश जोशी की कविताएं।
9. जोशी, राजेश. दो पंक्तियों के बीच, पृ.13
10. जोशी, राजेश. चांद की वर्तनी, भूमिका से
11. जोशी, राजेश. ज़िद, पृ. 54

पता– 621 / 17, DGER Complex, Sector 3, Dwarka, New Delhi-78

Mob : 9582301174

Email Id: urvashisingh805@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 109-115

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

फलौदी परगने के स्वतंत्रता सेनानी

दिनेश गहलोत

शोधार्थी, इतिहास विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर।

भारत के विभिन्न भौगोलिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक प्रदेशों में राजस्थान का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। राजस्थान भारत वर्ष के पश्चिमी भाग का एक विस्तृत राज्य है। राजस्थान भारत का एक ऐसा राज्य है जो भारत भूमि का अंग होते हुए भी अपनी विशिष्टताओं के कारण भारत में अपना स्वतंत्र एवं विशेष स्थान रखता है। यह राजस्थान की धरती अपने देश प्रेम और वीरता के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध इतिहासविद् जेम्स टॉड राजस्थान की उत्सर्गमयी वीर भूमि के अतीत से अभिभूत होते हुए कहते हैं – ''राजस्थान की भूमि में ऐसा कोई फूल नहीं उगा जो राष्ट्रीय वीरता और त्याग की सुगन्ध से भरकर झूमा न हो वायु का एक भी झोंका ऐसा नहीं उठा जिसके साथ युद्ध देवी के चरणों में साहसी युवकों का प्रधान न हुआ हो।''

यह एक ऐसी भूमि है जिसका नाम लेते ही, आदर्श देशप्रेम, स्वातन्त्रय भावना, जातिगत स्वाभिमान, शरणागत वत्सलता, प्रतिज्ञा–पालन और सर्व–समर्पण जैसी विशिष्टताओं का स्मरण हो उठता है। यहाँ का ज़र्रा–ज़र्रा देशप्रेम, वीरता और बलिदान से ओत–प्रोत अपने अतीत का जीता जागता इतिहास है।

'राजस्थान' शब्द का पहली बार प्रयोग प्रदेश के रूप में प्रयुक्त करने का श्रेय इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड को जाता है। जिसने सन् 1829 ई. में जैन यति ज्ञानचन्द्र की सहायता से लिखित 'एनांल्स एंड एक्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान' नामक पुस्तक का प्रथम भाग प्रकाशित कर राजस्थान की वीरभूमि और उसके वीर–वीरंगानाओं की धवल कीर्ति देश विदेश में फैलायी। राजस्थान की व्याख्या करते हुए अपने ग्रन्थ में कहा–"राजस्थान उस भाग का नाम है जहाँ राजा लोग निवास करते हैं। स्थानीय बोल चाल की भाषा में इसे रजवाड़ा के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु सुसंस्कृत लोग इसे 'राजस्थान' कहते हैं इस प्रदेश में राजपूत राजाओं की रियासतें होने से अंग्रेज शासकों ने इसे 'राजपूताना' का नाम दे दिया जो राजस्थान शब्द का अपभ्रंश हैं।[1] राजस्थान का पश्चिमी भाग मारवाड़ कहलाता था।

'मारवाड़' जिसे वर्तमान में हम जोधपुर कहते हैं। इसकी राजधानी पहले मंडोर थी, जहां प्राचीन काल में नाग, प्रतिहार, मौर्य, परमार, चाहमान आदि राज्य करते थे। मारवाड़ में राठौड़ों के राज्य की स्थापना सन् 1240 ई. के लगभग बदायूँ के चन्द्र के वंशधर सीहा के द्वारा हुई थी। राव सीहा के वंशज राव जोधा ने 12 मई 1459 ई. को चिड़ियाटूंक पहाड़ी पर नये गढ़ की नींव रखी। जोधा के नाम पर ही इस नगर का नाम जोधपुर रखा गया।[2] राठौड़ शासक अपने पराक्रम और दानशीलता के लिए हमेशा ही प्रसिद्ध रहे है।

राज्य प्रबन्ध के लिए मारवाड़ के 21 विभाग किये गये थे। जो परगने कहलाते थे हर परगने में एक हाकिम

और उसकी मातहमी में एक नायब हाकिम रहता था, जिनको दीवानी, फौजदारी और माल के मुकद्दमें तय करने के अधिकार थे ये परगनें निम्न थे–जसवन्तपुरा, जालौर, जैतारण, जोधपुर, डीडवाणा, देसुरी, नागौर, पचपदरा, परबतसर, पाली, फलौदी, बाली, बिलाड़ा, मालाणी, मेड़ता, शिव, शेरगढ़, सांचोर, सिवाणा, सोजत, सांभर, आदि।[3] विभिन्न ग्रन्थों और शिलालेखों में मारवाड़ के इन परगनों का उल्लेख मिलता है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में फलौदी की जनता को त्रिकोणीय या त्रिआयामी संघर्ष लड़ना पड़ा था। एक ओर ब्रिटिश सत्ता से संपूर्ण राष्ट्र को छुटकारा दिलाना था तो जोधपुर रियासत में उत्तरदायी शासन स्थापनार्थ तथा जुल्मी जागीरदारों से पीड़ित, आतंकित और भयभीत कृषक जनता को उबारने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना, सहर्ष स्वीकार किया था। विदेशी आक्रांताओं, देशी रजवाड़ों और जागीरदारों के जुल्मों से कराहती संपूर्ण भारत की जनता के लिए जब संपूर्ण भारत में स्वतंत्र होने के प्रयास और संघर्ष हो रहे थे उस समय फलौदी परगने के स्वतंत्रता सेनानियों ने भी अपना अमूल्य योगदान देश के लिए दिया। ये स्वतंत्रता सेनानी निम्न थे –

1. बालकृष्ण व्यास 'लालजी' :-

बालकृष्ण व्यास 'लालजी' प्रदेश काँग्रेस कार्यकर्ताओं के लिए एक अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्ति थे। प्रदेश कांग्रेस की संगठन शाखा को वर्षों से संभालकर इन्होंने अपने कुशल व्यवहार से जो लोकप्रियता प्राप्त की थी वह सामान्य तथा बड़े–बड़े नेताओं को भी उपलब्ध नही हो पाती। कांग्रेस का कार्य जैसे इनके जीवन का मिशन बन गया था। प्रदेश कांग्रेस के कार्यालय में कोई मिले या न मिले– लालजी वहां हर समय, हर व्यक्ति की, हर समस्या का समाधान के लिए तैयार मिलते थे। इनका जन्म सन् 1922 ई. में फलौदी के एक पुष्करणा परिवार में हुआ था। कई वर्षो तक इन्होने फलौदी की सम्भवनाथ जैन संगीत शाला में संगीत शिक्षक का कार्य किया। लोक परिषद् के तत्वाधान में खेले गए कई नाटकों में इन्होने अभिनय भी किया है। फलौदी के मरूस्थल सांस्कृतिक कला मडंल के अध्यक्ष भी रहे थे[4]।

1939 ई. में फलौदी में इन्होने लोक–परिषद् की स्थापना की थी। अपनी टोली के साथ 1940 ई. के लोक परिषद् के आन्दोलन में इन्होने भाग लिया था।[5] सन् 1942 ई. के आन्दोलन में 9 जून 1942 ई. को गिरफ्तार कर लिए गए और करीब दो वर्ष तक ये जेल में नजरबंद रहे। लालजी विचारक, लेखक और पत्रकार थे। देश की स्वाधीनता के बाद ये प्रदेश कांग्रेस कमेंटी में कार्य कर रहे थे और प्रदेश कांग्रेस कमेंटी के एक अनिवार्य अंग बन गए थे।

2. बालकृष्ण मोतीलाल थानवी 'लालजी' :-

बालकृष्ण मोतीलाल थानवी का जन्म सन् 1926 ई. में हुआ था। श्री बालकृष्ण मोतीलाल थानवी फलौदी के सार्वजनिक जीवन के रीढ की हड्डी थे। वे फलौदी के सफल पत्रकार, लेखक वक्ता, सर्वोदयी कार्यकर्ता, समाज– सेवक और राजनैतिक नेता थे।[6] उनका व्यक्तित्व एक सत्यनिष्ठ, अनुशासित, सिद्धान्तवादी का ठोस व्यक्तित्व था। वे निरन्तर कार्यरत रहते थे और अपने जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ नही जाने देते। फलौदी के लोक जीवन के अभाव अभियोगो को दूर करवाने के लिए लालजी किसी भी तरह के संघर्ष के लिए हर समय कटिबद्ध और तत्पर रहते थे।

इनका जन्म फलौदी के एक सामान्य पुष्करणा परिवार में हुआ। फलौदी में जब श्री रणछोड़दास गट्टानी ने आकर लोक परिषद् की स्थापना की तब लालजी प्रत्यक्ष रूप से राजनीति के संपर्क में आए। मारवाड़ लोक

परिषद् ने सन् 1942 ई. में जो उत्तरदायी शासन आंदोलन शुरू किया इसमें लालजी भी शामिल हो गए। वे 26 अगस्त 1942 ई. को फलौदी में सत्यागह करते हुए गिरफ्तार हुए और करीब पौने दो वर्ष तक जोधपुर सैन्ट्रल जेल में रहे।[7] उन्हे जेल में कई दिनों तक हथकड़ी लगाकर काल कोठरी में रखा गया था।

स्वाधीनता के बाद उन्होंने अपने कुछ मित्रों के साथ मिलकर जोधपुर सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। सन् 1952 ई. में उन्होंने समाजवादी पार्टी के मंच से महात्मा गांधी अस्पताल के कम्पाउन्डरों और नर्सों की उचित मांगों के समर्थन में आन्दोलन किया और सन् 1954 ई. में फलौदी से बाजरा–निर्यात–विरोधी–आन्दोलन किया। इन दोनों आन्दोलनों में श्री लालजी को दोनों बार जेल की यात्राएं करनी पड़ी। समाजवादी पार्टी के कार्यक्रम में उन्होंने राजनैतिक क्षेत्रों को निरन्तर प्रवृतियों में भरा हुआ रखा।

उन्होंने कुछ समय खींचन के मरूधर विकास मण्डल के मन्त्री पद पर कार्य किया। सन् 1962 ई. में उन्होंने मरूस्थल खादी ग्रामोद्योग समिति की स्थापना की और उसकी रचनात्मक प्रवृतियों को निरन्तर विस्तार देते गए। उन्होंने भारत सेवक समाज की ओर फलौदी के आस पास के कस्बों को सड़कों द्वारा फलौदी से जोड़ने का कार्य सफलतापूर्वक संपन्न करवाया। उन्होंने चीनी आक्रमण के समय पांच हजार रूपए और 100 तोला सोना इकट्ठा करके सरकार को भेंट किया। श्री लालजी ने अपने क्षेत्र में किसान आन्दोलन संगठित किए और किसानों में अत्याचारी शासन का मुकाबला करने का बल जगाया और उन्होंने दलित वर्ग और पिछड़ी जातियों की सेवा में भी अपना बहुत समय लगाया था।

3. अम्बालाल शर्मा :–

अम्बलाल शर्मा फलौदी के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनकी शिक्षा गुरूकुल ब्यावर में हुई। इन्हें राष्ट्रीयता के संस्कार विद्यार्थी जीवन में ब्यावर में ही मिल गए थे। फलौदी में लोक परिषद् की शाखा स्थापित होने पर श्री अम्बालाल उसके सदस्य बन गए।8 मई 1942 ई. में लोक परिषद् ने उसके जिम्मेंवार हुकूमत आन्दोलन शुरू किया तो भी अम्बालाल शर्मा उसमें कूद पड़े। सत्याग्रह करते हुए वे गिरफ्तार कर लिए गए और एक वर्ष की सजा और 25 रूपये का जुर्माना किया गया। सजा पूरी होने पर वे जेल से छूटे।[9]

देश की स्वाधीनता के बाद श्री अम्बालाल शर्मा ने भारत सेवक समाज, हरिजन सेवक संघ, खादी ग्रामोद्योग एवं अन्य रचनात्मक प्रवृतियों में अपने आपको लगाए रखा था। श्री अम्बालाल शर्मा नमक का स्वतंत्र व्यवसाय करने के लिए प्रयत्नशील थे।

4. गंगा विष्णु चांडा :–

गंगा विष्णु चांडा का जन्म 5 नवम्बर 1919 ई. को फलौदी के पुष्करणा परिवार में श्री लाधूराम चांडा के यहां हुआ था।[10] श्री चांडा का शारीरिक गठन और आकार प्रकार भीमकाय था और वह बचपन में ही सार्वजनिक क्षेत्र में पीड़ित लोगों की सहायता करने को अग्रगण्य रूप से भाग लेते थे। गंगाविष्णु को किसी का समर्थन करते देखकर कोई दूसरा उसका विरोध नही करता था। लोक परिषद् की स्थापना के साथ ही श्री चांडा उसके सक्रिय सदस्य बन गए।[11] अगस्त 1942 ई. में उन्होंने गाँव–गाँव में घूम कर भारत छोड़ो आंदोलन के लिए लोगों तक गांधीजी का 'करो या मरो' का संदेश पहुंचाया। 29 अगस्त 1942 ई. को वे गिरफ्तार कर लिए गए। 3 महीनें उन्हें विजोलाई पैलेस में नजरबंद रखा गया।

5. गुलाम रसूल तेली :–

गुलाम रसूल तेली का जन्म सन् 1920 ई. में फलौदी के श्री कादर बकस तेली के यहां हुआ। बचपन से ही आप तेल घाणी पर काम करने लग गए थे। फलौदी में श्री रणछोड़दास गट्टानी ने लोक परिषद् को जब संगठित किया तो गुलाम रसूल भी एक उत्साही कार्यकर्ता के रूप में आगे आए।[12] मारवाड़ लोक परिषद् ने जब मई 1942 ई. में जिम्मेंवार हुकूमत आन्दोलन शुरू किया। तब श्री गुलाम रसूल एक सत्याग्रही के रूप में आन्दोलन में कूद पड़े। लम्बे समय तक गावों में प्रचार करते हुए ये अपने जत्थे के साथ जोधपुर पहुँचे और 18 अगस्त 1942 ई. को एक जुलूस का नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार हो गए।[13] जेल में इन्होने अक्षर ज्ञान प्राप्त किया। कई महिनों तक मुकदमा चलने के बाद उन्हें दो महीने की सजा हुई। गिरफ्तारी के करीब 8 महीने बाद ये जेल से रिहा हुए।

6. गोपाल पुरोहित :–

गोपाल पुरोहित का जन्म सन् 1927 ई. में फलौदी के एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। गोपाल पुरोहित की शिक्षा सामान्य ही हो सकी। प्रकृति से निर्भीक, साहसी और स्पष्टवादी श्री गोपाल पुरोहित सदा अन्याय का विरोध करने के लिए अपने को खतरे में डालता रहा था। सन् 1942 ई. में गोपाल पुरोहित मारवाड़ लोक परिषद् के सदस्य बने और जिम्मेंवार हुकुमत आन्दोलन में फलौदी के जत्थे में जोधपुर पहुंचे। 8 अगस्त, 1942 ई. के बाद मारवाड़ लोक परिषद् का आन्दोलन भारत छोड़ो आन्दोलन में बदल दिया गया।[14] गोपाल ने जोधपुर रेलवे के रनिंग शेड में आग लगाने और डिब्बे जलाने के कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया था। 18 अगस्त, 1942 ई. को वे गिरफ्तार कर लिए गए। 17 महीनें तक श्री गोपाल विजोलाई, मोचिया, और जोधपुर सेंट्रल जेल में बिताने के बाद रिहा किए गए।[15] मुक्त होने के बाद कई वर्षों तक उन्होंने भारत सेवक समाज का कार्य किया।

7. देवकृष्ण थानवी 'देवजी दादा' :–

देवकृष्ण थानवी 'देवजी दादा' का जन्म सन् 1905 ई. में फलौदी के एक पुष्करणा परिवार में हुआ। उनके पिताजी का व्यवसाय बम्बई में था। अतः इनका बचपन बम्बई में बीता। वे सन् 1926 ई. में भोलेश्वर कांग्रेस समिति के सदस्य बने और सन् 1930 ई. के नमक सत्याग्रह में भाग लिया। 1935 ई में आपने बम्बई में गणगौर डिफैम कमेंटी बना कर अपने गिरफ्तार साथियों के लिए प्रबल लोक मत जाग्रत किया।[16] सन् 1939 ई. में पोकरण के किसान संघर्ष की उन्होंने रिपोर्ट लोक परिषद् को दी। सन् 1940 ई. के लोकपरिषद् आन्दोलन में बाहर रह कर बहुत बड़ा सहयोग दिया। सन् 1942 ई. में आपने बम्बई में प्रवासी संघ के द्वारा जोधपुर के हालात गांधीजी और नेहरूजी को बताए तथा पत्र व्यवहार करते रहे थे।[17] 9 जून, 1942 ई. को आप फलौदी में गिरफ्तार कर लिए गए। वे लंबे समय तक सेंट्रल जेल, मोचिया किला व विजोलाई पैलेस में नजरबंद रखे गये। सन् 1952 ई .में कांग्रेस शासन में फैले भ्रष्टाचार के विरूद्ध आमरण अनशन किया। सन् 1952 ई. में फलौदी में नमक के पट्टी की अदायगी के खिलाफ आन्दोलन किया।

8. बच्छराज जोशी :–

गणगौर काण्ड के अभियुक्त बच्छराज जोशी का जन्म सन् 1900 ई. में फलौदी के पुष्करणा परिवार में शिवदत जोशी के यहाँ हुआ।[18] बचपन में पढ़ते हुए आप खेती का काम भी करते थे। सदा की भांति फलौदी में गणगौर का मेंला नदी के किनारे भरने जा रहा था कि तत्कालीन हाकिम सम्पतमल भण्डारी ने विज्ञप्ति निकाल

कर जबरदस्ती रानीसर पर लाने के लिए सशस्त्र पुलिस भेज दी। नगर में भयंकर विद्रोह फैल गया और यह जन आन्दोलन उग्र बन गया। इस आन्दोलन में बच्छराज जोशी भी सक्रिय कार्यकर्ता थे। इन्हें भी जेल में डाल दिया गया।[19] गणगौर काण्ड के लिए जनमत इतना प्रबल रूप से जागृत हुआ कि सरकार को विवश होकर सभी अभियुक्तों को रिहा करना पड़ा।

सन् 1942 ई. में मारवाड़ लोक परिषद् ने जो जिम्मेंवार हुकुमत आन्दोलन शुरू किया उसमें भी इन्होंने सत्याग्रह किया और 9 महीने तक जोधपुर सैंट्रल जेल में रहे।

9. बालकृष्ण जोशी :–

बालकृष्ण जोशी का जन्म फलौदी के एक पुष्करणा परिवार में सन् 1906 ई. में हुआ। सामान्य शिक्षा प्राप्त करके आप बम्बई चले गए। सन् 1935 ई. में बम्बई कांग्रेस के सदस्य बने।[20] सन् 1942 ई. में आन्दोलन शुरू किया तो आपने जोधपुर में सत्याग्रह किया और अगस्त, 1942 ई. को गिरफ्तार कर लिए गए। करीब पौने दो वर्ष तक श्री बालकृष्ण जोशी जेल में रहे।[21]

10. मनसुख लाल :–

मनसुख लाल का जन्म फलौदी में श्री कस्तुरचन्द जी दर्जी के यहां सन् 1920 ई. में हुआ। बचपन में उनके शिक्षा और पढ़ाई की कोई पारिवारिक व्यवस्था नहीं हो सकी। फिर भी उनकी बुद्धि का विकास निरंतर होता गया। उनका झुकाव राष्ट्रीय जागीरदार की ओर होने लगा। 16 वर्ष की अवस्था में श्री मनसुख लाल ने पोकरण जागीरदार के विरूद्ध आन्दोलन में भाग लिया। सन् 1942 ई. में मारवाड़ लोक परिषद् के जिम्मेंवार हुकुमत आन्दोलन में श्री मनसुख लाल ने जोधपुर आकर सत्याग्रह किया। उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें 13 महीने की सजा दी गई थी।[22]

11. राधा कृष्ण पुरोहित :–

राधा कृष्ण पुरोहित का जन्म सन् 1918 ई. में लोर्डियों ग्राम में हुआ। इनका बचपन अपने पिता गवरीदत्तजी के पास बम्बई में बीता। बंबई में सन् 1936 ई. में भोलेश्वर कांग्रेस कमेंटी के ये सदस्य बन गए और बम्बई में कांग्रेस प्रवृतियो में क्रियाशील हो गए। इन्होंने बम्बई में कांग्रेस के स्वयं सेवक अनुशासित स्वयं सेवक की तरह कार्य किया था।[23]

सन् 1942 ई. में मारवाड लोक परिषद् के उत्तरदायी शासन के आन्दोलन में भाग लेने के लिए वे बंबई से जोधपुर आए और सत्याग्रह करते हुए गिरफ्तार हो गए। उन्हें सैंट्रल जेल में लम्बे समय तक अन्डर ट्रायल के रूप में रखा गया। परन्तु उन पर लगाया गया राजद्रोह का अभियोग प्रमाणित नहीं हो सका। अतः लोक परिषद् के उद्देश्य और कार्यक्रम से लोगों को परिचित कराया। बम्बई जाने पर वे पुनः बम्बई कांग्रेस में कार्य करने लग जाए।

12. माणिक लाल आचार्य :–

माणकलाल आचार्य का जन्म जैसलमेर में सन् 1910 ई. में हुआ था। चौदह वर्ष की आयु में वे बिलोचिस्तान चले गये। वहाँ से वे ईरान की सीमाओं का भ्रमण करके खामगांव पहुंचे, और वहां किराने का व्यवसाय करने लगे। उन्होंने सन् 1922 ई. में स्वदेशी का व्रत धारण किया। सन् 1930 ई. के आन्दोलन में आपको सत्याग्रहियों की भर्ती का प्रचार का काम सौंपा गया। पुलिस ने उनकी दुकान पर बार– बार छापे मारे। खामगांव

से फलौदी आकर आपने कपड़े का व्यवसाय शुरू कर दिया। उन्होंनें फलौदी में आर्य समाज का पुर्नगठन किया। सन् 1942 ई. में मारवाड़ लोक परिषद् के उत्तरदायी शासन आन्दोलन में संयोगवशात् आपकी गिरफ्तारी नहीं हुई। सन् 1947 ई. में वे लोक परिषद् की फलौदी शाखा के प्रधान चुने गये। उन्होंने हरिजनों की उन्नति हेतु कई उल्लेखनीय काम किये।[24]

माणकलाल आचार्य ने जैसलमेर जेल में बन्द श्री सागरमल गोपा की रिहाई के लिए आन्दोलन किया, स्वयं महारावल से भी मिले, पर कोई नतीजा नहीं निकला। उन्होंने जैसलमेंर में स्वर्गीय मीठालाल व्यास के साथ प्रजामण्डल की स्थापना की थी।

फलौदी लोक–परिषद् द्वारा चलाया जा रहा भारत का स्वतंत्रता आंदोलन तथा जोधपुर रियासत में जिम्मेवार हुकूमत कायम करने के संघर्ष में फलौदी के क्रांतिकारियों के साथ महिलाओं का योगदान भी अविस्मरणीय एवं अद्वितीय रहा था। जब फलौदी में लोक परिषद् के नेताओं को गिरफ्तार किया जा रहा था, जुलूसों और प्रभात फेरियों में महिलाओं की संख्या भी होती थी। अग्रणी महिलाओं में श्रीमती देवकृष्ण थानवी, श्रीमती शिवकरण थानवी और वीर माता बालकृष्ण थानवी थी। इन्होंने महिला जागृति में भी भरपूर योगदान दिया।

इस प्रकार फलौदी परगने के स्वतत्रंता सेनानियों ने देश की आजादी में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है तथा 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत की आजादी का स्वप्न पूरा हुआ।

संदर्भ :–

1. टॉड, कर्नल ; 'एनल्स एण्ड एक्टीक्वीटीज आफ राजस्थान', 1962 ई. जिल्द–1, पृ. 01
2. (i) नैणसी री ख्यात, जिल्द–2, पृ. 131
   (ii). दयाल दास री ख्यात, जिल्द–1, पृ. 106
   (iii). वीर विनोद, भाग–1, पृ. 806
3. (i). गहलोत, जगदीश सिंह ; मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ. 17–18
   (ii). आसोपा, रामकरण ; मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 05
4. (i). जोशी, सुमनेश; राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 69
   (ii). थानवी,बालकृष्ण;मारवाड़ लोक परिषद् के जन आंदोलन, पृ. 27
   (iii). परिहार, विनिता; राजस्थान में प्रजामण्डल आंदोलन, पृ. 70
5. पुष्करणा, महेश ; पुष्करणा संदेश फलौदी विशेषांक, पृ. 336
6. जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 691–92
7. पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 341
8. जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 710
9. पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 341
10. जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 714
11. (i) पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 337
    (ii) वही, पृ. 341

(iii). थानवी,बालकृष्ण;मारवाड़ लोक परिषद् के जन आंदोलन, पृ. 46

12. जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 716

13. (i) पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 341
(ii). थानवी, बालकृष्ण; मारवाड़ लोक परिषद् के जन आंदोलन, पृ. 43

14. (i) जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 716
(ii). थानवी,बालकृष्ण;मारवाड़ लोक परिषद् के जन आंदोलन, पृ. 43

15. पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 341

16. (i) जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 720
(ii) पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 340
(iii). थानवी, बालकृष्ण; मारवाड़ लोक परिषद् के जन आंदोलन, पृ. 38

17. पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 336

18. जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 721

19. (i) पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 341
(ii). थानवी,बालकृष्ण;मारवाड़ लोक परिषद् के जन आंदोलन, पृ. 46

20. जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 722

21. पुष्करणा, महेश; उपरोक्त, पृ. 341

22. (i) जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 723
(ii). थानवी, बालकृष्ण; मारवाड़ लोक परिषद् के जन आंदोलन, पृ. 77

23. जोशी, सुमनेश; उपरोक्त, पृ. 725

24. वही, पृ. 849

दिनेश गहलोत
व्याख्याता (इतिहास) रा.उ.मा.वि. बासनी तम्बोलिया, जोधपुर।
Mobile - 9783437797
Email- dineshgehlot1414@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 116-122

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी के दलित नाटक

डॉ. अनीश के.एन.

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चि–682022

साहित्य का समाज से अटूट संबंध है। समाज की बदलती हुई प्रावृत्तियों को साहित्य की विभिन्न विधाओं के द्वारा अभिव्यक्ति मिलने लगी। अन्य विधाओं की अपेक्षा साहित्य में नाटक का विशेष स्थान है। वह जनसामान्य के साथ अधिक निकट है। नाटक में ज्यादातर इंद्रियों का इस्तेमाल होता है। केवल पठनीय मात्र रह जाने से नाटक का महत्व नहीं होगा। समाज की सभी श्रेणी के लोग नाटक का अस्वादक बन सकते है। आम जनता को ध्यान में रखकर ही भाषा शैली, संवाद योजना सफल नाटक का गुण है। मनोरंजन के साथ–साथ समाज सुधार, जन जागृति आदि भी नाटक का उद्देश्य हैं। नाटक के क्षेत्र में एक आंदोलनकारी उपलब्धि है दलित नाटकों का आविर्भाव।

दलित चेतना और दलित आंदोलन के विकास के साथ– साथ दलित साहित्य और दलित विमर्श भी विकसित हुआ। दलित शब्द का अर्थ है– जिसका दालन और दमन हुआ हो। दबाया गया, शोषित, सताया हुआ, उपेक्षित, घृणित मसला हुआ, कुचला हुआ आदि। शरण कुमार लिंबाले ने दलित कौन है के विषय पर अपना यह मन्तव्य व्यक्त किया है– 'सर्वप्रथम दलित साहित्य में दलित' शब्द की व्याख्या निश्चित करनी होगी। दलित केवल हरिजन और बौद्ध नहीं। गाँव की सीमा के बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी 'दलित' शब्द की परिभाषा में आती हैं। दलित शब्द की परिभाषा में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं चलेगा। इसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना होगा।'[1] इस भेदभाव का मूल हिन्दू धर्म के वर्णाश्रम व्यवस्था ही है। स्वर्ण हिंदुओं द्वारा जन्म जाति के आधार पर अछूत और शूद्र का निर्माण किया गया। इतना ही नहीं, उसे धर्म के नाम पर डर पैदा कर शास्त्र द्वारा अशिक्षित, निर्धन, अस्पृश्य बनाए रखने पर मजबूर भी कराया गया।

दलित चेतना में दो शब्द हैं दलित और चेतना। दलित शब्द जातिवाचक नहीं है। किन्तु इससे समाज एवं समूह का बोध होता है। यह सामूहिक चेतना के अंतर्गत आता है। अतः डॉ. शरण कुमार लिम्बले के शब्दों में –'दलित साहित्य में दलित चेतना संघर्ष से नाता रखने वाली क्रांतिकारी मानसिकता है। मनुष्य को केंद्र मानकर जाति व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करनेवाली यह प्रतीति है।'[2] दलित चेतना गुलाम को गुलामी से अवगत कराती है। इस चेतना की प्रेरणा अम्बेडकारी विचार है। विख्यात दलित रचनाकार श्री. ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित शब्द की जो व्याख्या यों की है– "दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा। उसका दलन

हुआ शोषण हुआ, इस समूह को ही संविधान में अनुसूचित जातियाँ कहा गया है, जो जन्मना अछूत है।"[3]

आधुनिक दलित चिंतन पर बुद्ध, कबीर और ज्योतिबा फुले जैसे क्रांतिकारी महापुरुषों के विचार भी व्यापक परिलक्षित होता है। दलित विमर्श सदियों से सताए हुए लोगों की अभिव्यक्ति है। अस्वीकार, निषेध, संघर्ष एवं विद्रोह की आग आदि इसके अंदर आते हैं। दलित साहित्य मनुष्य को केंद्र मानता है। दलितों का दुःख, सुख, परेशनियाँ आदि को अपनी आत्माभिव्यक्ति के साथ लेखक प्रस्तुत करता है। लिंबाले जी के शब्दों में 'दलित साहित्य आह का उदात्त स्वरूप है।' दलितों की वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है। इसमें जो नकार और विद्रोह की भावना है, वह इसी वेदना का ही परिणाम है। वेदना और नकार के बाद की अवस्था ही विद्रोह है। विविध संस्थाओं जैसे भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दलित साहित्य की प्रकाशन संस्था, दलित रईटर्स फोरम, फूले अम्बेडकरवादी लेखक संघ, तथा सारिका (सं.कमलेश्वर) संचेतना (सं.महीप सिंह) आदि पत्रिकाओं का भी दलित साहित्य के विकास में अविस्मरणीय योगदान है।

अन्य विधाओं की अपेक्षा हिंदी साहित्य में शुरुआती दौर में दलित नाटक लेखन का कार्य नहीं के बराबर था। ज्यादातर दलित लेखकों ने अभिव्यक्ति के लिए आत्मकथाओं को अपना लिया था। हिन्दी के प्रथम दलित नाटककार या पायोनियर के रूप में अछूतानन्द हरिहर को माना जाता है। उनका लिखे दो नाटक प्रमुख हैं– 'मायानंद बलिदान' (1926) और 'रामराज्य न्याय' (1927)। 'मायानंद बलिदान' में संत मायानंद दलितों का उद्धार हेतु कार्यरत है।' उनकी साधना से प्रेरित रानी भी उससे दीक्षा लेती है। अछूतोद्धार का नारा ब्राह्मणवादियों को जब भाया नहीं, तब उन लोगों ने षड्यन्त्र रचकर राजा से मायानन्द का बलि दिलवायी। इस प्रकार दलित समुदाय के लिए मायानन्द को अपना जीवन त्याग करना पड़ा। वर्णव्यवस्था का एक और शिकार है मायानंद। यह नाटक आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि अछूतोद्धार के लिए लिकलते लोगों को अब भी खत्म किया जाता है। 'रामराज्य न्याय' राम द्वारा की गई ऋषि शंबूक की हत्या की प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। सन् 1936 में अप्पा साहेब टिप्पणी कृत 'दक्कनचा दीवा' नामक नाटक का मंचन हुआ था। इसमें पेशवा के समय में अछूतों के साथ किस प्रकार का व्यवहार होता रहता था, उसका वर्णन है।

बाबा साहब अंबेडकर ने दलित समाज के उत्थान के लिए जिन मूल्यों और मार्गदर्शन के तत्वों की हिमायत की। उन्हीं के विचारधारा को ही अंबेडकरवादी विचारधारा कहलाता है। उन्होंने दलितों को यह समझाया कि दलितों का नुकसान जितना स्वर्ण लोगों ने किया है, उससे कहीं अधिक अपनी खुद की अज्ञानता ने किया है। इसलिए उन्होंने इन लोगों के समक्ष शिक्षा और ज्ञानार्जन का प्रस्ताव रखा। शिक्षा से मुक्ति और शक्ति का समवाक्य उन्होंने पेश किया। उन्होंने 'पढ़ो–जुडो और लड़ो' इस त्रिसूत्र का समर्थन किया। दलित नाटक और रंगमंच पर अंबेडकरवादी विचारों का प्रभाव तो स्वाभाविक ही था। इन नाटकों में सामाजिक यथार्थ के बदतर स्वरूप का आँखों देखा चित्रण है। रत्नाकर बंधु के 'अपना देश' (1956), 'डॉ अंबेडकर', 'हीरे का पहचान', 'हमारा समाज' आदि नाटक तत्कालीन दलित जीवन के साथ न्याय करते हैं। शिवप्रसन्न दास ने 1959 में 'हरिजन' नाम से एक नाटक लिखा। यह नाटक जातीय भेदभाव पर चोट करता है। एकलव्य के ऐतिहासिक महत्व को उजागर करने वाला नाटक है 'एकलव्य' (1963) जिसका लेखक है ललई सिंह यादव। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से वर्णावादी अन्याय के प्रति विरोध तथा ब्राह्मणवादी साजिशों का सख्त विरोध किया।

उनके अन्य ऐतिहासिक नाटक हैं– 'वीर संत मायानंद बलिदान' 1984, 'अंगुलीमाल' 1986, 'वीरांगना

झलकारी बाई' आदि। उनके नाटक मंचन की दृष्टि से भी सफल हैं। एकलव्य को पात्र बनाकर लिखी हुई एक और नाट्य रचना है बिहारीलाल हरित की 'गुरु दक्षिणा' (1959)। इसमें निषदों एवं भीलों के विद्रोह को प्रस्तुत किया गया है। एकलव्य और शंबूक तो दलित इतिहास के नायक हैं जो ब्राह्मण व्यवस्था की स्वार्थपरता की शिकार के जीते–जागते उदाहरण हैं। एकलव्य के मिथक के ज़रिए आज के केई नाटककारों ने अपने मटकों मे आधुनिक शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त खोखलेपन को दर्शाने की कोशिश की है। गैर दलित नटककार शंकर शेष के 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक का भी अपना महत्व है। हरित जी का दूसरा नाटक है 'देवासुर–संग्राम'। इसमें उन्होंने व्यंग्यात्मक तरीके से देवसुर युद्ध का का वर्णन गीतों के ज़रिए प्रस्तुत किया है। इसमें नवीनता पाई जाती है।

दिल्ली में नैशनल स्कूल ऑफ ड्रामा की स्थापना प्रतिरोध एवं विद्रोही भावनासे युक्त दलित नाटक और रंगमंच के लिए मददगार सिद्ध हुई। इससे दलित रंगमंच को बड़े पैमाने में विकसित होने का द्वार मिल गया। भीमसेन संतोष जी का 'शोषितों के नाम संतोष का पैगाम' नाटक 1983 प्रकाशित किया गया। इसका भी नायक एकलव्य है। इसमें उन्होंने नायक के जीवन को सामने रखकर दलित समाज को अपने कसक से बाहर आने की प्रेरणा दी थी। उनका दूसरा नाटक है कर्मयोगी 'जिसमें अंबेडकर के संघर्षशील जीवन की अभिव्यक्ति हुई जिसने जनता को बहुत प्रभावित किया था।' सर्वेश कुमार मौर्य ने सही कहा था – 'जब भी इतिहास का नवीन सृजन करता हुआ, इतिहास पुरुषों को याद करता हुआ, नाटक लिखे गए, जब भी समाज का सच रखता हुआ, नाट्य सृजन हुआ, जब जब नवीन संस्कृति के निर्माण की जरूरत पड़ी, तब तब दलित नाट्य लेखन व प्रदर्शन हुआ।'[4] इस तरह दलित नाटक की परंपरा लगातार चलती रही। उन्नीसवीं सदी के आसपास यह ज़ोर पकड़ने लगा तथा बहुत सारे दलित नाटककार का इस क्षेत्र में रुचि होने लगी। विषय विविधता के साथ कई दलित नाटक उभरकर सामने आने लगे और प्रतिरोध का स्वर और भी मुखरित होने लगा। सर्वेश जी की राय में –'तकरीबन 60 से अधिक नाटककारों ने दो सौ से ज्यादा दलित नाटकों का सृजन किया है। इस उपेक्षित साहित्य की संख्या ही ने हमें आश्चर्य में नहीं डालती बल्कि उनके अंतर्वस्तु का क्रान्तिकारीपन भी सोचने को बाध्य करता है। मुख्यधारा का सभी आरोप जो दलित साहित्य पर अब तक लगाए, उसका शमन भी दलित नाटकों के अध्ययन से होना है।'[5] माताप्रसाद, मोहनदास नैमिशराय, कर्मशील भारती, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सुशीला टाकभौरे, मनोज कुमार केन, सुरजपाल चौहान, देव कुमार, कृष्णा पासवान आदि चर्चित दलित नाटककार हैं।

दलित नाटककारों में माता प्रसाद जी सिद्धहस्त लेखक हैं। उन्होंने बीसवीं सदी से लेकर इक्कीसवीं सदी तक निरंतर रचनारत रहे हैं। उनका पहला नाटक 'अछूत का बेटा' 1973 में प्रकाशित हुआ जिसमें अस्पृश्यता का निवारण हेतु रोटी–बेटी के संबंध की वकालत की गयी है। इसके एक लोक गीत में वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति दलितों का आक्रोश बुलंद है :–

'कहे हरिजन अछूत बनाया बालमा
धरती, पानी, हवा, एक बा, एक अहै भगवान'
नई दुनिया कहाँ से बसाया बलमा। कहे टेक
एक नियम से सब कोई जन्में, एक हाथ मुंह, कान

वाकई सबमें खून बहत बा, कुछ नाही अलगां।'[6]

नाटक का पात्र पंडित हरिप्रसाद नगर का प्रतिष्ठित ब्राह्मण पुजारी है। नाटक का एक और पात्र है तरुण जो रविदासी संप्रदाय या दलित समाज का व्यक्ति है। एक बार उसने मंदिर में प्रवेश किया तो हरिप्रसाद ने अपने सहयोगी रूढ़िवादी परंपरावादी लोगों से उसको पिटवाया। इस तरह नाटककार समाज में भेदभाव के विरुद्ध एक परिवर्तनोन्मुख बदलाव लाना चाहता है। धर्म के नाम पर होने वाले छल–कपट और धर्म की आड़ में दलित–निस्सहाय जनता का शोषण आदि तथा जातिभेद के पीछे छिपी हुई स्वार्थता इत्यादि का चित्रण उनके 'धर्म के नाम पर धोखा' नाटक में व्यक्त किया गया है। माता प्रसाद जी के 'वीरांगना झलकारी बाई (1997)' वीरांगना ऊदा' देवी 'पासी' (1997), 'तड़प मुक्ति की' (1999) आदि ऐतिहासिक महत्व रखने वाले नाटक हैं। इनमें दलित समाज के सामाजिक भेदभाव, उन पर होते शोषण, उनकी राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं और अंतर्विरोधों को उकेरा गया है। नायक मनोज दलित युवक है जो लखनऊ विश्वविद्यालय में एम.ए. का छात्र है। वह स्वाभिमानी, सत्चरित है। रामपुर दलित कल्याण समिति का अध्यक्ष है। वह एक बार मानुवादी पार्टीकीसदस्या सुषमा देवी को गुंडों से बचाता है अंत में उन दोनों का संबंध घनिष्ठ हो जाता है। उन दोनों का विवाह होता है। नाटक के अंतिम अंक में एक गीत के साथ मनोज का स्वागत किया जाता है – 'आओ मिलकर दलित जन जगाएं'। यह दलित विमर्श के स्तर पर बेजोड़ नाटक है। 'अंतहीन बेड़ियाँ' (2000), 'प्रतिशोध' (2000) आदि उनकी अन्य नाट्य–रचनाएँ हैं। इक्कीसवीं सदी के उनके नाटकों में 'धर्म परिवर्तन' (2002) महत्वपूर्ण है। इसमें अम्बेडकर जी का बौद्ध धर्म स्वीकारने की ऐतिहासिक घटना का चित्रण है। यह नाटक दलितों को अपने दलन से मुक्ति के लिए किस प्रकार अपना धर्म तक छोड़ना पड़ता है, इसके आश्चर्यजनक तथा कड़वे यथार्थ को लोगों के समक्ष रखते है।

मंदिर प्रवेश के विषयों पर दलित और सवर्ण के बीच अंब भी कहीं–कहीं संघर्ष चलते हैं। इस विषय के आधार पर लिखित नाटक है कर्मशील भारती का 'मंदिर प्रवेश' (1989)। इसमें मंदिर प्रवेश के लिए अडिग रहने वाले दलित लोग और उसे रोकने वाले सवर्णों के संघर्ष के बीच मंदिर में कुछ नहीं, शिक्षा का महत्व समझने और समझाने का प्रयास हुआ है। नाटक में बदलाव के लिए भी आह्वान है। रत्नकुमार गांभीरीय के नाटक 'उजास' में धूर्त सवर्णों के बहकावे में फंस गए निरीह दलित लोगों का चित्र एक तरफ है तो दूसरी तरफ प्रगतिशील युवकों का संघ है जो दलित उन्नति के लिए प्रयास करता है। फिर भी दलित जनता का साथ नहीं मिलता। ब्राह्मणवादी लोग इन्हें धार्मिकता का भय दिखाकर दमन करते हैं। अंत में उन्हें अपनी हालत का बोध होता है और उलके लिए मंदिर प्रवेश जैसे विषय गौण होते हैं। वे अपने अधिकारों से वाकिफ़ होते हैं। इस तरह उनके जीवन में उजास आता है। उनका दूसरा नाटक 'वीमा' में विकलांग समस्या को उठाया गया है। दलित विद्रोह का जीवंत रूप मोहनदास नैमिशराय के नाटक 'हैलो काम्रेड' में देखा जा सकता है। नाटक का पात्र स्वयं आक्रोश का स्वर बनकर सामने आता है। वह अपनी बहन की बलात्कारी का कत्ल करता है और इसके साथ वह दकियानूसी तंत्र को त्याग करने तथा दलितों को अपने हितमें स्वतंत्र मूलक जीवन बिताने के लिए संघर्ष करने का आह्वान करता है।

दलित नाटककारों में प्रमुख हैं सुशीला टाकभौरे। उनका नंगा सत्य नाटक में दलित मुक्ति का आह्वान है और शोषण के प्रति संघर्ष है। 'रंग और व्यंग्य' (2000) में हाशिएकृत समाज के उत्पीड़न, मुक्ति के लिए ललक

आदि का चित्रण है। नाटक की छब्बो प्रगतिशील नारी पात्र है। उनका प्रतिरोध एवं प्रतिक्रियावादी स्वरूप नाटक के शुरू में ही परिचित होता है। पटेल की बेटी की शादी की दावत में बचे जूठन को अपने बच्चों को खिलाने के वास्ते उठा लेने केलिए कहा गया तो

'छब्बों : (सहज भाव से) पटेल जी, मेरे घर बहुत जानवर हैं बकरा बकरी, कुत्ता–बिल्ली, सूअर– .. उनके लिए ले जा रही हूँ।

पटेल : (एकदम गुस्से के साथ) क्या कहा? हमारे घर के पकवान तू अपने जानवरों को खिलाएगा? शुद्ध घी में बने पकवान .... पूरी .. हलवा ,,, लड्डू .. मिठाई .. इतने कीमती पकवानों की जूठन क्या जानवरों के लिए है?.. नहीं ऐसा नहीं हो सकते हैं ..।

छब्बों : (गंभीर भाव से) इसमें कोई जबरदस्ती थोड़े ही है।

पटेल जी, ये तो मरजी की बात है।'[7]

सावर्णों के दिमाग में यह बात स्थिर रह गयी है किनिम्न तबके के लोग सदैव इनके जूठन खाए, इनकी गंदगी साफ करे तथा हमेशा इनके पैरों तले जिए। इस बात का सबूत पटेल के अहंकार से ही मालूम पड़ता है। इतना ही नहीं, जब छब्बो जूठन उठाने को इन्कार करती है, तब गुस्से से आगबगुला होकर पटेल कहता है – 'तुम लोग बहुत गर्रा गए हो। हिन्दू महाजनों की जूठन बहुत पवित्र होय है। नसीब वालों को बड़े नसीब से मिले है ये जानवरों के लिए नहीं है, समझ गई ..?[8] इसमें ब्राह्मण मेधावी विचारधारा का पर्दाफाश भी हुआ है। छब्बो बिना जूठन लिए जब चली जाती है तब पटेल गामा पहलवान से यह कहता है कि अगर ये लोग जूठन लेने से मनाकर रहे हैं तो हम क्या करे। तब गामा जवाब देता है कि उनके जानवरों को खिलाने ले चलते है। तब पटेल का पाखंड इस तरह सामने आता है तो वह बोलता है अगर उनकी गाएँ, भैंस जूठन खाए तो उनका दूध भी जूठा बन जाएगा। इस प्रकार सुशीला जी ने सवर्ण–बुद्धिहीनता को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। छब्बो की माँ छउआ जमादारिन गाँव में एक मंदिर बनवाना चाहती है। लेकिन छब्बो इससे सहमत नहीं है। अपनी बेटी शालू से वह कहती है –'ऐसे मंदिर बनवाने का भी कोई लाभ नहीं इससे ज्यादा यह अच्छा होता .. इन्हीं रुपयों से वह अपने जात समाज की भलाई करती। मां–बाप की गरीबी के कारण जो बच्चे नहीं पढ़ रहे है उनके पढ़ने की व्यवस्था करती बेरोजगारों के रोजगार के लिए कोई काम धंधा शुरू करवा देती तो लोग उसका नाम लेते उसका एहसान मानते।'[9]

छब्बो की सोच प्रगतिवादी है। छब्बों की बेटी शालू खेलकूद में आगे है। वह प्रतियोगिता के लिए सहेलियों जैसे हेमलता और शुभलता के साथ दूसरे गाँव मे जाती है। हेमलता की मौसी जी के घर मे रहने का इंतजाम करवाती जबकि वे सब सवर्ण हैं। मौसी जी को शालू की जात का पता लगते ही उससे अनमने भाव से पेश आती है, भेदभाव करने लगती है। उसको अपमानित कर किसी लड़के के साथ उसी गाँव का अपना मामाजी के घर भेज देती है। छब्बो इससे क्रोधित होती है। शालू अपनी मामा की बेटी मालती के साथ बाहर होके आते वक्त खिमिया के कुंए से पानी पीती है। बकरीवाला जो खुद को इन लोगों से उच्च जात का मानता है, मालती के घर आकर शिकायत और अपमान करता है। छब्बो की भाभी तारा दुःखी होकर मालती को मारती है तो छब्बो रोकती है। छब्बो तारा को अपने अस्तित्व को पहचानने तथा अपने अधिकारों के लिए विद्रोही बनने और अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की सलाह देती है।

नाटक का खिमिया के माध्यम से यह पता चलता है कि जो खुद भेदभाव का शिकार है, वह दूसरों को भेदभाव दिखाता है। लोगों के मन–मस्तिष्क में जकड़ी हुई जाति–पाँति का अनावरण नाटक में हुआ है। छब्बो का क्रान्तिकारी तेवर एक हद तक दलित नारी के मानस पर प्रतिक्रिया लाने में मदद कर सकता है। वह तारा को सर पर पर्दा ओटने के संदर्भ में कहती है – 'भाभी दुनिया को अपनी आँखों से देखो। लोगों को समझो और उनका सामना करो, तभी तो तुम सही बातों को समझ पाओगे मूँह छिपकर जीने में अपमान सहने में समझदारी नहीं है। इस बात को समझ लो'।[10] इस प्रकार परंपरा को तोड़ने का आह्वान भी छब्बो देती है। उसकी बातों से प्रभावित होकर छउआ मंदिर के स्थान पर स्कूल बनाने का निर्णय लेती है। सवर्ण नीति पर पूरा नाटक व्यंग करता है। उनकी नकली परिवर्तित मानसिकता पर वह खिल्ली उठाती है। अम्बेडकरी विचारधारा से छब्बो प्रभावित है। इसका ज़िक्र भी संवादों में पाया जाता है – 'देख लिया सबका हृदय परिवर्तन, ऐसा हुआ था। आ गई मन की बातें सबके सामने। हमें ऐसा हृदय परिवर्तन नहीं चाहिए। हमें गांधी जी के बताए रास्ते पर नहीं चलना है। हम डॉ. अंबेडकर के बताए रास्ते पर चलेंगे–शिक्षा संगठन और संघर्ष के रास्ते पर, हम अपने अधिकारों के लिए खुद संघर्ष करेंगे'।[11] दलित लेखन में दलित आत्माभिव्यक्ति का चित्रण मिलता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि गैर दलितों द्वारा दलित विषय को लेकर लिखे गये साहित्य का कोई महत्व नहीं है। कुसुम कुमार द्वारा रचित 'सुनो शेफाली' नाटक इस दिशा में महत्वपूर्ण है। शेफाली इसका केंद्र पत्र है। वह एक दलित युवती है तथा स्वाभिमानी भी है। जाति के नाम पर मिलने वाली सुविधाओं को वह अपमान मानती है। वह शोषण और व्यवस्था से लड़ती है।

दलित समस्याओं को लेकर लिखा गया एक और नाटक है स्वदेश दीपक का 'कोर्ट मार्शल।' इसमें भारतीय सेना में फैले दलित अत्याचार का पोल खोल गया है। इसका नायक रामचंद्र एक दलित व्यक्ति है। वह बख्तरबंद रेजमेन्ट का जवान है। वह दौड़ में अव्वल आता है। उसकी जाति से उसकी कामयाबी से मोहन वर्मा और कप्तान कपूर जैसे सवर्ण जवान तिलमिला उठते हैं और भेदभाव करते हैं। वे उसे रामचन्द्र नाम से पुकारने में भी कतराते नहीं है, क्योंकि वह भगवान का नाम है कप्तान कपूर उसे 'ओए चूहड़े देपुत्तर', 'हरिजन', आदि पुकारते हैं। वे दोलों मौका मिलते ही जात के नाम पर उसे अपमानित करते है। एक बार किसी बच्चे ने टट्टी की तो कपूर उसे साफ करने के लिए रामचन्द्र से कहते है। वह इन्कार करता है तो कपूर उसे अपमानित करते हुए बताता है–'जात का चूहड़ा और टट्टी उठाने में शर्म आती है। तुम्हारे पुरखे, पुश्तों से हम लोगों की टट्टी की टोकरी उठा रहे है।'[12] रामचन्द्र की शिकायतें उच्च अधिकारी अनसुना कर देते हैं। एक दिन कपूर ने रामचन्द्र को गाली देकर कहते हैं कि 'चिट्टे चूहड़ेहराम की सट्टा तेरी माँ जरूर किसी कपूर या वर्मा के साथ सोयी होगी'।[13] इतना अपमान जात के नाम से, वह भी एक सैनिक को। यह है सत्ता का अंतर्विरोध। रामचंद्र गोली चलाता है तो मोहन वर्मा पर लग जाती है और उनका कोर्टमार्शल की जाती है। जातिभेद और काबिलियत का द्वन्द्व सदैव बना रहता है। नाटककार ने नायक के माध्यम से किसी भी क्षेत्र में दलित के ऊपर होने वाले अत्याचारों का खुलासा किया है। कपूर और वर्मा जैसे लोगों की सामंती मानसिकता का विनाश करके दलितों को अपने स्वाभिमान को परिरक्षित करना ही है।

दलित साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। उसके मूल में लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों की पुनः स्थापना है। वह सत्ता के शोषण एवं दमनकारी नीति के खिलाफ आवाज उठाता है। दलित नाटकों मे लोकभाषा, लोक

शैली, और लोक मंच का समावेश है। शोषण, अन्याय, अस्पृश्यता, दमन नीति, अमानवीय व्यवहार, हाशिएकरण की समस्या, उच्च वर्ग का ढोंग, सत्ता की दोयम नीति, इतिहास का पुनर्मूल्यांकन, धार्मिक पाखंड का खुलासा, अस्तित्व की पहचान तथा बचाव तथा उत्थान के लिए प्रेरणा, स्वाभिमान से जीवित रहने की माँग, शिक्षा का महत्व, अन्याय के खिलाफ लड़ाई, अधिकारों के प्रति जागरूक रहने की आवश्यकता, सामाजिक यथार्थ से अवगत कराना, सुधार लाना, सामाजिक बुराइयों पर प्रश्न उठाना आदि दलित नाटकों का मुख्य तत्व है। सबसे बढ़कर प्रतिरोध की आवाज़ बुलंद करना दलित नाटक के प्राण तत्व समझना चाहिए। दलितों को समाज में व्याप्त गंदगी को साफ करने का कार्य सौंपा गया था। वास्तव में वर्ण व्यवस्था ही सबसे बड़ी गंदगी है। इसे मिटाने का, नया समतामूलक समाज की स्थापना करना इत्यादि पर पुरजोर प्रयास पूरे जोश के साथ दलित और दलित लेखन कर रहा है।

संदर्भ :-

1. शरण कुमार लिंबाले –दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. सं. 42
2. वही, पृ. सं. 44
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ. 14
4. सर्वेश कुमार मौर्य (सं)–दलित नाटक की आलोचना–पृ. सं. 16
5. वही, पृ. सं. 16
6. माताप्रसाद–अछूत का बेटा, पृ. सं. 20
7. सुशीला टाकभौरे– रंग और व्यंग्य (नाटक संग्रह)–पृ. सं. 22
8. वही, पृ. सं. 23
9. वही, पृ. सं. 32
10. वही, पृ. सं. 42
11. वही, पृ. क्र. 45
12. स्वदेश दीपक–कोर्ट मार्शल, पृ. सं. 78
13. वहीं, पृ. सं. 89

मो. 9446426447

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 123-127

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

SIGNIFICANCE FACT OF PURITAN AGE

SHASHI KUMAR

(ASSISTANT PROFESSOR IN DEFENCE DEGREE COLLEGE, (AMANI) TOHANA, FATEHABAD)

Abstract :-

After the death of James I in 1625, Charles I took religious persecution to the first level, He was asked by the Parliament of rights and he show continued disregard.

He was suffered unsuccessful for the foreign thought to France and other. In 1642 after the "Civil war" there are dividing into the Cavaliers and Royalists.

In this age the middle class was in the favour of the Parliament they were thing about their right to show their activity, after the civil war. In this age the war was successful to make the Puritan to set up the common wealth many writer was able to show their thoughts and idea in the civil war biggest dramatist in age. They found many other issues in the society and the socialism in their countrymen and other country people of their propose was the thinking of the people in sixteen century and found their thought and views Oliver Cromwell was successful to galvanize a military dictatorship during the protectorate up still 1660 cuhen the monarchy was restored under the king and queen in sixteen century puritans knows American land to search the land to freedom of religious Anglican search and the high church the persecution. Freedom of the religious search many writers of the age was successfully find out the magic of the age. They search the land of America and the other civil was famous country and writer find their job during the middel of the Century.

The Puritan found big culture and political role in crystallizing in the American life there importance in the culture and the religious and the enlightenment from the bedrocks of new settlement culture of the age.

The prominent writers of the age were John Winthrop, Edward Taylor, William Bardford they wrote about the Puritans life in terms hardworking and the most part of honesty of the flok of the age.

John Winthrop write the Puritan life about the spiritually power of the Puritan life and their manner and their objective describe the various enterprise of the age. In their routine life there were many actively of their life, which effective their life like, farming, trading, governance, etc. of the age

the most important writer Milton famous work of "Milton" "Paradise Lost" and Paradise Regained most popular thinking of the age describe the governance, political view of the age.

And some other famous work of the age which describe the situations of age which describe the situations of the time like Sir Thomas Brown's "Religio Medici" "The Pilgrim's Progress" and "Walton's complete Angler" describe the conditions of the land and view of the people their thought of manner of the countries people.

Introduction :-

In this age first person desoibes common place in the writing journals and their diaries they were personal accounts of early American colonists depicting tales of travelling to the new land, immigration people and their every day straggle of life. American selters had left their families back in England. It's time the act of American peoples famous in writing and their situations of the time was very conflict and sorrowful to their families, Religious, sermons, historical, journals are the main point of the age. They depicts the socialism and to find the freedom of religious and historical manners.

Religious and political, idealism, the common themes of Puritan age. The religious discourse emphasised the concept of predestination and inevitability of sin and strong of guilt. The Puritan age was the age of confusion to breaking the old ideas and old thoughts, The main less surly the idea of nation church and absence of any fixed standard of literary criticism their was nothing exaggeration of the metaphysical. The poetry took new direction of the age and their view like writer "Donne" and "Herbert" and prose like "Burton's" Anatomy of Melancholy" for an effort to institute presbyter am from polity for the church of England other Puritans, coucerned with the long delay in reform they rem formation not without any successful in their lye. The try to separatists their sfote of church and based consent with their God and themselves, and England fashioned for the commonwealth according their work of church.

Cambridge platform point the Puritan colonies from the cruch of government.

The realism of people realigning the Holy commonwealth which situtated by the community who was laid to the American colony like, "Virgina" "Thomas Date" Yet a big opportunity came to know in England, the middle way Between Presbyterianism and separatism.

A fect of natural phenomena like the earthquake including flood and fire were found.

Many thematic works included thinking idea or regeneration they were topical manifestations a straggle know worl and spirituality was also explored.

They writing utsely about the Biblical style and demonization of the nature Indians described Satanism. They have generally received discover of fact in the political view for socialism only filds

up their stage for the common people of the society and perhaps a know nearly view of the prinaples which they situated their terms and their value of life. It is the truth that the spectators and always in their view and knowledge the first they come to know certain number of lines reacted with just elegant modulation. The English civil was a series an conflicts political standards of the Puritans. Theological tracts and religious verse or political treatises replaced in romantic poetry.

"According to Johan Richard" in the society was a great moral change in people and become a book they say Bibile in their works. England divied in to religion and political thought in puritan age mainly sadness and passionism no any romantions, "John Milton" is the main poet of the age so called the also Milton age, the Puritan people wants to purely puritan to known their religion and group a charl and second of Parliaments.

Review Study :-

Most major poet of the age was know "Milton" and many other famous poet of the age like, Robert Herlck William Ground, "William Drummond" Georage other etc. The show the age to people humajion and culture of the time which was the manjol think of the state of country to each other country, depets the thematic ranges of religioures and political and sin of the age diversion to an country of their point. William Haribt contend that the design of "Parodise Lost" is a Perfect as its execution is lofty. It was Mattau Arnold who described the style of Parades lost "Lost as the grand style" where the high seriousness of poet is expressed in an equally subline language. 'That is why Arnold calls millton is style in Paradise lost as 'sure and flowers perfection of rhythm and diction that makes the poem of the noblest and specimen in the world of eloquence and has many. Paradise lost ethical justification of the "The fall of Mon" in which is case of making an equally subline and grand style Milton also justifies. The ways God to man Inversions and suspensions in which the main verb is studiedly held up as displaced in order to create an added effect upon the seeders, are meticulously, employed by Milton to left, the Bibile theme of the fall to the level of universal significance. For example the very opening of the poem is a such suspensions are used 23 lines times in Book I of Paradise lost alone followed by inversions like satan's address to Beeldebub.

There is a frequent use of self-coined words like hell doomed and Embroon atoms along with the use of double negatives like Nor did they not perceive etc. which made English language obey the logic of passion as perfectly as the Greek and Latin.

Elizabethan literature with the all diversity hard a sprit of resulting which is devation to queen with their whole mistake to queen with their whole mistake and was considered fist the place of welfare of the nation according the struarts the whole was changed. Country was divided in the religious and political view of the country people, they search of religious he pillowing say that age was sadness

and hope even Elisabeth literature hours was brightness.

Elisabeth literature was sentiments of youth and romantic and romance was the first of the youth and believes all things, even the impossible. The Elijabethan literature has mediaeval theology. The lyric and love poem original thinks are most powerful matter which interllectual sprit takes its place with the wide area. In the age romantision with heart for youth is the most impartant part of life. They convey over all view views was the fllking of heart and emotion, expresses in the poem, but poetry is only a expression of this time. But there was only three main think Puritan literature was different of preceding age.

The mainly Metaphysical given by Dr. Johansons he describe but not expressions of the followers of Donne the car less temper of the cavaliar poet brings who followed king and the little was called spenser, while his romantic castle of everywhere and get the puritansion which confusion expressed of the period we know Jacobean poets, but we can say transitions poet of the period.

In the age religiously is the greatest power of the age ferment which marked beginning of reformation very big matter was ideal nation church. Those who speak the cavalier of the university seek, for strained imaginary and fantastic life of the age. "Herbeat" poetry found the abundance it expresses the deep knowledge, which finds deep feelings in the sea human serce. That religious lyrics even that was most artificial in this time "Izaak Walton he expresses the gentle spirit of the Herbert poetry. He was born at Montgomery castle! Wales 1593, of a noble Welsh family. In the course of university was very successful of his work and courses which can say very brilliant study was regarded powerful beautiful viewer of the age, after the graduation he waid the long hope for the preferment of the court cuhen he was till thirty seven a little church Bemerton. He lied among the plaid people, which happint and all thinks is be blessing, we can suggested that his brief work less than three years that his brief work less then three years without cuft consumption, that was remarkable.

Herbert main work was knows as plinth of the age, he was knowns as that his wisdom and ideas were sigincance for the readers of the tims many problem with their solutions was reacted his work chief work of Herbt's "The Temple," was sists of over one hundred and fifty peom which suggested to the "Cruch" the whole expresses the christen life in his work which show in his first poem " The Church Porch" which the least poltical, its is very powerful and success word of the poet describe of the thematic range of humanism and thaug less of the country, wonderful collection sermons. The moral lesion suggested chaucer's hood counsel Pope's essay of man. "The Temple" poem is the most significance suggestive is "The Pilgrimage" and founded the six stanja and even every lines is closed with the area test thought of the work.

REFERENCES :-

1. Ronald carter and John Mc Rae – The Routledge History of literature in English, Third edition published 2017, by Routledge, 2 Park squre, Milton Park, Abingdon, Oxon OX144 RN and by Routledge 711 Third Avenue, New York, NY 10017, P-104
2. W.H. Hudson – An introduction to the study of English literature, Maple press private limited sales office A 63, Sectory 58, Noida 201301, UP India P-215.
3. William J. Long, English literature its a history and its significance for the life of the English speaking world. First edition published in 2013 by Twenty first century publications # 79 Sheikhpura, PO Punjabi University, Patiala (PB) 147002. P.207.
4. M.H. Abrams Geoffrey Galt Harpham (Aglossary of literary terms) first Indian reprint 2015 P-219.
5. Dr. Tajindar Singh A history of English literature (Student store 35A-1 civil lines Rampur garden Bareily – 243001) twentieth Revised and enlarged edition 2013-14 fifth reprint 2018-19 P-310.
6. Bhim S Dahiya A new history of English literature published by Doaba publications 4497/14, Guru Nanak market, Nai Sarak, Delhi 110006 P 239.
7. Edward Albert oxford history of English literature published 2021. Oxford university press P.117.
8. William Henry Hudson – An outline history of English literature, Atlantic publishers & distributors (P) Ltd. B-2, Vishal Enclave, opp. Rajouri Garden, New Delhi – 110027. P-117.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 128-132

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लोकतंत्र में संसदीय संस्कृति की संकल्पना

डॉ. ब्रजकिशोर

सहायक आचार्य, राजनीति–विज्ञान विभाग राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर।

प्रस्तावना :–

लोकतांत्रिक शासन पद्धतियों में सबसे आधुनिकतम एवं अच्छी शासन प्रणाली संसदीय प्रणाली हैं। संसदीय शासन व्यवस्था में जनता को अपनी अस्मिता और अस्तित्व को अक्षुष्ण रखने का अवसर मिलता है। लोकतंत्र में विचार स्वतः आकार ग्रहण करते हैं, इन्हें थोपा नहीं जाता। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान सभा ने गहन विचार के पश्चात ही देश में संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाया। इस प्रणाली के माध्यम से देश का हर मतदाता अपने प्रतिनिधि के माध्यम से न केवल कार्यपालिका का चयन करता है बल्कि विधायिका (व्यवस्थापिका) के माध्यम से कार्यपालिका पर प्रभावी नियंत्रण भी रखता है। भारत का लोकतंत्र आज उथल पुथल के दौर से गुजर रहा है। हमारे देश की राजनीति एक दलीय स्वरूप से प्रारंभ होकर बहु–दलीय राजनीति की ओर करवट ले रही है।

आज राष्ट्रीय राजनीति अशिक्षा, गरीबी तथा जातिवाद जैसी बेड़ियों तथा कुरीतियों से आंचल छुड़ाने की जद्दोजहद से भी दो चार हो रही है। सामाजिक समता संसदीय लोकतंत्र की रीढ़ है। आर्थिक विषमता लोकतंत्र के लिए घातक है। जिस देश की बहुसंख्यक आबादी घोर निर्धनता में जीवन व्यतीत करती हो वहीं मुट्ठी भर लोग विलासिता में डूबे रहते हैं, यह लोकतांत्रिक सरकारों के अस्तित्व के लिए एक गहन चिन्ता का विषय है।भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। हमारे राष्ट्र निर्माता विखंडित राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोकर भारत को एक महान राष्ट्र बनाने के लिए उत्सुक थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि सिर्फ संसदीय लोकतंत्र ही परस्पर विरोधी हितों वाले समूहों का संरक्षण एवं संपोषण कर सकता है तथा राष्ट्र के संघटक तत्वों में पारस्परिक सौहार्द, आदर भाव तथा संकट की घड़ी में धैर्य की अपेक्षा रखता है। सक्रिय लोकतांत्रिक व्यवस्था में अनुशासन स्वतः स्वीकार किया जाता है। संसदीय लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए राजनीति को नैतिकता से अलग करने के कुचक्रों से हमे अपने को मुक्त रखना होगा।

संसद को संविधान में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन लाने का एक महत्वपूर्ण तंत्र माना गया है। इसके माध्यम से सरकार के कार्यकरण पर निगरानी रखी जाती है और समाज की भलाई के लिए उसके निष्पादन को लागू करना होता है। संसद में जनसमस्याओं को उठाने के लिए सदस्यों के पास कई संसदीय साधन उपलब्ध होते हैं। सांसदो द्वारा संसदीय संस्थाओं और प्रक्रियाओं के समुचित सदुपयोग से ही कार्यपालिका के दायित्व के लक्ष्य को पाया जा सकता है। संविधान निर्माता डॉ भीमराव अंबेडकर को दृढ़ विश्वास था कि संसदीय लोकतंत्र ही

हमारे देश के लोगों की आशाओं और आधुनिक समय की मांगों को पूरा करने में समर्थ होगा। यदि हम विश्व के इतिहास पर नजर डालें, विशेषतः ब्रिटेंन तथा अन्य पश्चिमी देशों पर जहां संसदीय लोकतंत्र जन्मा व सफलतापूर्वक चल रहा है, तो हमें पता चलता है कि संसदीय लोकतंत्र का विकास धीरे–धीरे हुआ। पर हमारे देश में इस पद्धति का विकास निरंतर हो रहा है। निष्कर्षतः संसदीय लोकतंत्र हमारी धरोहर है। इसको जीवंत बनाए रखना हम सभी का प्रथम दायित्व है। यह ससंदीय प्रणाली की विशिष्टता है कि प्रत्येक राष्ट्र जीवन के बदलते ढंग के अनुरूप अपने आपको बदल लेता है। अपनी तमाम विफलताओं के बावजूद हमें पूर्ण विश्वास है कि संसदीय शासन प्रणाली के माध्यम से हम महान भारत के निर्माण में अपनी भूमिका निभा सकेंगे।

संसदीय संस्कृति का उद्‌भव :–

संसदीय संस्कृति मानवीय चेतना, संस्कार एवं सभ्यता का समन्वित रूप है। यह नागरिकों में राजनीतिक व्यवस्था के प्रति प्रभावी निष्ठा एवं मूल्य निर्धारक अभिवृत्ति उत्पन्न करती है तथा राजनीतिक व्यवहार को मर्यादा निर्धारित कर उसमें शालीनता, शिष्टता, सामंजस्य, सहयोग, सहिष्णुता एवं धैर्य जैसे मानवीय गुणों का सृजन करती है। सभ्यता और संस्कृति का इतिहास न्याय और मानवता का इतिहास रहा है। संसदीय संस्कृति का उद्‌भव एवं विकास ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में राजा एंव सामंतों के बीच अधिकारों, सुविधाओं एवं सत्ता में हिस्सेदारी हेतु छिड़े लंबे संघर्ष के संदर्भ में हुआ है। वह चेतना वास्तव में प्रजातांत्रिक व्यवस्था का प्राणतत्व है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था की सफलता अंततः संसदीय संस्कृति की सफलता पर ही निर्भर करती है। संसदीय संस्कृति की कुछ मान्यताएं भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से ही विद्यमान हैं। संसदीय संस्कृति की मूल संकल्पना है कि किसी भी समस्या के संबंध में अंतिम निर्णय होने से पहले उस पर स्वतंत्र रूप से विचार विमर्श हो, खुलेआम आलोचना एवं प्रत्यालोचना हो तभी आम सहमति या बहुमत से निर्णय लिया जा सकता है, निर्णय भी अनिवार्य रूप से लोकहित में हो। 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' की भावना हमारी भारतीय संस्कृति की देन है। जहां संसदीय संस्कृति राजनीतिक दर्शन का व्यावहारिक पक्ष है संविधानवाद एवं लोकप्रिय संप्रभुतावाद की जननी है तो भारतीय संस्कृति मानवतावाद की। संसदीय संस्कृति दो तरह की है।

वैदिक काल में शासन प्रबंध लोगों की एक सभा द्वारा किया जाता था। महाभारत काल में पौर (सभा), राजा के अवैध कार्यों के लिए पदच्युत और निर्वासित कर सकती थी। रामायण काल में राम के राज्याभिषेक के लिए राजा दशरथ द्वारा सभा को बुलाये जाने और उसकी सहमति प्राप्त किए जाने का उल्लेख मिलता है। बौद्ध काल में भी कई छोटे–बड़े गणराज्यों का उल्लेख आया है।ईसा पूर्व वैदिक काल से मानव संस्कृति के प्रादुर्भाव, तदुपरांत श्रमण संस्कृति की स्थापना, जैन धर्म एवं श्रावक संस्कृति का प्रचार–प्रसार एवं जैन संस्कृति के जीवन के प्रति निरोधात्मक अभिरूचि की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कर्मकाण्डी वैदिक संस्कृति एवं कैवल्य ज्ञान की उत्तम अभिलाषा लिए हुए अनेकांतवाद की ओर बढ़ते हुए जैन धर्म की निरोधात्मक प्रवृति ने बौद्ध धर्म की करूणा, दया, अहिंसा और सम्यक् मार्ग को प्रोत्साहित किया। इतिहास साक्षी है कि भारत वर्ष की इस संस्कृति की समस्यापूर्ण कमभूमि में राजतंत्रों का उत्थान–पतन, वैचारिक दर्शन एवं जीवन मूल्यों के उन अनिवार्य सिद्धान्तों पर आधारित था जिनके अनुसार बदलते हुए युग के परिवेश में जन सामान्य की आवश्यकताएं, आशाएं और कर्त्तव्यों तथा कर्मों की रूपरेखा, रंगरूप और आकार लेती रहती हैं तथा संतों ने इन्हीं रूप–रेखाओं को धर्मों के माध्यम से उकेरा है।

संसदीय संस्कृति का प्रथम शब्द अंग्रेजी शब्द 'पार्लियामेंट' का अनुवाद है, जो फ्रेंच शब्द 'पारले' से लिया गया है जिसका अभिप्राय है विचार–विमर्श के लिए सभा। 'पार्लियामेंट' शब्द का प्रयोग ग्यारहवीं शताब्दी के 'चेसाद रोला' नामक दस्तावेज में मिलता है जहां इसका अर्थ है दो व्यक्तियों में परस्पर बातचीत। जब पहली बार यह शब्द ब्रिटिश सम्राट द्वारा आहूत सभाओं के लिए प्रयुक्त हुआ तब इसका अर्थ था संसद या विचार–विमर्श कार्यक्रम। संसदीय संस्कृति, संसदीय तंत्र एवं संसदीय शासन प्रणाली एक ही राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न पहलू हैं जो कालान्तर में ठोस स्वरूप ग्रहण कर प्रजातंत्र को संबल रूप प्रदान करते हैं। संसदीय तंत्र एक राजनीतिक ढ़ांचा है, संसदीय प्रणाली उस ढ़ांचे को गति प्रदान करने वाले संस्कारों का समुच्चय कानूनों से है, जबकि संसदीय संस्कृति का संबंध आम नागरिकों के आचरणों एवं अभिवृत्तियों से है और संस्थाओं के आपसी संबंधों को नियमित करने वाली प्रक्रिया एवं मूल्यों से है। राष्ट्र विशेष की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रचलित सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों एवं परम्पराओं पर संसदीय संस्कृति का विकास निर्भर करता है।

संसदीय लोकतंत्र एवं विधायिका की संचलनात्मकता :–

संसदीय संस्कृति के विकास एवं सुदृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि जनप्रतिनिधि सदन में अनुशासित एवं शिष्टाचारपूर्ण आचरण तथा शालीन एवं मर्यादापूर्ण व्यवहार करें। मनुस्मृति में जनप्रतिनिधियों के निर्धारित मापदंड के संबंध में जो लिखा है उसका तात्पर्य है कि ''या तो सभा में जाना ही नहीं चाहिए या सभा में जाकर कुछ नही कहना अर्थात् विवादित विषय को जानकर भी किसी भय से या पक्ष लेकर सत्य भाषण को छिपाने के उद्देश्य से कुछ नहीं कहने वाला मनुष्य पाप का भागी होता है।'' कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी सभा के सदस्यों के कर्त्तव्यों का उल्लेख मिलता है कि ''एक सदस्य को सभा के दूसरे सदस्य की निंदा कदापि नहीं करनी चाहिए और न ही उनके व्यवहार की भर्त्सना करनी चाहिए। उसे ऐसा वक्तव्य नहीं देना चाहिए जो सभा के सदस्यों की गरिमा के प्रतिकूल हो अथवा जिसकी उसे प्रत्यक्ष जानकारी न हो अथवा अविश्वसनीय या मिथ्या हो।''

हमारे संविधान निर्माताओं की मान्यता थी कि लोकतंत्रीय प्रणाली इस देश के लोगों की प्रतिभा, चिन्तन, परम्परा और अपेक्षाओं के सर्वथा अनुकूल है। इसीलिए उन्होंने संसदीय लोकतंत्र को शासन की प्रणाली के रूप में आपनाये जाने की संस्तुति की थी। लोकतांतित्रक मूल्यों के प्रति लोगों की आस्था का ही परिणाम है कि अनेक चुनौतियों के बावजूद संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली न केवल बरकरार है बल्कि विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में समादूत भी हुई है। भारत में संसदीय लोकतंत्र की परम्परा इस दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है कि पड़ौसी देशों और विश्व के कई देशों में, जहां संसदीय लोकतंत्र सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दबावों के कारण टूटता बिखरता रहा है, वही भारत में यह हर चुनौती के बाद पहले से कहीं अधिक सृदृढ़ हुई है।संसदीय प्रणाली की मर्यादा,अनुशासन, नियम पालन, अध्यक्ष तथा सदन की गरिमा को अक्षुष्ण बनाए रखने में है। संसदीय संस्कृति के अंतर्गत अपने तर्कों से विपक्ष को प्रभावित और सहमत कर लेना मुख्य गुण माना जाता है। लोकतंत्र में जनप्रतिनिधियों की भूमिका बड़ी अहम है। वे एक ही साथ अपने दल के सदस्य, जनता के प्रतिनिधि, सदन के सदस्य एवं सरकार के अभिकर्ता होते हैं। संसदीय सरकारों को वे तभी महत्व प्रदान कर सकते हैं जब वे दल के सदस्य के रूप में अपने दल के कार्यक्रमों एवं उसकी नीतियों से आम जनता को अवगत कराकर उनमें दल के प्रति रूझान उत्पन्न करने की उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हों या दलीय सिद्धान्तों एवं नियमों

के प्रति समर्पित हों, जनप्रतिनिधियों के रूप में राष्ट्रीय समस्याओं के साथ ही अपने निर्वाचन क्षेत्र की समस्याओं का पूर्ण ज्ञान रखते हों तथा उन समस्याओं के समाधान हेतु पहल करने की उनमें आकुलता हो। विकास कार्यों में वे मतदाताओं के बीच अपने को पथ–प्रदर्शक के रूप में प्रस्तुत करते हों, सदन के सदस्य के रूप में संसदीय प्रक्रिया का ज्ञान रखते हो तथा अपने आचरण एवं वाणी से सदन तथा सदन के बाहर संसदीय मर्यादा को प्रतिबिम्बित करते हों। सदन में नियमित रूप से उपस्थित होकर उसकी सारी कार्यवाहियों में सक्रिय रूप से भाग लें, जहां अनुशासित ढंग से खुलकर विचार–विमर्श हो तथा सामूहिक विवेक के आधार पर समाधान निकालें। सदन संसदीय संस्कृति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है। सदन की कार्यविधि एवं निर्णय निर्माण की प्रक्रिया जितनी ही संसदीय परम्पराओं के अनुरूप होगी, सदन में समस्याओं पर उतनी स्वतंत्रता एवं मर्यादित ढंग से विचार–विमर्श होगा, बहुमत के आधार पर निर्णय लिया जायेगा तथा दलीय अनुशासन एवं संसदीय अनुशासन की मर्यादा का पालन करते हुए सदन में उठी समस्याओं के प्रति जनप्रतिनिधियों का दृष्टिकोण जितना व्यापक, लोकप्रिय और राष्ट्रीय होगा, उतना ही सदन का स्वरूप संसदीय प्रणाली के अनुरूप होगा। 'सदन व्यवस्थित तो लोकतंत्र सुरक्षित' की उक्ति तभी चरितार्थ हो सकेगी।

संसदीय लोकतंत्र का संरक्षक – अध्यक्ष (स्पीकर) :–

सदन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं गरिमामय सदन अध्यक्ष का होता है। वह सदन की मर्यादा, सदस्यों के विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियों का संरक्षक होता है। वह सदन में निष्पक्षता का प्रतीक है तथा उसे अपने प्राधिकार का प्रयोग निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह तटस्थता के साथ करना चाहिए। अध्यक्ष की तटस्थता विश्वास, प्रक्रिया के सफल रूप से संचालन के लिए अनिवार्य है। बहुत सी परिपाटियां ऐसी हैं जिनका उद्देश्य न केवल यह है कि अध्यक्ष की तटस्थता बनी रहे, बल्कि यह भी है कि उसकी तटस्थता को सभी स्वीकार करें। मंत्रिमंडल के सदस्यों में प्रधानमंत्री के प्रति व्यक्तिगत दायित्व बोध तथा सदन के प्रति सामूहिक दायित्व बोध जितना अधिक होगा उतनी ही संसदीय संस्कृति अधिक विकसित होगी। संसदीय संस्कृति आचार एवं विचार तथा सिद्धांत एवं व्यवहार में तारतम्य स्थापित करने की एक प्रक्रिया है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :–

अनेक देशों के संविधानों में संसदीय प्रजातंत्र है, संसद तथा विधान सभाओं को लगभग सर्वाधिकार प्राप्त है। आज विश्व में लगभग दो–तिहाई देश ऐसे हैं जहां किसी न किसी रूप में संसदीय लोकतंत्र विद्यमान है, लेकिन, संसदीय लोकतंत्र के स्वरूप को केवल हम यह समझें कि येन–केन प्रकारेण, किसी भी रूप में, किसी भी ढंग से अथवा छलबल, बाहुबल, धनबल, जाति, धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार से संसद में पहुंच जाएं और वहां अपनी सरकार बनाकर मनमानी करते रहें, तो वह चाहे किसी भी पार्टी का शासन हो, तो क्या उसे उचित कहा जा सकता है और क्या उससे संसदीय लोकतंत्र के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगेगा। विचारणीय प्रश्न यह है कि लोकतंत्र का जो साकार स्वरूप संसद है उसके माध्यम से क्या हम जीवन को सही और सार्थक रूप देने का प्रयास कर रहे हैं? सामान्य मनुष्य के उसके पुरूषार्थ को साक्षी बनाने का, जो यथार्थ में जीवन का सही धर्म है, क्या हम उसे चरितार्थ कर रहे हैं ? यदि ऐसा कर रहे हैं तो निश्चित रूप से हम संसदीय संस्कृति को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

संसदीय संस्कार मात्र संस्कार ही नहीं हैं, अपितु इनके मूल में राजनीतिक मनुष्य के ऐसे जीवन दर्शन

की परिकल्पना है जो व्यक्ति की व्यक्तिगत अस्मिता को समाज का संबल प्रदान करता है तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व में समाज एंव राष्ट्र की समृद्धि कों समाहित करता है। आज विश्व के अधिकांश भागों में संसदीय प्रणाली स्वीकार की गयी है। स्वस्थ लोकतंत्र को सुदृढ़ करने हेतु यह आवश्यक है कि संसदीय संस्कृति का पर्याप्त संवृद्धिकरण एवं पुष्टिकरण हो। यह एक सतत प्रक्रिया है जिसे निरन्तर चलते रहना ही चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. जैन डालचन्द, डॉ. राजेश व नजला, बी. सी., भारतीय राजनीति के नये आयाम, कॉलेज बुक डिपो जयपुर। भारतीय राजनीति, अर्जुन पब्लिंशिंग हाऊस नई दिल्ली।
2. नरूला, बी.सी., भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. पाण्डव, डॉ. डी. एस., भारतीय शासन और राजनीति, रजत प्रकाशन नई दिल्ली।
4. रॉय, एम.पी., भारतीय शासन राजनीति, कॉलेज बुक डिपो जयपुर।

डॉ0 ब्रजकिशोर
सहायक–आचार्य, राजनीति विज्ञान
राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर।
मोबाईल नं. 9214952496
ईमेल :–brijkishore496@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 133-140

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी कविता का लोक–पक्ष

डॉ. गिरीश कुमार के.के.

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची, केरल – 682022

"कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ–संबंधों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक–सामान्य भाव–भूमि पर ले जाती है । जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।" यहाँ लोक से तात्पर्य उस विशिष्ट परिवेश से है जो हर इनसान को सहज और आत्मीय बना देता है। वह उसे 'स्व' के सीमित धरातल से 'सब' की व्यापक परिवेश की ओर ले आती है। लोक की इस विस्तृत भावभूमि को और उसके सारसंग्रह को 'लोक संस्कृति' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह वह संस्कार है जो समाज के हर अशिक्षित इनसान के भीतर सहज एवं स्पष्ट रूप में तथा आभिजात वर्ग के मन की गहराइयों में अनुस्यूत रूप में रहता है। यह व्यक्ति की आंतरिक संस्कृति है। जो उसे गहन जिजीविषा के साथ जीने लायक बनाती है। वह आम जीवन परिवेश में बसती है और लोक के हर्षोल्लास को वाणी देती है।

व्यापार द्वारा नियंत्रित वर्तमान व्यवस्था में यह लोक संस्कृति भी विनाश के कगार पर है। संस्कृति को एक बिकाऊ चीज़ बनाने का उपक्रम नियत तरीके से चल रहा है। राष्ट्रीय एवं लोक संस्कृति से भारतीय जनता का गहरा संबंध है। उनके अंतर्मन में प्रेम, सौन्दर्य, नैतिकता, सादगी, त्याग और उच्चतर जीवन को लेकर बनी राष्ट्रीय मान्यताएँ अभी मरी नहीं हैं। वे इस तरह अपनी संस्कृति से सट कर रहें तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं उनके समर्थकों को क्या फायदा? इसलिए संस्कृति से मनुष्य को अलगाने का खेल चारों ओर सक्रिय है। सांस्कृतिक एकता साम्राज्यवादियों के लिए सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए उसे तोड़ने के उद्देश्य से 'समूह संस्कृति', 'झुण्ड संस्कृति', 'लोकप्रिय संस्कृति' आदि के नाम से वे सांस्कृतिक क्षेत्र में घुसते हैं। संस्कृति के इन आयातित रूपों का लक्ष्य लोक संस्कृति से जनता की आत्मीय संबंध को तोड़ना है। यह असल में वि–संस्कृतीकरण है अन्यथा सांस्कृतिक उपनिवेश है। बाज़ारवादी ब्रांड संस्कृति की जड़ें पनपाने का औपनिवेशिक तंत्र इस विसंस्कृतीकरण का लक्ष्य है। संस्कृति मनुष्य को संकीर्णता के दायरे से ऊपर उठाकर विशाल परिप्रेक्ष्य की ओर ले जाती हैं। लेकिन समूह संस्कृति, झुंड संस्कृति या लोकप्रिय संस्कृति उसे संकीर्णता की ओर लौटाती हैं। औद्योगिक एवं राजनीतिक हितों की रक्षा इनका फर्ज़ है। इसलिए वह संकीर्णता वादी रुझान यानी संस्कृति हीनता को अपनाती है।

संस्कृतिहीनता के परिवेश में समकालीन साहित्य इनका प्रतिरोध का शस्त्र लेकर सामने आया। इसलिए जीवन के लिए ज़रूरी प्रकृत एवं लोक तत्व को बचाने के प्रयत्न में हैं समकालीन रचनाकार। वे खोने की पीड़ा अनुभव करते हैं। यंत्रयुगीन भागदौड़ से अलग होकर प्रकृति की तलहटी में प्रकृतस्थ होना चाहते हैं। अपनी भाषा

में बोलना चाहते हैं। अपना सपना देखना चाहते हैं। जिनके मिट जानेवाली जातीय एवं वर्गीय संस्कृतियाँ हैं उन्हें बचाने की कोशिश करते हैं। सभी द्वन्द्वों से दूर रहकर एक–एक की अस्मिता को मानकर एक सामरस्य का सुख अनुभव करना समकालीन साहित्य का मुख्य मकसद है। केन्द्रीयता को विखंडित कर खंड–खंड की विशिष्टता को पहचानने और उस अनेकता से निर्मित राष्ट्र की असली पहचान को प्रतिष्ठित करने में कटिबद्ध हैं समकालीन रचनाकार। उस अनेकता में मुख्य शासित की लोक की संस्कृति है। उन शासितों की संस्कृति और भाषा को पुनरुज्जीवित करने के लिए समकालीन हिन्दी कवि प्रतिबद्ध हैं।

बाज़ार केन्द्रित वर्तमान समय में आदमी के स्वत्व को रूपायित करने वाले तत्वों पर भी हमला हो रहा है। व्यक्ति को एक नामहीन इकाई और एक संबंधविहीन बाज़ारी माल बनाने की सख्त कोशिश चारों ओर से सक्रिय है। उसके भीतर के स्थानीयता बोध को, आत्म संस्कार को निष्कासित करके उसे पण्य वस्तु में बदलना इन सबका लक्ष्य है। इनसान की स्मृतियों पर हो रहे आक्रमण इसका स्पष्ट प्रमाण है। उसे जड–विहीन करके बाज़ार का एक पुतला बनाना उनका लक्ष्य है। आदमी की स्मृतियों पर, उनकी आत्मीयता पर किए जा रहे अतिक्रमण पर प्रतिक्रिया समकालीन कविता का प्रबल पक्ष है :–

आ रहे हैं जो अतिक्रमणकारी वे मुझ पर नहीं
हमला करना चाहते हैं मेरी याददाश्त पर .....
वे चाहते हैं विस्मृत कर दूँ मैं अपना जन्म स्थान, अपनी भाषा
भूल जाऊँ अपनी नदी का नाम और उसका संगीत
वे चाहते हैं मेरे पास दिमाग तो हो
मगर न हो उसमें याददाश्त का खाना।

वैश्वीकरण के समय से लेकर आदमी को उनकी संस्कृति से अलग करने का दबाव तेज़ी से बढ़ रहा है। लोक–संस्कृति की ओर मनुष्य के लगाव को खत्म करके कृत्रिम संस्कृति के सीमित दायरे में उसे बाँधने की सुनियोजित कोशिश हो रही है। इनका लक्ष्य लोक–संस्कृति को मिटाकर सार्वभौमिकता के नाम पर एक यांत्रिक भाव शून्य संस्कृति को लाद देने का है। उसकी अपनी कोई परम्परा नहीं है। अष्टभुजा शुक्ल की कविता 'खेल और खिलौने' संस्कृति हीनता के बाज़ारी माहौल को अनावृत करती है :–

सिर्फ खेल थे हमारे पास
खिलौने नहीं थे
अपने खिलौने
हमें उधार पर बेचकर
उन्होंने खरीद लिये / हमारे खेल
खेल नहीं बचे / हमारे पास
अब सिर्फ खिलौने हैं... .../ उधार के खिलौने।

सृजनात्मकता में स्थानीयता की शक्ति अप्रतिम है। हर संवेदनशील को कर्मठ और ईमानदार बनाने में उसका महत्वपूर्ण योगदान है। लोक की भूमि कवि को गहन जिजीविषा प्रदान करती है उसे विद्रुपताओं के खिलाफ लडने योग्य बनाती है। इसलिए आज के कवि उस परिवेश के साथ जुड़कर रहना चाहते हैं। वहाँ से

बिंब, प्रतीक और भाषा का अर्जन करके अपनी लेखनी को सशक्त बनाना चाहते हैं। एकांत श्रीवास्तव की कविता 'अब मैं घर लौटूँगा' इस मानसिकता की अभिव्यक्ति है। निर्जीव, कृत्रिम और स्वार्थ सीमित धरातल का परित्याग करके लोक की ओर मुडने का अह्वान कवि ने यहाँ व्यक्त किया है :–

अब मैं घर लौटूँगा
और अपनी अधूरी पड़ी कविताओं को
पानी में सींझते खेतों की गीली महक से भर दूँगा
मैं घर लौटूँगा/और पुरखों के अधूरे पड़े मकान की
दीवारों पर धरूँगा नई ईंटें।

उदय प्रकाश की कविता 'बचाओ' भी इसी मानसिकता की पुष्टि करती है। कवि के विचार में मनुष्य को आत्मनिर्भर बनानेवाले सभी तत्वों का संरक्षण आवश्यक है। क्योंकि वर्तमान समय इनको खत्म करने की नीतियों से भरी हुई है। इसलिए इन सबका बचाव नियत तरीके से करना मानवीयता के लिए परम आवश्यक है। कवि की मान्यता यह है कि समाज में से आभिजात्यता के, कुलीनता के लक्षणों को नहीं लोक के चिह्नों को बचाना है :–

बचाना ही है तो बचाये जाने चाहिए
गाँव में खेत, जंगल में पेड़, शहर में हवा,
पेड़ों में घोंसले, अखबारों में सच्चाई, राजनीति में
नैतिकता, प्रशासन में मनुष्यता, दाल में हल्दी।

उपभोक्ता संस्कृति सांस्कृतिक क्षरण की सहज परिणति है। यहाँ सबसे अधिक महत्व उपभोग और विदेशी संस्कृति का अन्धानुकरण करने वालों को है। इस वर्ग के लिए परम्परा से चली आ रही रीतियाँ पसंद नहीं है। बिना किसी वजह से उसे प्राचीन कहकर लोक–संस्कृति को नकारते हैं। ब्राण्ड के मायाजाल में विराजने वाली इस पीढ़ी का अंत दयनीय होगा। कुमार अंबुज की कविता 'किवाड' बाज़ार के मायाजाल में फँसकर आत्म संस्कार का तिरस्कार करने वाले आज की पीढ़ी को चेतावनी देती है। 'किवाड़' यहाँ मनुष्य की सृजनात्मक, आलोचनात्मक और आध्यात्मिक क्षमता से व्युत्पन्न लोक–संस्कृति का प्रतीक है। वह ठोस समाज से पैदा होती है और वह निरी बाज़ार की वस्तु नहीं :–

ये पुराने हैं / लेकिन कमज़ोर नहीं
इनके दोलन में / एक वज़नदारी है
ये जब खुलते हैं / एक पूरी दुनिया / हमारी तरफ खुलती है
जब ये नहीं होंगे / घर / घर नहीं रहेगा।

सांस्कृतिक विघटन के समय में लोक संस्कार को यानी कि संस्कृति की असलियत को वापिस लाने की सोच समकालीन कविता में है। लोक–जीवन, संस्कार, त्योहार, पर्व, मेला और लोक भाषा के प्रयोग से वह व्यक्ति के आत्म संस्कार को जगाती है। समकालीन कवियों का गाँव और लोक जीवन के प्रति रुझान इसी लोक चेतना बोध से उद्‌भूत है। शहरी जीवन की संस्कृति हीनता से वे गाँव के पवित्र एवं स्वच्छ परिवेश की ओर लौटना चाहते हैं। क्योंकि उन्हें पूरी तरह से मालूम है कि इनसान को कर्मठ एवं क्रियाशील बनाने की शक्ति लोक संस्कार

में है। उसके आचार–विचार तथा व्यवहार–नीति के पीछे यह शक्ति वर्तमान है। इसलिए उसे खोने के लिए वह कदापि तैयार नहीं है। क्लिष्टता के माहौल में भी गहरी निष्ठा के साथ वह उसे बचाकर रखता है। समकालीन कविता में अधिकाधिक मुखरित 'घर' शब्द को स्थानीयता की इसी व्यापकता में देखना होगा :–

यह घर/हमारा सबसे आत्मीय परिजन
हर दुःख हर सुख में जो रहा हरदम हमारे साथ
क्या इतनी आसानी में गिर जायेगा/घर
मैं तुझे गिरने नहीं दूँगा।

ये कविताएँ साबित करती हैं कि लोक एवं स्थानीयता का समर्थन समकालीन कविता का प्रबल पक्ष है। बाज़ारवाद के तौर–तरीकों और अमानवीय यंत्रणाओं से बच निकलने के लिए एक अकृत्रिम परिवेश की ज़रूरत है। लोक तत्व का स्मरण इस ज़रूरत से उपजा है। मानव के भीतर अनुस्यूत प्रवहित लोक तत्व उसकी संस्कृति का परिष्कार करता है उसे सच्चे अर्थों में एक इन्सान बनाता है। कवि स्वप्निल श्रीवास्तव के विचार में सांस्कृतिक पुनर्रचना के समय में भी उसका दोहन गहरी मात्रा में हो रहा है। कवि मन की बेचैनी से यहाँ सीधा साक्षात्कार होता है :–

इस शताब्दी में तमाम चीज़ों के
बचाने के लिए अभियान चलाए जा रहे हैं
ताज्जुब यह है कि बचाव की इतनी
कोशिशों के बावजूद
न आदमी बच रहा न जंगल
परिंदों की बात तो बहुत दूर है।

संक्षेप में जन साधारण के जीवन क्रम से ही लोक तत्व तथा लोक संस्कार का रूपायन होता है। वह उस जीवन का सब कुछ है। उसके बिना अपनी कोई अस्मिता नहीं होती। इसलिए समकालीन कविता संकटग्रस्त लोक–संस्कृति अथवा व्यक्ति के आत्म–संस्कार को बचाने का प्रयास करती है। सांस्कृतिक मूल्यों के दोहन के समय वह मानवीयता का बखान करते हुए सांस्कृतिक पुनः निर्माण का कार्य करती है। इस पुनर्निर्माण के लिए वह लोक या स्थानीय संस्कृति का सहारा लेती है। शुक्ल जी ने लोक या स्थानीयता के चिर–सहचर के रूप में जिन तत्वों को माना है, जैसे :– वन, पर्वत, नदी, नाले, निर्झर, चट्टान, वृक्ष, लता, शाखा, पशु, पक्षी, आकाश, मेघ, नक्षत्र इत्यादि तत्वों के ज़रिए कविता सांस्कृतिक पुनर्घटन का कार्य करती है। वास्तव में समकालीन कविता लोक की सांस्कृतिक गरिमा के बल पर बाज़ारी संस्कृति का मुकाबला करती है। इसके लिए वह गाँव या लोक की ओर प्रस्थान करके संस्कृति को मजबूत बनाने के कर्म में भी लगी रहती है।

समकालीन हिंदी कविता का लोक-पक्ष डॉ. गिरीश कुमार के के :–

"कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ–संबंधों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक–सामान्य भाव–भूमि पर ले जाती है। जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।" यहाँ लोक से तात्पर्य उस विशिष्ट परिवेश से है जो हर इनसान को सहज और आत्मीय बना देता है। वह उसे 'स्व' के सीमित धरातल से 'सब' की व्यापक परिवेश की ओर ले आती है। लोक की इस

विस्तृत भावभूमि को और उसके सारसंग्रह को 'लोक संस्कृति' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह वह संस्कार है जो समाज के हर अशिक्षित इनसान के भीतर सहज एवं स्पष्ट रूप में तथा आभिजात वर्ग के मन की गहराइयों में अनुस्यूत रूप में रहता है। यह व्यक्ति की आंतरिक संस्कृति है। जो उसे गहन जिजीविषा के साथ जीने लायक बनाती है। वह आम जीवन परिवेश में बसती है और लोक के हर्षोल्लास को वाणी देती है।

व्यापार द्वारा नियंत्रित वर्तमान व्यवस्था में यह लोक संस्कृति भी विनाश के कगार पर है। संस्कृति को एक बिकाऊ चीज़ बनाने का उपक्रम नियत तरीके से चल रहा है। राष्ट्रीय एवं लोक संस्कृति से भारतीय जनता का गहरा संबंध है। उनके अंतर्मन में प्रेम, सौन्दर्य, नैतिकता, सादगी, त्याग और उच्चतर जीवन को लेकर बनी राष्ट्रीय मान्यताएँ अभी मरी नहीं हैं। वे इस तरह अपनी संस्कृति से सट कर रहें तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं उनके समर्थकों को क्या फायदा? इसलिए संस्कृति से मनुष्य को अलगाने का खेल चारों ओर सक्रिय है। सांस्कृतिक एकता साम्राज्यवादियों के लिए सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए उसे तोड़ने के उद्देश्य से 'समूह संस्कृति', 'झुण्ड संस्कृति', 'लोकप्रिय संस्कृति' आदि के नाम से वे सांस्कृतिक क्षेत्र में घुसते हैं। संस्कृति के इन आयातित रूपों का लक्ष्य लोक संस्कृति से जनता की आत्मीय संबंध को तोड़ना है। यह असल में वि–संस्कृतीकरण है अन्यथा सांस्कृतिक उपनिवेश है। बाज़ारवादी ब्रांड संस्कृति की जड़ें पनपाने का औपनिवेशिक तंत्र इस विसंस्कृतीकरण का लक्ष्य है। संस्कृति मनुष्य को संकीर्णता के दायरे से ऊपर उठाकर विशाल परिप्रेक्ष्य की ओर ले जाती हैं। लेकिन समूह संस्कृति, झुंड संस्कृति या लोकप्रिय संस्कृति उसे संकीर्णता की ओर लौटाती हैं। औद्योगिक एवं राजनीतिक हितों की रक्षा इनका फर्ज़ है। इसलिए वह संकीर्णता वादी रुझान यानी संस्कृति हीनता को अपनाती है।

संस्कृतिहीनता के परिवेश में समकालीन साहित्य इनका प्रतिरोध का शस्त्र लेकर सामने आया। इसलिए जीवन के लिए ज़रूरी प्रकृत एवं लोक तत्व को बचाने के प्रयत्न में हैं समकालीन रचनाकार। वे खोने की पीडा अनुभव करते हैं। यंत्रयुगीन भागदौड़ से अलग होकर प्रकृति की तलहटी में प्रकृतस्थ होना चाहते हैं। अपनी भाषा में बोलना चाहते हैं। अपना सपना देखना चाहते हैं। जिनके मिट जानेवाली जातीय एवं वर्गीय संस्कृतियाँ हैं उन्हें बचाने की कोशिश करते हैं। सभी द्वन्द्वों से दूर रहकर एक–एक की अस्मिता को मानकर एक सामरस्य का सुख अनुभव करना समकालीन साहित्य का मुख्य मकसद है। केन्द्रीयता को विखंडित कर खंड–खंड की विशिष्टता को पहचानने और उस अनेकता से निर्मित राष्ट्र की असली पहचान को प्रतिष्ठित करने में कटिबद्ध हैं समकालीन रचनाकार। उस अनेकता में मुख्य शासित की, लोक की संस्कृति है। उन शासितों की संस्कृति और भाषा को पुनरुज्जीवित करने के लिए समकालीन हिन्दी कवि प्रतिबद्ध हैं।

बाज़ार केन्द्रित वर्तमान समय में आदमी के स्वत्व को रूपायित करनेवाले तत्वों पर भी हमला हो रहा है। व्यक्ति को एक नामहीन इकाई और एक संबंधविहीन बाज़ारी माल बनाने की सख्त कोशिश चारों ओर से सक्रिय है। उसके भीतर के स्थानीयता बोध को, आत्म संस्कार को निष्कासित करके उसे पण्य वस्तु में बदलना इन सबका लक्ष्य है। इनसान की स्मृतियों पर हो रहे आक्रमण इसका स्पष्ट प्रमाण है। उसे जड–विहीन करके बाज़ार का एक पुतला बनाना उनका लक्ष्य है। आदमी की स्मृतियों पर, उनकी आत्मीयता पर किए जा रहे अतिक्रमण पर प्रतिक्रिया समकालीन कविता का प्रबल पक्ष है :–

आ रहे हैं जो अतिक्रमणकारी वे मुझ पर नहीं

हमला करना चाहते हैं मेरी याददाश्त पर .....
वे चाहते हैं विस्मृत कर दूँ मैं अपना जन्म स्थान, अपनी भाषा
भूल जाऊँ अपनी नदी का नाम और उसका संगीत
वे चाहते हैं मेरे पास दिमाग तो हो
मगर न हो उसमें याददाश्त का खाना।

वैश्वीकरण के समय से लेकर आदमी को उनकी संस्कृति से अलग करने का दबाव तेज़ी से बढ़ रहा है। लोक–संस्कृति की ओर मनुष्य के लगाव को खत्म करके कृत्रिम संस्कृति के सीमित दायरे में उसे बाँधने की सुनियोजित कोशिश हो रही है। इनका लक्ष्य लोक–संस्कृति को मिटाकर सार्वभौमिकता के नाम पर एक यांत्रिक भाव शून्य संस्कृति को लाद देने का है। उसकी अपनी कोई परम्परा नहीं है। अष्टभुजा शुक्ल की कविता 'खेल और खिलौने' संस्कृतिहीनता के बाज़ारी माहौल को अनावृत करती है :–

सिर्फ खेल थे हमारे पास
खिलौने नहीं थे
अपने खिलौने
हमें उधार पर बेचकर
उन्होंने खरीद लिये / हमारे खेल
खेल नहीं बचे / हमारे पास
अब सिर्फ खिलौने हैं... .../ उधार के खिलौने।

सृजनात्मकता में स्थानीयता की शक्ति अप्रतिम है। हर संवेदनशील को कर्मठ और ईमानदार बनाने में उसका महत्वपूर्ण योगदान है। लोक की भूमि कवि को गहन जिजीविषा प्रदान करती है उसे विद्रुपताओं के खिलाफ लडने योग्य बनाती है। इसलिए आज के कवि उस परिवेश के साथ जुड़कर रहना चाहते हैं। वहाँ से बिंब, प्रतीक और भाषा का अर्जन करके अपनी लेखनी को सशक्त बनाना चाहते हैं। एकांत श्रीवास्तव की कविता 'अब मैं घर लौटूँगा' इस मानसिकता की अभिव्यक्ति है। निर्जीव, कृत्रिम और स्वार्थ सीमित धरातल का परित्याग करके लोक की ओर मुडने का अह्वान कवि ने यहाँ व्यक्त किया है :–

अब मैं घर लौटूँगा
और अपनी अधूरी पड़ी कविताओं को
पानी में सींझते खेतों की गीली महक से भर दूँगा
मैं घर लौटूँगा / और पुरखों के अधूरे पड़े मकान की
दीवारों पर धरूँगा नई ईंटें।

उदयप्रकाश की कविता 'बचाओ' भी इसी मानसिकता की पुष्टि करती है। कवि के विचार में मनुष्य को आत्मनिर्भर बनानेवाले सभी तत्वों का संरक्षण आवश्यक है। क्योंकि वर्तमान समय इनको खत्म करने की नीतियों से भरी हुई है। इसलिए इन सबका बचाव नियत तरीके से करना मानवीयता के लिए परम आवश्यक है। कवि की मान्यता यह है कि समाज में से आभिजात्यता के, कुलीनता के लक्षणों को नहीं लोक के चिह्नों को बचाना है :–

बचाना ही है तो बचाये जाने चाहिए
गाँव में खेत, जंगल में पेड़, शहर में हवा,
पेड़ों में घोंसले, अखबारों में सच्चाई, राजनीति में
नैतिकता, प्रशासन में मनुष्यता, दाल में हल्दी।

उपभोक्ता संस्कृति सांस्कृतिक क्षरण की सहज परिणति है। यहाँ सबसे अधिक महत्व उपभोग और विदेशी संस्कृति का अन्धानुकरण करने वालों को हैं। इस वर्ग के लिए परम्परा से चली आ रही रीतियाँ पसंद नहीं है। बिना किसी वजह से उसे प्राचीन कहकर लोक–संस्कृति को नकारते हैं। ब्राण्ड के मायाजाल में विराजने वाली इस पीढ़ी का अंत दयनीय होगा। कुमार अंबुज की कविता 'किवाड' बाज़ार के मायाजाल में फँसकर आत्म संस्कार का तिरस्कार करनेवाले आज की पीढ़ी को चेतावनी देती है। 'किवाड़' यहाँ मनुष्य की सृजनात्मक, आलोचनात्मक और आध्यात्मिक क्षमता से व्युत्पन्न लोक–संस्कृति का प्रतीक है। वह ठोस समाज से पैदा होती है और वह निरी बाज़ार की वस्तु नहीं :–

ये पुराने हैं / लेकिन कमज़ोर नहीं
इनके दोलन में / एक वज़नदारी है
ये जब खुलते हैं / एक पूरी दुनिया / हमारी तरफ खुलती है
जब ये नहीं होंगे / घर / घर नहीं रहेगा।

सांस्कृतिक विघटन के समय में लोक संस्कार को यानी कि संस्कृति की असलियत को वापस लाने की सोच समकालीन कविता में है। लोक–जीवन, संस्कार, त्योहार, पर्व, मेला और लोक भाषा के प्रयोग से वह व्यक्ति के आत्म संस्कार को जगाती है। समकालीन कवियों का गाँव और लोक जीवन के प्रति रुझान इसी लोक चेतना बोध से उद्‌भूत है। शहरी जीवन की संस्कृति हीनता से वे गाँव के पवित्र एवं स्वच्छ परिवेश की ओर लौटना चाहते हैं। क्योंकि उन्हें पूरी तरह से मालूम है कि इनसान को कर्मठ एवं क्रियाशील बनाने की शक्ति लोक संस्कार में है। उसके आचार–विचार तथा व्यवहार–नीति के पीछे यह शक्ति वर्तमान है। इसलिए उसे खोने के लिए वह कदापि तैयार नहीं है। क्लिष्टता के माहौल में भी गहरी निष्ठा के साथ वह उसे बचाकर रखता है। समकालीन कविता में अधिकाधिक मुखरित 'घर' शब्द को स्थानीयता की इसी व्यापकता में देखना होगा :–

यह घर/हमारा सबसे आत्मीय परिजन
हर दुःख हर सुख में जो रहा हरदम हमारे साथ
क्या इतनी आसानी में गिर जायेगा/घर
मैं तुझे गिरने नहीं दूँगा।

ये कविताएँ साबित करती हैं कि लोक एवं स्थानीयता का समर्थन समकालीन कविता का प्रबल पक्ष है। बाज़ारवाद के तौर–तरीकों और अमानवीय यंत्रणाओं से बच निकलने के लिए एक अकृत्रिम परिवेश की ज़रूरत है। लोक तत्व का स्मरण इस ज़रूरत से उपजा है। मानव के भीतर अनुस्यूत प्रवहित लोक तत्व उसकी संस्कृति का परिष्कार करता है उसे सच्चे अर्थों में एक इंसान बनाता है। कवि स्वप्निल श्रीवास्तव के विचार में सांस्कृतिक पुनर्रचना के समय में भी उसका दोहन गहरी मात्रा में हो रहा है। कवि मन की बेचैनी से यहाँ सीधा साक्षात्कार होता है :–

इस शताब्दी में तमाम चीज़ों के
बचाने के लिए अभियान चलाए जा रहे हैं
ताज्जुब यह है कि बचाव की इतनी
कोशिशों के बावजूद
न आदमी बच रहा न जंगल
परिंदों की बात तो बहुत दूर है।

संक्षेप में जन साधारण के जीवन क्रम से ही लोक तत्व तथा लोक संस्कार का रूपायन होता है। वह उस जीवन का सब कुछ है। उसके बिना अपनी कोई अस्मिता नहीं होती। इसलिए समकालीन कविता संकटग्रस्त लोक–संस्कृति अथवा व्यक्ति के आत्म–संस्कार को बचाने का प्रयास करती है। सांस्कृतिक मूल्यों के दोहन के समय वह मानवीयता का बखान करते हुए सांस्कृतिक पुनः निर्माण का कार्य करती है। इस पुनर्निर्माण के लिए वह लोक या स्थानीय संस्कृति का सहारा लेती है। शुक्ल जी ने लोक या स्थानीयता के चिर–सहचर के रूप में जिन तत्वों को माना है, जैसे :– वन, पर्वत, नदी, नाले, निर्झर, चट्टान, वृक्ष, लता, शाखा, पशु, पक्षी, आकाश, मेघ, नक्षत्र इत्यादि तत्वों के ज़रिए कविता सांस्कृतिक पुनर्घटन का कार्य करती है। वास्तव में समकालीन कविता लोक की सांस्कृतिक गरिमा के बल पर बाज़ारी संस्कृति का मुकाबला करती है। इसके लिए वह गाँव या लोक की ओर प्रस्थान करके संस्कृति को मजबूत बनाने के कर्म में भी लगी रहती है।

संदर्भ :–

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – चिंतामणि (पहला भाग) पृ. 82
2. कुमार अम्बुज – क्रूरता, पृ. 53
3. अष्टभुजा शुक्ल – इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है, पृ. 10
4. एकांत श्रीवास्तव – मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, पृ. 63
5. उदय प्रकाश – रात में हारमोनियम, पृ. 22
6. कुमार अम्बुज – किवाड़, पृ. 21
7. एकांत श्रीवास्तव – अन्न हैं मेरे शब्द, पृ. 45
8. स्वप्निल श्रीवास्तव – मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए, पृ. 54

Mob: 91 9495106637
Email: girish372@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 141-145

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रवीन्द्र कालिया के कथा साहित्य में मुस्लिम परिवेश

डॉ० दारा योगानंद

सहायक आचार्य, एम्स इंस्टिट्यूट, पीण्या, बेंगलुरु–५६००५८

भूमिका :–

आज का प्रत्येक कहानीकार अपने परिवेश के प्रति जागरुक रहा है। लेखक रवीन्द्र कालिया भी उन कहानीकारों मे से एक हैं जिन्होंने यथार्थ को सच्चाई के साथ स्वीकार किया है। उनके कथा साहित्य में हिन्दुओं एवं मुसलमानों के जीवन को बहुत बारीकी से दर्शाया गया है। जहाँ एक तरफ़ हिन्दुओं के रीति–रिवाज़, परिवार,जीवनगत परिस्थितियों का जिक्र है, वहीं मुस्लिम समाज के प्रति भी उनकी दृष्टि पैनी हैं।

कथा साहित्य में मुस्लिम परिवेश :–

लेखक रवीन्द्र कालिया के कथा साहित्य में मुसलमानों का विस्तारपूर्वक चित्रण मिलता है। जिसमें उन्होंने उनके धर्म, रीति–रिवाज़, गरीबी और उनकी मनोस्थिती का वर्णन किया है। एक हिन्दू लेखक होने के बावजूद जिस अव्वल किस्म की उर्दू का वे प्रयोग करते है अपनी कहानियों में,उससे उनकी भाषा पर पकड़ का ज्ञान होता है। यही नहीं, मुसलमानों के घर का वातावरण, बोलचाल, लड़ाई झगड़े, परिवार में कट्टरता आदि का बहुत ही सरल एवं यथार्थ चित्रण मिलता है।

"नया कुरता" नामक कहानी में साहिल नाम के एक लड़के की कहानी है, जिसके पिता बचपन में ही उसे और उसकी माँ को छोड़ चला जाता है। अपने शोहर के बिना माँ बच्चे की परवरिश संभाल लेती है। वह बीड़ी बनाती है, घर चलाती है। वह खुदा से डरने वाली थी, पाँचों वक्त का नमाज़ अदा करती थी, लेकिन साहिल अपनी हरकतों की वजह से अपनी माँ को परेशान करता है; वह छोटी उम्र में ही बीड़ी पीने लग जाता है; वह मेहरुन्निसा का चुम्बन लेने की कोशिश में पिट जाता है। उसे स्कूल से निकाल दिया जाता है। यहीं, नही, वह अपने ही घर में चोरी भी करता है, वह २० रुपया चुराता है और बिना किसी को बताये घर छोड़ कर भाग जाता है। वह अपने पिता को ढूँढने की कोशिश करता है। साथ ही एक नये जीवन की शुरुआत करता है। कोई काम न होने की वजह से वह मर्सिया पढ़ने का रियाज़ करता है, जिसकी वजह से उसे निमंत्रण मिलने लगते हैं। एक बूढ़े कबाडिये से उसे एक जंग लगी इस्त्री मिलती है, जिसे वह साफ़ कर उसे चमका कर उससे एक लांड्री खोलने का प्रयत्न करता है। वह इस नये पेशे को शुरु करने के लिए कोयला और कपड़े का जुगाड़ करता है। अशरफ़ मिया से इस्त्री, नसरीन आपा से कोयला और कल्लू मिया से दूकान लगाने के लिए कुछ जगह हासिल करता है। वह मन लगाकर काम करता है, उसके दोस्त भी उसकी मदद करते है। साहिल जब अपने पैरों पर खड़ा होने और बिरादरी में सर उठा कर चलने की कोशिश करता है, तो उसी के बिरादरी वाले उससे ईर्ष्या करने

लगते है; साहिल का नया कुरता उन सब की आँखों में कटकता है। जैदी साहब तो सबसे ज्यादा भड़क उठते हैं। हमारे देश में यह एक बहुत ही बुरी चीज है कि किसी को दूसरों की तरक्की पसंद नहीं। इस कहानी में भी साहिल की अपनी बिरादरी के लोगों को यह बिलकुल रास नहीं आया कि कल का छोकरा उनसे आगे बढ़ जाये। साहिल का नया कुरता तार–तार हो जाता है, वह उस जगह को छोड़ कहीं दूर चला जाता है।

लेखक ने इस कहानी में मुसलमानों की जीवन–स्थिति को अपनी लेखनी से चार चाँद लगाये हैं। इस कहानी में पात्रों की मनःस्थिति, परम्पराएँ, परेशानियों का जिस ढ़ंग से चित्रण मिलता है, उससे उनकी तीक्ष्ण बुद्धि का एवं उनके अनुभव का पता चलता है। साहिल जैसे पात्र हमारे पड़ोस से मिलते–जुलते लगते है। ज्यादातर मुस्लिम परिवारों की घरेलू समस्याएं उनकी गरीबी की वजह से उत्पन्न होती है, जिस तरह साहिल छोटी उम्र से ही कमाई करने के बारे में सोचता है और स्कूल छोड़ कर बुरी आदतों का शिकार होता है।

दूसरी तरफ़ लेखक ने मुस्लिम परिवारों की स्त्री का भी चित्रण किया है। साहिल की माँ अपने खाविंद के बगैर भी हिम्मत के साथ अपनी गुजारा चलाती है। वह मन में ठान लेती है कि वह अपने खाविंद के बगैर भी अपने बच्चे की परवरिश कर सकती है। समाज की रुढिवादिता को छोड़ कर रोने धोने के बजाय वह बीड़ी बनाने का काम करती है।

इस कहानी में जिस तरह साहिल को पता चलता है कि उसके अब्बा कहीं दूसरी जगह घर बसाके रह रहे हैं, तो वह अपने अब्बा से मिलने अपने भाई–बहनों के साथ रहने के लिए घर छोड़ देता है। मुस्लिम समाज में एक से अधिक शादी करने का नियम मान्य है, जिस वजह से मुस्लिम समाज में कई पारिवारिक समस्याँए उत्पन्न होती है। खासतौर पर स्त्री का ही शोषण देखने को मिलता है। उसे मात्र बच्चे पैदा करने की मशीन के रुप में देखा जाता है। उसे किसी तरह का अधिकार नहीं दिया जाता है। युगों से वह अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है।

लेखक की एक और कहानी "सुन्दरी" भी मुस्लिम परिवेश को उजागार करती है। इस कहानी में लेखक ने मुस्लिम परिवारों की गरीबी, उनकी समस्याएं आदि से रुबरु कराया है। यह ज़हिर मियाँ नाम के ताँगे वाले की कहानी है। मुस्लिम समाज में बच्चे खुदरत की देन समझे जाते हैं। यही वजह है कि वे इस पर किसी तरह की बंदिश नहीं लगा सकते, जिसका परिणाम बच्चों की कतार। ज़हिर मियाँ और उनकी बेगम ज़हीरन से उन्हें नौ बच्चे हुए। इतने बच्चों की देखभाल, परवरिश कोई मामूली बात नहीं होती। छोटे से घर में इतने बच्चों के साथ गुजारा करना बहुत ही कठिन है, परंतु यह कोई बड़ी समस्या नही है, भारत देश में। समस्या तब शुरु होती है जब खाने के लाले पड़ जाते है। ज़हिर मियाँ के बीमार पड़ने पर उसकी बेगम दूसरों के घर जाकर चौका बर्तन करती है। घर गृहस्थी की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेती है। स्त्रियों की निड़रता, उनकी हिम्मत की दाद देनी पड़ेगी, पुरुष चाहे कितना भी शोषण क्यों न करे, वह हमेशा पतिव्रता स्त्री ही बनी रहती है।

इस कहानी में यह भी देखने को मिलता है कि कम उम्र में ही शादी रची जाती है। ज़हीर मियाँ के बेटे अमज़द भी कम उम्र में ब्याह करता है। शिक्षा का अभाव और छोटे–छोटे काम धंधे करके परिवार तथा अपनी ज़िन्दगी चला रहे होते है। गरीबी में जीना तो उनकी आदत सी हो गई है। सलमा ज़हीर मियाँ की बेटी के फ़टे कपड़े से जब लोगों का समूह उस ओर आकर्षित होता है तो ज़हीर मियाँ उसे बहुत मारते हैं और घर की चार दीवारों में बंद करते है। इसमें सलमा का दोष नहीं, गरीबी ही लोगों को क्रूर बना देती है, जिस वजह से हमें

अपनों के साथ भी मारपीट करना पड़ता है।

इसी तरह उनकी एक और कहानी "ज़रा सी रोशनी" में साम्प्रदायिक समस्या देखने को मिलती है। जब एक कालोनी बसाई गई है सरकार द्वारा, और उस कालोनी के पीछे मुस्लिम बहुल बस्ती है। कालोनी के उजड़ जाने पर यहाँ अधिकांश हिन्दू लोग आ कर बस गये हैं। हिन्दुओं और मुस्लमानों के बीच भाईचारा थी। कुछ लोगों का तो सिर्फ़ दुआ सलाम तक ही बात थी। इस कहानी में मस्जिद की अजाँ उस कालोनी में रहने वाले कुछ हिन्दुओं को रास नहीं आती थी, इसलिए वे कालोनी में मंदिर बनाने की सोचते हैं। यह साम्प्रदायिकता की बू अवश्य देखी गई है, परंतु सिंह साहब जैसे लोगों के नेक विचारों से उन कट्टरपंथी ईर्ष्याग्रस्त हिन्दुओं को खूब फ़टकार पड़ती है। लेखक ने इस कहानी में हिन्दुओं की संकीर्ण मानसिकता को दिखाया है। वहीं वे दूसरी तरफ़ बच्चों की नादान मानसिकता दिखाते है। किस तरह पार्क में जब हिन्दू–मुस्लिम बच्चे क्रिकेट मैच खेलते हैं, तो वे अपने टीमों का नाम भारत और पाकिस्तान रखते हैं। यह मुस्लिम बच्चों की टीम अपने को अज़हर की टीम बोल कर टीम का नाम हिन्दुस्तान रखते हैं, तो हिन्दू बच्चे इमरान की टीम का नाम पाकिस्तान रख कर खेल खेलते है। इससे उनकी देश के प्रति एवं आपसी भाईचारे को व्यक्त किया गया है। मुस्लिम बच्चे भारतीय मुस्लिम कहलाने में फ़क्र महसूस करते है।

मंदिर मस्जिद का झगड़ा कुछ लोगो के स्वार्थवश ही पनपता है, नहीं तो भारत देश में सदियों से एक दूसरे के साथ जीते आते भारतवासी एक दूसरे के शत्रु कभी नहीं बनते। यह तो अंग्रेजो की करतूत है, जो देश को विभाजित कर गये और स्वतंत्र भारत में राजनेता साम्प्रदायिकता का राग अलाप कर देश में हिंसा फ़ैलाते रहे।

लेखक ने बहुत गंभीरता से कहानी को रचा है। साम्प्रदायिकता हिन्दू मुसलमानों के बीच नहीं, बल्कि कुछ संकीर्ण विचार वाले एवं कट्टरपंथी लोगों का नतीजा है। इस तरह इस कहानी में मुसलमानों का हिन्दुओं के साथ संबंध दर्शाया है।

इसी तरह उनकी कहानी "इस तरफ़ का अंधेरा" में भी मुस्लिम समाज का चित्रण मिलता है। साहिल अपने बचपन के दोस्त मसूऊद से जब मिलता है तो उसकी रईसी से प्रभावित होता है, परंतु जैसे–जैसे वह उसके साथ वक्त गुजारता जाता है साहिल डरने लग जाता है। मसऊद गैरकानूनी काम करता है, उसके पास चुरी, बंदूक इत्यादि देखकर ही उसके हाथ–पाँव काँपने लगते है। साहिल मसऊद से सिर्फ़ अच्छी नौकरी पाने की इच्छा रखता है, परंतु मसऊद उसे अपने गलत कार्यों में लगा कर उसे फ़ँसा देता है। साहिल जैसा भोला–भाला लड़का गलत लोगों के हाथों में पड़कर अपनी जिन्दगी खराब कर लेता है। उसे अपनी माँ और बहन की याद भी आती है, जब वह हवालात में बंद होता है।

लेखक ने इस कहानी में छोटे से परिवार एवं बस्ती में रहने वाले मुस्लिम लोगों का वर्णन किया है, जिनमें साहिल, हजरी बी, अजीजन बी, मसऊद जैसे पात्रों के बारे में बताया है, साथ ही करबला की वह शहादत, मस्जिदों की अजाँ, ईद का त्यौहार, इत्यादि का बीच बीच में वर्णन किया है।

लेखक का उपन्यास "खुदा सही सलामत है" में भी हिन्दू–मुस्लिम जनता का चित्रण मिलता है। खासतौर पर समाज में तिरस्कृत या बदनाम लोग, तवायफ़ या नाचनेवाली स्त्रियों की कहानी बयान की है। काशी की मशहूर हुसना भाई के भाषण से इस इस उपन्यास की कहानी शुरु होती है। हज़री बी, अज़ीजन बी, गुलबदन,

नफ़ीस, सिद्दीकी साहब, लतीफ़, हसीना इत्यादि पात्र इस उपन्यास में मुस्लिम परिवेश में बंधे हुए दिखाई पड़ते है। लेखक ने एक तरफ़ हज़री बी एवं पंडिताइन के बीच की कहानी को दिखाई है तो दूसरी तरफ़ मौलाना शफ़ी और शिवलाल की दोस्ती भी। सिद्दीकी साहब को चुटयै नेता के रुप में पाते है। अब्दुल चक्की वाला, वाकर, सारंगी, नवाब साहब, रब्बन बी जैसे पात्र भी इस उपन्यास में चित्रित है।

संपूर्ण कहानी मुस्लिम परिवेश से बंधी है। पात्रों की भाषा अव्वल किस्म की उर्दू का प्रयोग, बंटवारे की समस्या, पाकिस्तान जाने वाले भारतीय मुस्लिम लोग, समाज में नाचने गाने वालियों की अज़ाद भारत से पूर्व शान–शौकत, मान मर्यादा आदि वर्णित हैं तो आज़ादी के उपरांत समाज में खासतौर पर हिन्दू लोग इन तवायवों से दूर ही रहते है। उन्हें समाज में बुरी दृष्टि से देखा जाता है। हज़री बी जैसे तवायफ़ तो गरीब की मार झेलती, गाली–गलौच करती, साथ ही दूसरे लोगों कि मदद करती दिखाई पड़ती है। वे अपने कमिश्नर साहब को भी कभी–कभी याद कर लेती है। लोग उसके साथ बहुत हँसी मजाक करते है, उसे तंग करते है, तो वह भी उनका मुँह बंद करना जानती है।

दूसरी तरफ़ अज़ीजन बी भी अपनी अमीरी की वजह से पूरे मुहल्ले में मशहूर है। आलीशान बंगले में रहती है। धन की कोई कमी नहीं है। समाज में आज भी उसकी बहुत इज्जत है। अज़ीजन बी तवायफ़ हो कर भी अपनी बेटी गुल को अपने पेशे से दूर ही रखती है, उसे अच्छा पढ़ाती है, उसे विश्वविधालय तक पढ़ने भेजती है। गुल होनहार लड़की है जो पढ़ाई लिखाई ही नहीं खेल और अन्य क्षेत्रो में भी कई पुरस्कार प्राप्त करती है। उसे उसके कालेज के प्रो० शर्मा से प्रेम हो जाता है परंतु दोनों एक दूसरे को पसंद करने के बावजूद समाज के डर से, बिरादरी के डर से वे एक दूसरे से ब्याह नहीं कर पाते है। अज़ीजन बी को इस बात से दुःख होता है। वह चाहती है कि उसकी बेटी अच्छे खानदान में जाए, उसका सम्मान हो परंतु समाज उसे रोकता है।

लेखक ने बहुत सारे मुद्दों को जो मुस्लिम समाज से जुड़े हैं, उन्हें उभारना चाहा है। राजनीतिक मामला हो या सामाजिक मामला लेखक ने कोई कसर नहीं छोड़ी। समाज में बदनाम तवायफ़ो के बारे में कोई इतना अच्छी तरह से लिख सकता है तो वह रवीन्द्र कालिया ही हो सकता है। वे वेश्याओं के भिन्न जातियों का जिक्र करते हुए बताते है कि कंचन जाति की वेश्या अन्य जातियों से श्रेष्ठ होती है।

इस उपन्यास में अन्तर्जातीय विवाह के रुप में प्रो० जितेन्द्र मोहन शर्मा और गुल को देखा जा सकता है जिनका शादी समाज को यह कताई स्वीकार नहीं था। सिद्दीकी साहब जो सभी के नेता बने फ़िरते है, वे अपने ही कौम की लड़की गुल का किसी हिन्दू लड़के से शादी हो, कभी तैयार नहीं थे। वे अज़ीजन बी से कहते है "तो क्या आप एक हिन्दू काफ़िर से अपनी बिटिया की शादी करेंगी?"[9] आज भी समाज में प्रेम विवाह को स्वीकारा नहीं जाता और यह तो दो विभिन्न कौमों से जुड़ी बात है। आज भी भारत देश में मुश्किल से पाँच प्रतिशत लोग ही अन्तर्जातीय विवाह कर पाते है। हिन्दुओं को मुसलमानों से शादी जैसे संबंध स्वीकार नहीं है। गुल की माँ अज़ीजन की परेशानी थी कि एक तवायफ़ की बेटी से शादी करने में खानदानी मुसलमान बहुत परहेज कर रहे थे। अज़ीजन को तो प्रो० शर्मा पसंद थे, उनकी बेटी को भी वे पसंद थे, मगर दोनों की शादी कहीं हिंसा का रुप न ले ले, इसका उन्हें डर था।

उपसंहार :–

समकालीन हिन्दी कहानी अपने परिवेश के प्रति अत्यंत जागरुक रहा है। कथाकार जिस वर्तमान में

जीवित रहते है उसे ही अपने अंदर अनुभव करते है। रवीन्द्र कालिया भी ऐसे ही विरले रचनाकार है, जिन्होंने अपनी कहानियों में वास्तविकता को ही स्थान दिया है। उनकी कहानियाँ चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक, वे परिवेश को ध्यान में रखते है। जिस तरह उनका कथा साहित्य मुस्लिम परिवेश का चित्रण करती है उससे उनकी एक अलग छवि देखने को मिलती है। वे हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृति के रग–रग से अच्छी तरह से वाकिफ़ है। साथ ही भाषा के जादूगर भी है। उनकी कहानियों में मुस्लिम परिवेश का चित्रण यथार्थ के धरातल पर दिखता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

१. लेखक : रवीन्द्र कालिया, किताब : खुदा सही सलामत है, पृष्ठ सं ३६१,
प्रकाशक : राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण : २००५

२. लेखक : रवीन्द्र कालिया, किताब : चकैया नीम, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण १९८२

३. लेखक : रवीन्द्र कालिया, काला रजिस्टर, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण १९८६

४. लेखक : रवीन्द्र कालिया , ज़रा सी रोशनी, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण २००२

५. लेखक : रवीन्द्र कालिया, गालीब छुटी शराब, प्रकाशक : वाणी प्रकाशक, नई दिल्ली, संस्करण २०००

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 146-150

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अशोक चक्रधर की कविताओं में समसामयिक समस्याओं पर व्यंग्य

रवि प्रकाश

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, लालबहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय सरस्वती नगर, शिमला (हिप्र0)

अशोक चक्रधर पिछले कई दशकों से न केवल साहित्य–रचना के क्षेत्र में सक्रिय हैं, बल्कि धारावाहिक और वृत्तचित्र–निर्माण जैसे विभिन्न क्षेत्रों में भी उनका स्मरणीय योगदान है। उन्होंने अभिनय और निर्देशन में भी हाथ आज़माया है। कम्प्यूटर में हिंदी के प्रयोग को सरल और सर्वसुलभ बनाने की प्रक्रिया में भी अशोक जी ने अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं। इसके साथ–साथ अशोक जी एक मंचीय कवि के तौर पर भी बहुत प्रसिद्ध हैं। वे भाषा और साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ शिक्षक भी रहे हैं। इतनी सारी भूमिकाओं को निभाने में अशोक जी का समर्पण और अपने कार्य के प्रति निष्ठा कहीं भी कमज़ोर पड़ती नहीं दिखती। न केवल देश में, बल्कि विदेश में भी उन्होंने विविध आयोजनों में भाग लेकर हिंदी भाषा और साहित्य का नाम ऊँचा किया है।

अशोक जी की बहुमुखी प्रतिभा और बहुआयामी व्यक्तित्व की छानबीन करें तो उनके सभी रूपों में से एक हास्य–व्यंग्यकार की छवि कुछ ज्यादा उभरी हुई और अधिक परिचित सी नज़र आती है। अशोक जी शिष्ट हास्य के द्वारा न केवल पाठक या श्रोता को गुदगुदाते हैं, बल्कि उसे सोचने–समझने पर भी विवश करते हैं। उनका लेखन कोरा हास्य या मसखरी नहीं, बल्कि समसामयिक समस्याओं पर उनके चिंतन–मनन और मंथन का प्रतिफल है। वह स्वतंत्रता के दुरुपयोग, लोकतंत्र की कमज़ोर कड़ियों, अधिकांश मंत्रियों के निकम्मेपन, चुनावी वादों और नारों के गोरखधंधों, समाज में गहरे तक समाए भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, महँगाई, बढ़ती अनैतिकता, टूटते परिवारों, जीवन–मूल्यों के ह्रास, पर्यावरण के क्षरण आदि पर तीखा व्यंग्य करते हैं। न केवल व्यंग्य करते हैं, बल्कि समाधान खोजने की दिशा में भी प्रयास करते दिखाई देते हैं। उनका लेखन हमारे आसपास की जानी–अनजानी समस्याओं, विद्रूपताओं, विसंगतियों और विडंबनाओं की जीवंत तस्वीर प्रस्तुत करता है।

अशोक जी पिछली सदी में पचास के दशक में जन्मे उन साहित्यकारों में से हैं, जिन्होंने सन 1947 में मिली स्वाधीनता की खुली हवा में अपना बचपन जिया और स्वाधीनता के बाद के एक अलग भारत की परिकल्पना का बनना–बिगड़ना भी देखा। अशोक जी महसूस करते हैं कि आज़ादी से पहले अंग्रेज़ प्रशासक भारतीयों का शोषण कर रहे थे और आज़ादी के बाद भी शोषण का दुष्चक्र ज्यों का त्यों चल रहा है। अब नेता, पूँजीपति और उद्योगपति आदि आम जनता को शोषित कर रहे हैं। ऐसे में आज़ादी के मायने ही बदल गए हैं –

आज़ादी का मतलब/रामनाम की लूट है/इसमें गधे और घास/दोनों को बराबर की छूट है।/घास आज़ाद है कि/चाहे जितनी बढ़े/और गधे स्वतंत्र हैं कि/लेटे–लेटे या खड़े–खड़े कुछ भी करें/जितना चाहे इस घास को चरें।[1]

अशोक जी ने लोकतंत्र की मोहक छवि को भी विकृत होते हुए देखा। लोकतंत्र के माध्यम से जिस सुनहरे भविष्य का स्वप्न साकार होने की आशा की गई थी, वो स्वप्न आज़ादी के कुछ ही दशकों बाद छिन्न–भिन्न हो गया था। अशोक जी को लगता है कि वर्तमान में ये 'डैमोक्रैसी' एक ऐसी व्यवस्था बन गई है, जिसके द्वारा जनता अपने ही द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से अपना ही शोषण करवाती है। अशोक जी व्यंग्य करते हैं –

सर जहाँ/जनता के लिए/जनता के द्वारा/जनता की/ऐसी तैसी होती है/वहीं डैमोक्रैसी होती है।[2]

वे डैमोक्रैसी को लगभग 'दुर्दशा' का पर्यायवाची मान कर कहते हैं –

...अब मैं किसी से/ये नहीं कहता/कि मेरी ऐसी–तैसी हो गई है,/कहता हूँ–/मेरी डैमोक्रैसी हो गई है।[3]

अशोक चक्रधर ये अनुभव करते हैं कि हर पाँच वर्ष की अवधि के बाद होने वाली चुनावी–प्रक्रिया भी शोषकों के हाथ में एक उपकरण बन कर रह गई है। अब चुनाव के माध्यम से प्रगति और विकास के लिए जनता नेताओं को नहीं चुनती, बल्कि नेतागण–जो कि अमूमन एक से होते हैं, अपनी समृद्धि और अमीरी के लिए जनता को चुनते हैं :–

कवि ने उस समय खोपड़ी धुन ली/जब सुख–समृद्धि/और खुशहाली के लिए/चट्टे और बट्टे ने/एक–एक जनता चुन ली।[4]

कवि अशोक जी को लगता है कि चुनाव केवल प्रत्याशियों के झूठे वादों और भावुक या उत्तेजित कर देने वाले नारों की एक कोरी कवायद मात्र बन कर रह गए हैं, जिसकी तह में भावी नेताओं के ख़तरनाक मंसूबे छिपे रहते हैं। 'जंगल गाथा' नामक प्रसिद्ध कविता में वे लिखते हैं –

तो जंगल में थे/तरह–तरह के/नारे और वादे/पंजों में/नाखूनों में/छिपे हुए खूँखार इरादे।[5]

अशोक जी अनुभव करते हैं कि चुनावी–प्रक्रिया में साम–दाम–दंड–भेद आदि सभी नीतियों को आज़माने के बाद और सारे जुगाड़ तथा हथकंडे अपनाने के उपरांत संसद में अनेक अयोग्य लोग पहुँच जाते हैं और इस तरह जाने–अनजाने योग्य व्यक्तियों को और उनकी योग्यता को दरकिनार किया जा रहा है –

संसद रूपी माँ/वोटों का/अल्ट्रासाउंड कराने के बाद/योग्यता नाम की/कन्या की/भ्रूणहत्या करा रही है।

मुझे डर है कि योग्यता/साढ़े तीन अक्षरों का/लंगड़ाता हुआ लफ़्ज़/बनकर न रह जाए।[6]

लोकहित और राष्ट्रहित की चिंता में अशोकजी की तीखी निरीक्षण शक्ति से नेताओं का निकम्मापन भी नहीं बच पाया है। उनका मानना है कि अधिकांश नेता अच्छे अभिनेता हैं, जो मासूमियत का नक़ाब ओढ़े रहते हैं और भीतर ही भीतर स्वार्थ–सिद्धि की योजनाएँ बनाते रहते हैं –

उजली धवल खादी में/मन के काले हैं/ऊपर से भोले हैं/अंदर से भाले हैं।[7]

नेताओं और बड़े अधिकारियों की कुर्सीपरस्ती भी अशोक जी को खलती है। अन्य व्यंग्यकारों की तरह

वे भी कुर्सी की महत्ता और इसके आकर्षण को अपने काव्य का विषय बनाते हैं। अशोक जी कुर्सी की अनंत शक्तियों का बखान करते हुए रामायणकालीन 'सुरसा'का संदर्भ प्रस्तुत करते हैं, जिसके मुँह में हनुमान जी लघुकाय हो कर घुसते हैं और बाद में पुनः विशालकाय हो जाते हैं। अशोक जी का कहना है कि इस सुरसा की एक और बहन 'सुरसी' थी, जो इस कलिकाल में कुर्सी बन गई है। वे 'सुरसी' से कुर्सी बनी इस विचित्र वस्तु के सम्बन्ध में लिखते हैं –

आदमी इसमें/मच्छर की तरह घुस जाता है/लेकिन थोड़ी ही देर में/हाथी की तरह फूलकर/फंस जाता है।[8]

समसामयिक समस्याओं में से एक बहुत बड़ी समस्या भ्रष्टाचार भी अशोकजी के निशाने पर है। भारतीय समाज में भ्रष्टाचार बड़े से बड़े अधिकारी से लेकर छोटे–छोटे ओहदेदारों तक व्याप्त हो गया है। भ्रष्टाचार हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी का हिस्सा बनता जा रहा है और इसके कम या समाप्त होने की कोई उम्मीद भी नज़र नहीं आती है। इससे भी दुखद ये है कि समाज में भ्रष्ट व्यक्ति लज्जित होने के स्थान पर उपलब्धियों के अहसास से भरा हुआ है :–

विराट भ्रष्ट नेताजी ने/मेघ–मंद स्वर में उचारा/मेरे हज़ारों मुँह/हज़ारों हाथ हैं/हज़ारों पेट हैं/हज़ारों ही लात हैं।/नैनं छिन्दन्ति पुलिसा–वुलिसा, नैनं दहति संसदा,/नाना विधानि रूपाणि/नाना हथकंडानि च।।[9]

ये वर्तमान समय की विडंबना है कि भ्रष्टाचारी होना बुरी बात नहीं मानी जाती, बल्कि भ्रष्टाचारी सिद्ध होना बुरा माना जा रहा है। यदि बाहर छवि अच्छी है, तो भीतर–भीतर व्यक्ति चाहे जितने अपराध और काले कारनामे कर ले, कोई अंतर नहीं पड़ता –

कि आजकल/भ्रष्टाचार की नदी में/नहाने के बाद/जिसकी भी छवि स्वच्छ है/वही मगरमच्छ है।[10]

भ्रष्टाचार जीवन के हर क्षेत्र में जड़ों तक समा गया है। सार्वजनिक हित के लिए बनाए जाने वाले विभिन्न स्कूलों–कॉलेजों और अस्पतालों आदि के भवनों, खेल–मैदानों, पुलों, बाँधों आदि के निर्माण में भी लाखों–करोड़ों रुपयों का घोटाला और भवन–निर्माण सामग्री में मिलावट होना अब आम बात हो गई है –

लेकिन बनते–बनते ये दीवारें/टनों का सीमेंट खा जाती हैं/ईंट और रोड़ा में/करोड़ों पचा जाती हैं /इससे यही इंडीकेट कोटा है,/कि दीवारों के भी पेट होता है।[11]

भ्रष्टाचार का ही एक बहुप्रचलित ढँग रिश्वतख़ोरी है। छोटे से छोटे काम के लिए भी रिश्वत का विकल्प किसी न किसी रूप में सदैव खुला मिलता है। अशोक जी का कहना है कि रिश्वत एक ऐसा चारा है जिसे देकर भाईचारा बढ़ाया जाता है –

यहाँ हर कोई/एक–दूसरे के आगे चारा डालकर/भाईचारा बढ़ा रहा है/जिसके पास/डालने को चारा नहीं है/उसका किसी से भाईचारा नहीं है।/और अगर वो बेचारा है/तो इसका हमारे पास/कोई चारा नहीं है।[12]

अशोक जी अनुभव करते हैं कि ऐसे विकट समय में जब स्वार्थपरता और बेईमानी अपने चरम पर है, ईमानदारी और सद्भावना को खोजना बहुत कठिन हो गया है। 'ओज़ोन लेयर' कविता में वे अपनी ये चिंता व्यक्त करते हैं –

ईमानदारी का/अकाल पड़ गया है/उन्माद के उद्योग के/प्रदूषित कचरे से/सद्भाव की नदी

का/पानी सड़ गया है।/सदाचार, दुराचार,/शिष्टाचार, भ्रष्टाचार/इन सारे शब्दों में/अभेद हो गया है/शहर की ओज़ोन लेयर में/छेद हो गया है।[13]

अशोक जी वर्तमान समाज में व्याप्त बेरोज़गारी की समस्या से तो वाक़िफ़ हैं ही, वे नौकरीशुदा लोगों के निकम्मेपन और धूर्तता से भी भली–भाँति परिचित है। विभिन्न कार्यालयों में अनेकों ऐसे कर्मचारी मिल जाएँगे, जो काम को टालते रहने को ही काम समझते हैं, भले ही इससे समय और ऊर्जा का कितना ही नुकसान हो जाए और भले ही जनता को परेशानी होती रहे। इसी वजह से फाइलें आगे नहीं सरकतीं और काग़ज़ उनमें बंद पड़े रहते हैं। अशोक जी व्यंग्य करते हैं –

पर क्या करें/काग़ज़ों को भी तो फाइलें पसंद हैं/जहाँ शायद वे स्वेच्छा से बंद हैं।[14]

हमारे बाज़ारों में निम्न स्तरीय वस्तुएँ मिलना भी एक आम समस्या है। दोयम दर्जे की चीज़ें बनाना या किसी अच्छे उत्पाद की हूबहू सस्ती नकल तैयार करने में हमारे यहाँ के निर्माता सिद्धहस्त हैं। 'आलपिन कांड' नामक कविता में अशोक जी लिखते हैं –

श्रीमान,/मशीन अगर इंडियन होती/तो आपकी हालत ढीली न होती,/क्योंकि/पिन इतनी नुकीली न होती/पर हमारी मशीनें तो/अमरीका से आती है/और वे आलपिनों को/बहुत ही नुकीला बनाती हैं।[15]

बढ़ती जनसंख्या के कारण हमारे समाज में बेकारी बढ़ती जा रही है और जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा भुखमरी से जूझ रहा है। छोटे–मोटे काम–धंधे वाले लोग हर दिन बिना नागा हाड़–तोड़ मेहनत करने के बाद भी दो जून रोटी को तरसते हैं –

रिक्शेवाला कहता है –/बाबू जी,/रिक्शा पैर से नहीं/पेट से चलता है।[16]

अशोक चक्रधर की दृष्टि संयुक्त परिवारों की टूटन, रिश्तों में आती दरारों और उपेक्षा के पात्र बनते बुजुर्गों की समस्याओं पर भी बराबर पड़ी है। एक अबोध बच्चे और उसकी दादी का संवाद कितना मर्मभेदी है –

आख़िरकार बच्चे ने राज़ खोला/मासूमियत से बोला–/कल रात जब/मैं झूठ–मूठ को सो रहा था,/तब पापा ने/मम्मी से कहा था/कि अम्मा जब टें बोलेगी तो/खूब सारे रुपये मिलेंगे/फिर हम/ये घर बेच के/दूसरा लेंगे।[17]

कुल मिलाकर अशोक चक्रधर का काव्य हमें न तो अतीत के राजभवनों में घुमाता है और न ही भविष्य के अप्सरा लोक में ले जाने का प्रयास करता है, वो केवल हमारे वर्तमान की एक सीधी–सच्ची तस्वीर दिखाता है, चाहे वो कितनी ही सामान्य कोटि की या औसत दर्जे की क्यों न हो। अशोक जी की भाषा भी उनके इस उद्देश्य की पूर्ति में बहुत सहायक है, क्योंकि वो आम जनता की कही–सुनी भाषा है। बकौल शरद जोशी – 'मैं जब उन्हें सुनता हूँ, मुझे लगता है – मैं गहरे सामाजिक यथार्थ से उभरा एक वृत्तचित्र देख रहा हूँ। अशोक की कहन में बड़ी शक्ति है और यही हमारी भाषा की, हमारे देश और हमारी जनता की शक्ति है।'[18]

अशोक जी उन सभी छोटी–बड़ी समस्याओं को उकेरते हैं, जो हम सभी के जीवन और हमारी दिनचर्या को प्रभावित करती हैं। वे कोई मुगालता नहीं पालते और न ही पाठक को किसी भ्रम में जीने का अवसर देते हैं। वे हल्के तरीक़े से भारी सत्य कहते हैं और उनका उद्देश्य वही है जो हर एक बुद्धिजीवी का है – एक समतामूलक, शांतिपूर्ण और चरित्रवान समाज का निर्माण। उनका सपना है –

नफ़रत थमेगी/मुहब्बत रमेगी/ये धरती बनेगी/– दिव्यांगना।/गूँजे गगन में/महके पवन में/हर एक

मन में/सद्भावना।/मौसम की बाँहें/दिशा और राहें/सब हमसे चाहें /–सद्भावना।[19]

संदर्भ–पुस्तकें :–

1. भोले भाले, डैमोक्रेसी, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 10
2. भोले भाले, जिज्ञासा, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 8
3. भोले भाले, डैमोक्रैसी, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 11
4. भोले भाले, चट्टे मियाँ बट्टे मियाँ, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 58
5. हँसो और मर जाओ, जंगल गाथा, डायमंड पॉकेट बुक्स 2017, पृष्ठ 26
6. जो करे सो जोकर, मुझे डर है, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 56–57
7. भोले भाले, भोले भाले, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 14
8. भोले भाले, सुरसी, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 36
9. चुनी चुनाई, चालीसवाँ राष्ट्रीय भ्रष्टाचार महोत्सव, प्रभात प्रकाशन 2002, पृष्ठ 53
10. हँसो और मर जाओ, जंगल गाथा, डायमंड पॉकेट बुक्स 2017, पृष्ठ 22
11. भोले भाले, बहरी दीवारें, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 16
12. भोले भाले, डेमोक्रैसी, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 11
13. हँसो और मर जाओ, ओज़ोन लेयर, डायमंड पॉकेट बुक्स 2017, पृष्ठ 12
14. ए जी सुनिए, काग़ज़ों को फाइलें पसंद हैं, डायमंड पॉकेट बुक्स 2017, पृष्ठ 63
15. भोले भाले, आलपिन कांड, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 65
16. भोले भाले, रिक्शेवाला, डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 18
17. चुनी चुनाई, टें बोल दो न, प्रभात प्रकाशन 2002, पृष्ठ 13
18. भोले भाले, अशोक (भूमिका – शरद जोशी), डायमंड पॉकेट बुक्स 2018, पृष्ठ 5
19. हँसो और मर जाओ, सद्भावना गीत, डायमंड पॉकेट बुक्स 2017, पृष्ठ 127

पता : ग्राम झड़ग, तहसील जुब्बल, ज़िला शिमला (हिप्र0)।

दूरभाष : 9459448000

ईमेल पता – rvi.vna@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 151-154

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ब्रिटिश भारत में महिलाओं की स्थिति

स्वेता कुमारी

रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग।

ब्रिटिश भारत में महिलाओं की स्थिति पूर्व की तुलना में बेहतर थी। रूढ़िवादी धारणाओं विशेषकर पर्दा प्रथा, सती प्रथा एवं बाल विवाह की वर्णानाओं को तोड़कर इस काल में महिलाएँ सार्वजनिक जीवन में अपनी उपस्थिति दर्शा रही थी। शिक्षा एवं राष्ट्रीयता ने उन्हें उड़ने के लिए आसमान दिया था। इससे कई महिलाओं ने अपने कार्यों द्वारा उस दौर से आज तक समाज को प्रेरित करने का कार्य किया।

ब्रिटिश काल के पूर्व विभिन्न आक्रमाणकारियों से महिलाओं की सुरक्षा के नाम पर कई गलत प्रथाओं को समाज का हिस्सा बना लिया गया था। इसमें सती प्रथा, बाल विवाह एवं पर्दा प्रथा प्रमुख थे। महिलाओं के लिए घर के अंदर रहना सुरक्षित माना गया। उनके कौमार्य की रक्षा के लिए बाल–विवाह समाज का अभिन्न अंग बन गया। विधवा जीवन की कठोरता ने सती प्रथा को बल दिया।

ब्रिटिश भारत में सर्वप्रथम सती प्रथा पर कुठाराघात करने का प्रयास किया गया। राजा राम मोहन राय के निजप्रयासों ने वर्ष 1829 ई0 में लार्ड विलियम बेंटिक को इस पर कानून बनाने के लिए बाध्य किया। विलियम बेंटिक ने 1829 ई0 में एक कानून बनाकर विधवाओं को जिंदा जलाना एक अपराध घोषित कर दिया। सर्वप्रथम यह कानून बंगाल प्रेसिडेन्सी में लागू हुआ। उसके बाद 1830 ई0 में इसे बम्बई तथा मद्रास प्रेसिडेन्सी में भी लागू कर दिया गया।

सती प्रथा पर रोक से समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ी। समाज में वर्जनाओं को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। उन्हें ने सिर्फ बेहद साधारण जीवन जीना पड़ता था। बल्कि उन्हें सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेने पर भी बंदिशें थी। भारतीय सामाजिक–धार्मिक सुधारकों का ध्यान इस ओर भी था। राजा राम मोहन राय एवं ईश्वर चंद विद्यासागर के नेतृत्व में हजारों लोगों ने विधवा विवाह का समर्थन किया। इसके फलस्वरूप 1856 ई0 में हिनू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम पारित हुआ। विद्यासागर ने अपने पुत्र की शादी एक विधवा से कराई। मद्रास में वीरेश लिंगम पंतुलु ने विधवा विवाह के पक्ष में एक संगठन बनाकर उल्लेखनीय कार्य किया। उत्तर भारत में स्वामी दयानंद सरस्वती एवं उनके संगठन आर्य समाज ने विधवा विवाह का समर्थन किया। प्रो0 डी0 के0 कर्वे ने पूना में 1899 ई0 में विधवा आश्रम स्थापित किया।

सती प्रथा एवं विधवाओं की स्थिति के केन्द्र में बाल–विवाह था। इस लिए समाज सुधारकों का ध्यान अब इस ओर हुआ। ब्रह्ममसमाजी केशवचंद सेन के प्रयासों से 1872 ई0 में देशी बाल–विवाह अधिनियम पारित हुआ। इसमें 14 वर्ष से कम आयु की कन्याओं एवं बहु–विवाह को गैर–कानूनी घोषित किया गया। किंतु

यह प्रभावशाली साबित नहीं हुआ।

1891 ई0 में एक कानून पारसी समाज सुधारक जी0 एम0 मालाबारी के प्रयासों के परिणामस्वरूप पास हुआ। इसमें 12 वर्ष से कम आयु की लड़कियों का विवाह प्रतिबंधित कर दिया गया।

पुनः 1930 ई0 में हर विलास शारदा के प्रयासों से शारदा एक्ट पारित हुआ। इसके अनुसार 14 वर्ष से कम आयु की लड़की एवं 18 वर्ष से कम आयु के लड़कों का विवाह अवैध घोषित कर दिया गया।

स्त्री अधिकारों की रक्षा हेतु वर्ष 1937 ई0 में हिन्दु महिला सम्पत्ति अधिनियम पारित हुआ जिससे महिलाओं को आर्थिक अधिकार मिलें।

इन सभी प्रयासों में यद्यपि महिलाओं की स्थिति सुधारने के प्रयास किए किंतु जब तक महिलाएँ स्वंय अपने अधिकारों को न समझती, ये सभी प्रयास निरर्थक थे। इस विचार को केन्द्र बिन्दु बनाकर महिला शिक्षा के लिए कई कार्य किए गए। अभी तक महिलाएँ घर पर रहकर प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण कर रही थी। सर्वप्रथम 1819 ई0 में ईसाई प्रचारकों ने कलकत्ता में स्त्री–शिक्षा के लिए एक तरूण स्त्री सभा की स्थापना की।

जे0 बी0 बेटन ने 1849 ई0 में कलकत्ता में एक बालिका विद्यालय की स्थापना की थी। ईश्वर चंद विद्यासागर बंगाल के 35 विद्यालयों से जुड़े हुए थे। 1854 ई0 के चार्ल्सवुड पत्र में भी स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया।

अभी तक स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को सुधारने का काम पुरूष कर रहे थे। किंतु 20 वीं शताब्दी के अंत तक महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए खुद सामने आने लगी। इसमें मुस्लिम महिलाओं ने महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए मुहिम चलाई। बेगम रूकैया सखावत हुसैन ने कलकत्ता एवं पटना में मुस्लिम महिलाओं के लिए विद्यालय खोले। भोपाल की बेगमों ने अलीगढ़ में लड़कियों की शिक्षा के लिए विद्यालय खोले।

1880 ई0 के दशक में भारतीय महिलाएँ विश्व विद्यालय में प्रवेश करने लगी। यहाँ से शिक्षा प्राप्त महिलाएँ चिचित्सक, लेखक एवं शिक्षक बनने लगी।

कादम्बिनी गांगुली और चन्द्रमुखी बासु कलकत्ता विश्व विद्यालय से क्रमशः पहली विज्ञान एवं कला स्नातक बनी। कांदम्बिनी गांगुली एशिया की पहली महिला चिकित्सक (एलौपैथी) बनी। जबकि चन्द्रमुखी बासु एम0 ए0 करने वाली एवं कॉलेज की प्रिंसिपल बनने वाली पहली महिला बनी। बाद के वर्षों में कामिनी राय सहित कई महिलाएँ कलकत्ता सहित अन्य विश्व विद्यालयों से स्नातक पास कर अपनी पहचान बनाई।

अभी भी उच्च शिक्षा महिलाओं के लिए सपना थी। बावजूद इसके घर में शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाएँ भी अपनी लेखनी से समाज को प्रभावित कर रही थी। ताराबाई शिंदे की रचना ''स्त्री –पुरूष'' तुलना में महिला एवं पुरूष के बीच सामाजिक भेदभाव की आलोचनात्मक व्याख्या की गई।

पंडिता रामबाई ने अपनी पुस्तक ष्जीम भ्पही.ब्ंजम भ्पदकन ॅवउंदष में उच्च जाति की हिन्दु महिलाओं की दुर्दशा का विस्तृत वर्णन किया। पूना में एक विधवा गृह की स्थापना कर रमाबाई ने ससुराल से पीड़ित महिलाओं को आश्रय एवं रोजगार देने का काम किया।

सावित्री बाई फूले भारत की प्रथम शिक्षिका के रूप में शिक्षा के उत्थान एवं नारी कल्याण के लिए कई काम किया। कहा जाता है कि जब वे विद्यालय जाती थी तो लोग उनपर कीचड़ एवं पत्थर फेंका करते थे। वह विद्यालय पहुँचकर अपनी साड़ी बदल देती थी।

ब्रिटिश भारत में 1910 ई0 के बाद जब महिलाओं को लगा कि उन्हें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए मिलकर प्रयास करने होगें तो उन लोगों ने स्वंय को संगठित करना शुरू किया। 1917 ई0 में मद्रास में महिला भारत संघ का गठन किया गया। इसका उद्देश्य सामाजिक सेवा और महिला शिक्षा के साथ–साथ समान अधि ाकारों पर सरकारी नीति को प्रभावित करने की कोशिश करना भी था। इसमें महिलाओं के लिए मताधिकार की मांग प्रमुख थी।

1925 ई0 में महिलाओं की राष्ट्रीय परिषद् (NCWI) का गठन हुआ और 1927 ई0 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन किया गया था।

समाज में अपनी स्थिति सुधारने एवं अधिकारों के मांग के साथ–साथ महिलाएँ स्वतंत्रता आंदोलन के दोनों रूपों – क्रांतिकारी एवं गांधीवादी में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी।

1857 ई0 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई बेगम हजरत महल सहित कई महिलाओं ने अपनी भूमिका निभाई। इनमें ज्यादातर सत्ता से संबंधित थी। किंतु बाद के वर्षों में गांधी जी के आह्वान पर आंदोलन के लिए सामने आनेवाली महिलाएँ सामान्य घरों से थी। इन्होंने असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं भारत छोड़ो आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चाहे वह विदेशी वस्त्रों का विरोध हो, नमक निर्माण मिलो पर धरणा देना हो अथवा ताड़ी के पेड़ों को काटना हो। हर जगह महिलाएँ पुरूषों के साथ खड़ी थी। कस्तूरबा गाँधी, कमला नेहरू, लक्ष्मी सहगल, सरोजिनी नायडू, अरूणा आसफ अली, उषा मेहता, सुचेता कृपलानी जैसी लाखों महिलाओं ने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्य न्योछावर करने को तैयार थी।

गाँधीवादी आंदोलन के साथ–साथ क्रांतिकारियों द्वारा चलाए जाने वाले आंदोलन में भी महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही। भारतीय राष्ट्रीयता की महान पुजारन कही जानेवाली मैडम भीखाज कामा ने सर्वप्रथम जर्मनी के स्टुअर्टगार्ड में भारत का झण्डा लहराया था। दुर्गा भाभी ने चन्द्रशेखर आजाद एवं भगत सिंह के साथ मिलकर कई क्रांतिकारी कार्यों को अंजाम दिया। बीनादास शांति घोष, सुनीति चौधरी, रानी गुंडदाब्यू, जैसी कई महिलाएँ क्रांतिकारी आंदोलन से प्रभावित थी।

अबला जीवन हाय।
तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध।
आँखो में पानी।।

यद्यपि ब्रिटिश काल में महिलाओं की स्थिति में सुधार आया और वह सामाजिक बंधनों को तोड़कर सामने आई और वह हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्शायी। बावजूद इसके इनकी स्थिति में कोई खास सुधार नहीं आया। कुछ महिलाओं को छोड़कर बाकी महिलाएँ अब भी घर की चहार दीवारी में सामाजिक–धार्मिक परंपराओं को ढ़ोने के लिए मजबूर थी। चूँकि 1857 ई0 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने भारत के सामाजिक–धार्मिक विषयों से स्वंय को अलग कर दिया था। राष्ट्रवादियों का भी उद्देश्य देश की स्वंयत्तता एवं स्वतंत्रता थी। नतीजा महिला सुधार के लिए बनाए गए कानून पन्नों पर ही सिमट कर रह गए।

पुनः स्वतंत्रता आंदोलन में भी महिलाओं की भूमिका को सीमित रखा गया। ज्यादातर नेतृत्वकर्त्ता पुरूष ही बने रहे।

साहित्यकारों ने भी महिलाओं की घर की जिम्मेवारियों को निभाने की ही वकालत की। 1935 ई0 में छपी जयशंकर प्रसाद की पुस्तक कामायणी के ये शब्द बहुत कुछ बोल जाते हैं :–

नारी, तुम केवल क्षद्धा हो।
विश्वास रजत नग–पगतल में।
पीयुष स्त्रोत सी बहा करो।
जीवन के सुंदर समतल में।।

स्पष्ट है कि अभी भी महिलाओं की भूमिका को सार्वजनिक जीवन में पूरी स्वीकृति नहीं मिल पाई थी। ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तंत्र देवता'' का यथार्थ ऋग्वैदिक काल तक ही सीमित था। इसके बाद महिलाओं की स्थिति एवं अधिकारों में निरंतर कमी आती गई। यद्यपि ब्रिटिश काल में विभिन्न सुधारकों एवं महिलाओं के स्वप्रयासों से स्थिति में परिवर्तन आने शुरू हुए। किंतु वास्तव में महिलाओं की स्थिति में सुधार इक्कीसवी सदी में ही देखा जा रहा है। अब महिलाएँ मुखर होकर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था नौकरियों में आरक्षण परिवहन सुविधा का विकास, सरकारी नौकरियों में सुविधा आदि ने महिलाओं को निरंतर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. चन्दु विपिन (2015) भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली।
2. विश्व प्रकाश गुप्त, मोहिनी गुप्त स्वतंत्रता संग्राम और महिलाएँ।
3. जोशी, पुष्पा (1988), गाँधी आन वोमन, सेन्टर फार वोमनस डेवलपमेन्ट स्टडीज दिल्ली।
4. श्रीनिवास, एम0 एन0 (1978), द चेन्जिंग पोजीशन ऑफ इंडिया वूमन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बाम्बे।
5. आधुनिक भारत, (VIII), झारखण्ड शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, राँची।
6. इंटरनेट एवं नोहस।
7. सरकार सुमित (2000) आधुनिक भारत, दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 155-160

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Savtribai Phule-The pioneer of Indian Education : An Introduction

Aparna Verma

Research Scholar, CIL, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-67

An Introduction :-

Savitribai Jyotirao Phule was an Indian social reformer, scholar, and poet. A prominent personality of the social change transformation of Maharashtra and the sign of Mars is associated with the likes of BR Ambedkar, Baibhau Sa Theke. Worked actively to protect against inequality (untouchability) and to eliminate passivity.

The second half of the nineteenth century in India was the golden time of educational, social, and cultural developments and the battle against unapproachability, child marriage, sati, female feticide, and lack of education in the general public. During that period instruction was restricted to the fringe of some high societies of the general public. On such troublesome occasions, the mental fortitude, consistent exertion, and a battle to open the shut entryways of educational establishments for ladies and men of Dalit-Backward class were done by the incredible character - Savitri Bai. Indeed, the same Savitribai Phule whom the world knows as the first teacher of modern India.

Birth and Family of Savitribai Phule :-

Savitribai was born on January 3, 1831, in Naigaon (in present-day Satara district) in an agricultural family. Her father's name was KhandojiNevsePatil and hermother's name was Lakshmi. She was the eldest daughter of the family. There was no doubt of sending Savitri to any school because in that period there was no practice of sending the offspring of the denied and in reverse classes to school overall. Girls of those days get married early, Father KhandojiNavsePatil and mother Laxmibai wedded Savitri in 1840 with 12-year-old Jyotirao Govindrao Phule of Pune, at the youthful age of 9, because of the then conditions and social traditions. Jyotirao was additionally ready to get training just till the fifth norm as he was removed from school to help the family's familial bloom business and cultivating.

Jyotirao was a thinker, writer, social activist, and anti-caste social reformer. He is counted

among the major agitators of the social reform movements of Maharashtra. Savitribai's education started after her marriage. It was her husband who encouraged Savitribai to learn and write. She passed the third and fourth exams at a normal school. After which she took training at Ms. Farar's Institution in Ahmednagar. Jyotirao stood firmly in favor of Savitribai in all her social endeavors.

Savitribai Phule Education :-

After marriage, Jyotiba began educating Savitribai.At that time, getting schooling girls was considered a sinful demonstration. Accordingly, Jyotiba'sprotest began. And he did not give up, he didn't surrender and proceeded to educate and compose covertly, and so did Savitri Bai too.

Sagunabai, a relative of Savitribai and Jyotiba, used to go to the farm to give food to Jyotiba in the afternoon. Jyotiba made a pen of a thin branch of mango under a mango tree on the bund of the field and gave alphabet knowledge to both of them. Nobody knew that the first letters engraved on the dust in the field, and of that field gave birth to a brilliant fire, which was to prepare a highway forthe development of women and deprived society by burning the shackles of discrimination, restrictions, and inequality prevailing in the society. Walking on which they can raise their heads and live with confidence and self-pride. In this way, Savitri was able to acquire alphabet knowledge with much struggle both on the farm and at home.

"It did occur to me that the improvement that comes about in a child due to the mother is very important and good. So those who are concerned with the happiness and welfare of this country should pay attention to the condition of women and make every effort to impart knowledge to them if they want the country to progress. With this thought, I started school for girls first. But my caste brethren did not like that I was educating girls and my father threw us out of the house. Nobody was ready to give space for the school nor did we have money to build it. People were not willing to send their children to school but LahujiRaghRautMang and Ranba Mahar convinced their caste brethren about the benefits of getting educated."

Wellsprings of motivation of Savitribai Phule :-

In 1840, Mrs. Misel, the spouse of a British official, began an ordinary school for young girls in Chhabildaski Haveli in Pune, and Savitri began contemplating there. While studying there, Savitri read the history of Thomas Clarkson, who neutralized slavery, which was an agonizing story of the life and battle of African slavesin America was printed. Savitri understood that education is the strongest tool of change because an uneducated person can neither know his rights nor fight for their attainment. This book not just ingrained in her the desire to understand herself, yet additionally gave her the fantasy about educating the girl child of society.

In a letter to Jyotirao, Savitribai told the story about a boy about to be lynched by his fellow

villagers for having relations with a woman of lower caste when Savitribai intervened. She wrote, "I came to know about their murderous plan. I rushed to the spot and scared them away, pointing out the grave consequences of killing the lovers under British law. They changed their mind after listening to me." This very much intervened in her mind and marked a great impetus. She took the determination to work for the downtrodden people.

The foundation of first young girl'sschool :-

To interface girls with education, on January 1, 1848, Savitribai Phule, alongwith Jyotiba, set up a girl's school at Bhidewadi, Pune with nine girls of various castes, where Sagunbai additionally functioned as ateacher. In this school, girls made their presence acknowledged in the scholastic circles of the country by concentrating on mathematics, grammar, geography, information about maps of Europe and Asia including India, history, and policy of Marathas, and child understanding. Sadashiv Govande arranged the books for the school.

Not long after that, on 15 May 1848, one more school for Dalit boys and girls was opened in Dalit Basti. And set up 5 schools within a year. She was not just restricted to the education and financial improvement of women and downtrodden people but was also concerned about the low educational status of the minority community.

She made her student Fatima Sheik an educator in one of her schools and gave her the distinction of being the first Muslim lady teacher, who later turned into the country's leading social worker, to associate minorities with the mainstream of educating. In this way, Savitribai, along with Jyotiba, established 18 schools in and around Pune, without any outside financial help, with personal means during the period from January 1, 1848, to March 15, 1852, where hundreds of children got an education and made their lives.

Savitribai Phule had no kids, students were her beginning and end. At the point when Savitribai used to go to her schools to teach the kids, the adversaries used to throw trash, soil, and excrement on her. But the determined Savitri never deviated from her goal but continued on her path of duty with more confidence and courage.

She would carry an extra sari in a bag with her and on reaching school, she would clean up the mess thrown by her opponents and put on another sari. In the path that Savitri had chosen, no flowers but thorns were scattered every step of the way. But even in the prick of those thorns, she would have been happy that she was able to do something for women's education and their rights.

More about her :-

Savitribai Phule was a talented poet and author. In 1854, she authored Kavya Phule, and in 1892, she released Bavan Kashi Subodh Ratnakar, as well as a poem entitled "Go, Get Education," in

which she encouraged oppressed people to free themselves via education. She became an outspoken feminist as a result of her experiences and work. She founded the MahilaSeva Mandal to create awareness about women's rights issues. She also asked for a gathering place for women that was free of all forms of prejudice, including caste discrimination. The fact that all of the women in attendance were required to sit on the same mat was symbolic. She was also a pro-life campaigner who opposed infanticide. She started a women's clothing store.

When the bubonic plague appeared in the area near Nalasopara in 1897, Savitribai and her adopted son, Yashwant, built a clinic to treat those who had been affected by the worldwide Third Pandemic. The clinic was built on the outskirts of Pune, in an infection-free zone. Savitribai died a hero's death while attempting to save Pandurang Babaji Gaekwad's kid. Savitribai Phule hurried to Gaekwad's side after learning that his son had got the Plague in the Mahar village outside of Mundhwa. She carried him to the hospital on her back. Savitribai Phule contracted the Plague during the process and died on March 10, 1897, at 9:00 p.m.

"She was also associated with a social reform society called 'SatyashodhakSamaj' founded by Jyotirao on September 24, 1873, in Pune. The objective of the samaj, which included Muslims, Non-Brahman, Brahmans, and government officials as members, was to free women, Shudra, Dalits, and other less privileged ones from getting oppressed and exploited. The couple arranged minimum-cost marriages in the samaj sans any priest or any dowry. Both brides and grooms took pledges in such marriages that amounted to their wedding vows. Savitribai worked as head of its women's section and following the demise of her husband on November 28, 1890, she became the chairperson of the samaj. Savitribai carried forward the work of her husband through the samaj leading it till her last breath."

The book Savtribai Phule and I by Sangeetamulay by Panther's Paw Publication described Savtribai's life. She narrated the story of Shabri is a rural Dalit girl who comes from a poverty-stricken village to a big city. She qualifies to study in an engineering college through the reservation category. "Shabri feels that Savitri's remarkable story remains untold and that all educated girls in the country owe their education to her. To celebrate and share her life with the world, she petitions for Girls' Education Day to be commemorated on Savitribai's birth anniversary every year. In her quest, Shabri faces a lot of opposition. But with Savitri's powerful example before her, she is undeterred in her mission."

"How does a rural Dalit girl of the under-privileged class, dark skin, and caste survive in a city all by herself with no one to mentor her? How does she handle the discrimination that she has to face almost daily on account of her class, color, accent, dress sense, English language skills, and her

'coolness quotient in a big city?"

Quotes by her :-

"The lack of learning is nothing but gross bestiality. It is through the acquisition of knowledge that (he) loses his lower status and achieves the higher one"

"You have started the benevolent and welfare work for the poor and the needy I also want to carry my share of the responsibility. I assure you I will always help you. I wish the godly work will be helped by more people."

"जाओ जाकर पढ़ो लिखो बनो मेहनती, बनो आत्मनिर्भर काम करो ज्ञान और धन इकट्ठा करो। ज्ञान के बिना सब खो जाता है ज्ञान के बिना हम जानवर बन जाते हैं इसलिए खाली मत बैठो। जाओ जाकर शिक्षा लो।" "स्वावलंबन का हो उद्दम, प्रवृति ज्ञान–धन का संचय करो मेहनत करके। बिना विद्या जीवन व्यर्थ पशु जैसा, निठल्ले ना बैठे रहो करो विद्या ग्रहण। शूद्र अतिशूद्रों के दुःख दूर करने के लिए मिला है कीमती अवसर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने का।"

"गरीबों और जरूरतमंदों के लिए हितकारी और कल्याणकारी कार्य शुरू किए हैं। मैं अपने हिस्से की जिम्मेदारी भी निभाना चाहती हूं। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मैं आपकी हमेशा मदद करुँगी। मैं कामना करती हूं कि ईश्वरीय कार्य अधिक लोगों की मदद करेंगे।"

Her legacies :-

- Along with B. R. Ambedkar and Annabhau Sathe, Phule has become an icon in particular for the backward classes. Women in local branches of the Manavi Hakk Abhiyan (Human Rights Campaign, a Mang-Ambedkarite body)[12] frequently organize processions on their Jayanti (birthday in Marathi and other Indian languages).
- Pune City Corporation created a memorial for her in 1983.
- On 10 March 1998, a stamp was released by India Post in honor of Phule.
- In 2015, the University of Pune has renamed Savitribai Phule Pune University in her honor.
- On 3 January 2017, the search engine Google marked the 186th anniversary of the birth of Savitribai Phule with a Google doodle.
- Krantijyoti Savitribai Phule, an Indian drama television series based on her life was aired on DD National in 2016.
- Savitribai Phule, an Indian Kannada-language biopic was made about Phule in 2018.

References :-

1. Sundararaman, T. (2009). Savitribai Phule first memorial lecture, [2008]. National Council of Educational Research and Training. ISBN 9788174509499. OCLC 693108733
2. Kandukuri, Divya (11 January 2019). "The life and times of Savitribai Phule". Mint. Retrieved 19 September 2021.

3. https://www.latestly.com/social-viral/savitribai-phule-jayanti-2021-thoughtful-quotes-on-education-and-social-welfare-by-indias-first-lady-teacher-to-share-on-mahila-shikshan-din-1443625.html
4. M. Santosh Kumar, 2019, Savitribai Phule Contribution towards Indian Social Elements – A Study, JETIR, Vol.6, Issue-11, pg. 25-32,
5. https://www.newindianexpress.com/lifestyle/books/2021/feb/14/savitribai-phule-and-i-book-review-the-woman-the-leader-2263044.html
6. Waghmore, Suryakant (2013). Civility against Caste: Dalit Politics and Citizenship in Western India. SAGE Publications. pg. 34, 57, 71–72.
7. https://www.newindianexpress.com/lifestyle/books/2021/feb/14/savitribai-phule-and-i-book-review-the-woman-the-leader-2263044.html

Aparnav333@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 161-164

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिक्षा और संस्कृति

डॉ. अल्पना शर्मा

सहायक आचार्य, आईएएसई मानित विश्वविद्यालय, सरदारशहर, चूरू, राजस्थान

सारांश :-

धर्म दर्शन, कला, साहित्य, भक्ति, अध्यात्म आदि सभी संस्कृति में समाविष्ट हैं। सभी चेतना–व्यापार (कर्म, भाव, चिंतन) और उसकी उपलब्धियाँ संस्कृति के भीतर आ जाती है। कर्म, बुद्धि और भाव में परिशोध, संस्कार, शुद्धिकरण की प्रक्रिया और उसकी उपलब्धियों का अक्षुण्ण कोश ही संस्कृति है। भारतीय शिक्षा के संवाहक एवं राष्ट्र निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित शिक्षकों के सामने मानव मूल्यों को बचाने का संकट विकट समस्या बन गया है। हमारे भीतर पूर्व जन्म से प्राप्त अनेक अच्छे बुरे संस्कार संचित होते हैं तथा इसी के साथ वंशानुगत रूप से माता–पिता, दादा, दादी के भी सूक्ष्म संस्कार संचित होते हैं तथा इसी के साथ वंशानुगत रूप से माता, पिता, दादा, दादी के भी सूक्ष्म संस्कार, गुण–अवगुण इसमें मिल जाते हैं। इस तरह हमारे व्यक्तित्व के निर्माण में दो प्रमुख तत्वों से होता है। मानव मूल्यों की तलाश, उनकी स्थापना, स्वीकृति, व्यावहारिकता ही संस्कृति हैं। धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, भक्ति, अध्यात्म आदि की साधना मानव के हितार्थ मानव द्वारा की जाती है।अच्छा जीवन जीने के लिए शिक्षाऔर संस्कार दोनों ही जरूरी है।

धर्म दर्शन, कला, साहित्य, भक्ति, अध्यात्म आदि सभी संस्कृति में समाविष्ट हैं। सभी चेतना–व्यापार (कर्म, भाव, चिंतन) और उसकी उपलब्धियाँ संस्कृति के भीतर आ जाती है और आजकल तो राजनैतिक समझौतों ने संस्कृति को नृत्य–गीत आदि कलाओं में सीमित कर दिया है। जब विदेशों से हमारे सांस्कृतिक आदान–प्रदान आयात–निर्यात के समझौते होते हैं तब जो सांस्कृतिक मिशन भेजे जाते हैं तो उनमें नृत्य और संगीत के प्रवीण कलाकार ही होते हैं जैसे नाचना–गाना ही किसी देशकी संस्कृति है। विभिन्न चिंतकों समाजशास्त्र–पंडितों ने संस्कृति की अनेक परिभाषाएँ दी है। यहाँ तक कि जीवन की शोभन–अशोभन, मंगल–अमंगलमय, सुषमा, विद्रूपता, घृणित–श्लाघ्य रीति–रिवाज, परम्पराओं तक को संस्कृति माना है। काव्य पुरुष निराला नामक पुस्तक में संस्कृति का यह स्वरूप प्रस्तुत किया गया है–कर्म, बुद्धि और भाव में परिशोध, संस्कार, शुद्धिकरण की प्रक्रिया और उसकी उपलब्धियों का अक्षुण्ण कोश ही संस्कृति है। कर्म–क्षेत्र में नैतिक रीति–रिवाज, अनुष्ठान, कर्मकाण्ड, सामाजिक व्यवहार, बुद्धि क्षेत्र में धर्म, दर्शन अर्थव्यवस्था, राजनीतिक, प्रशासनिक विधान,भाव क्षेत्र में अनुभूति, आस्था, विश्वास, निष्ठा, कला, साहित्य आदि आ जाते हैं। लेकिन चेतना की इस प्रक्रिया का प्रयोजन क्या है? इसका प्रयोजन है श्रेष्ठ मानव की प्रतिष्ठा। यह श्रेष्ठ मानव का निर्माण व प्रतिष्ठा ही मानव–मूल्य हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि मानव मूल्यों की तलाश, उनकी स्थापना, स्वीकृति, व्यावहारिकता ही संस्कृति

हैं। धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, भक्ति, अध्यात्म आदि की साधना मानव के हितार्थ मानव द्वारा की जाती है। मानव जीवन की सफलता इन चार साध्यों को उपलब्ध कराना है। ये है – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

संस्कृति और शिक्षा एक–दूसरे के पर्याय हैं। संस्कृति का काम है– संस्करण अर्थात् परिष्कार करना। यही काम शिक्षा भी करती है। समाज की रचना में भी संस्कृति का विशेष योग रहता है। किसी भी सामाजिक संरचना को समझने के लिए संस्कृति एक आवश्यक तत्व है। संस्कृति समाज को संगठित रखती है। जीवन शैली के स्वरूप को प्रस्तुत करने का कार्य संस्कृति करती है। संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग कृ–धातु स्तिन प्रत्यय से हुई है। इसमें जीवन के सभी पक्षों का समन्वय है। राल्फ लिंटन के अनुसार– "संस्कृति सीखे हुए व्यवहारों तथा उनके परिणामों का वह समग्र रूप है, जिसके निर्माणकारी तत्व किसी विशिष्ट समाज के सदस्यों द्वारा प्रयुक्त और संचरित होते हैं।"

मानव का मूल्य और महत्व संस्कृति की आत्मा है, इसका आधार है। जिस संस्कृति में मानव का जितना महत्व होगा वह संस्कृति उतनी ही समृद्ध होगी उत्कृष्ट होगी श्लाघ्य और अनुकरणीय होगी क्योंकि संस्कृति और कुछ नहीं मानव मूल्यों का अक्षुण्ण, अपरिमित भण्डार है। मूल्यों की कसौटी पर ही कोई धर्म, संस्कृति, दर्शन आदि उत्कृष्ट या निकृष्ट कहलाते है। भारतीय नीति चिन्तन में संस्कृति के निर्माण के प्रयासों का यदि संधान किया जाए तो आत्मकल्याण के बीज भी समाज कल्याण में ही निहित हैं ऐसा लक्षित होगा। ऐसा कोई काम सुसंस्कृत व्यक्ति को नहीं करना चाहिए जिसे वह अपने प्रति सहन नहीं कर सकता अर्थात महाभारत की सूक्ति संस्कृति का मेरुदण्ड है –

''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत !'' –विजयेन्द्र स्नातक

भारतीय शिक्षा के संवाहक एवं राष्ट्र निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित शिक्षकों के सामने मानव मूल्यों को बचाने का संकट विकट समस्या बन गया है। अपने ज्ञान वव्यवहार से छात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली शिक्षकों की प्रतिबद्धता अब स्थानांतरित होकर मध्यान्ह भोजन (पोषाहार) व्यवस्था और उसके वितरण तथा सरकारी प्रतिक्रियाओं की कागजी आपूर्ति में सिमट गई है। अतः बाल केन्द्रित शिक्षा का उद्देश्य उनके लिए गौण हो गया है। उपयुक्त शैक्षिक प्रबंधन के अभाव और शिक्षकों की शिक्षणेत्तर कार्यों में संलग्नता के कारण न केवल शिक्षण अधिगम का गुणात्मक स्तर प्रभावित हुआ है बल्कि शिक्षा का मूल उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास अधूरा रह गया है।

भारतीय संस्कृति की ही एक दूसरी प्रमुख धारा आत्मा और परमात्मा के सत्य को, उसकी परम सत्ता को नहीं स्वीकार करती। यह अनात्मवादी परम्परा बौद्ध और जैन दर्शन के रूप में विकसित और प्रतिष्ठित हुई। यह परम्परा भी सभी वस्तुओं, जीवों और व्यक्तियों में घनिष्ट अंतर्संबंध मानती है और उनमें पारस्परिकता और अन्योन्याश्रय का भाव देखती है।

बचपन में हमारी माता ही पहली गुरु होती है जो हमें बोलना, चलना, फिरना और भोजन करना सिखाती है, मल, मूत्र कराती है, कपड़े पहनाती है। परंतु ज्यों–ज्यों हम बड़े होते हैं त्यों–त्यो अपने भीतर के सहज ज्ञान से स्वयं चलते हैं। हमारे भीतर पूर्व जन्म से प्राप्त अनेक अच्छे बुरे संस्कार संचित होते हैं तथा इसी के साथ वंशानुगत रूप से माता–पिता, दादा, दादी के भी सूक्ष्म संस्कार संचित होते हैं तथा इसी के साथ वंशानुगत रूप से माता पिता दादा दादी के भी सूक्ष्म संस्कार, गुण–अवगुण इसमें मिल जाते हैं। इस तरह हमारे व्यक्तित्व के

निर्माण में दो प्रमुख तत्वों से होता है। हमारे व्यक्तित्व के तीन स्त्रोत हमारे शिक्षक, पुस्तकें और मित्रगण आदि होते हैं जो हमें अच्छा–बुरा ज्ञान देकर हमारी बुद्धि और सोच को बदलते हैं। पूर्व जन्म से प्राप्त संचित संस्कार, वंशानुगत, प्राप्त संस्कार, और इस जीवन में समाज से जो कुछ सीखते हैं, आर्जित करते हैं यही सारे तत्व एक साथ मिलकर अवसर पाकर हमें चलाते हैं। जीवन के क्रियाकलापों में प्रकट होते हैं यहाँ अन्य प्रश्न यह है कि क्या हम अपने अतीत के कर्म संस्कारों से सदा के लिये बंधे हुए है? क्या इस बंधन को काटा नहीं जा सकता? जी हाँ इसमें परिवर्तन लाया जा सकता है ऐसा बिल्कुल नहीं है कि हम पूर्व जन्म के खूंटे से बँधे हुए हैं।

शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ डिग्री हासिल करना, रोजगार प्राप्त करना और धन कमाना नहीं है बल्कि इसी के साथ ज्ञान प्राप्त अपनी चेतना व चरित्र को बदलना अपने भीतर छिपी पशु तो को त्यागना, दुर्गुणों का शोधन करके सद्गुणों में वृद्धि करना। परिवार, समाज और देश की भलाई के लिए जीना सीखना है। अपनी कमजोरियों को पहचानना है, एक योग्य और अनुशासित नागरिक बनना है। स्कूल और कॉलेज में शिक्षा तो दी जाती है परंतु बच्चों को कोई संस्कार नहीं दिया जाता। जबकि अच्छा जीवन जीने के लिए शिक्षा और संस्कार दोनों ही जरूरी है। दोनों का उद्देश्य परिष्कार करना ही होता है। किसी भी पदार्थ की मूल प्रकृति में परिष्कार करके उसे समाज के लिए उपयोगी, कल्याणकारी बनाना संस्कृति है। संस्कृति निष्पादित किया जाना है जबकि सरकार उसके साधन। 'कृति' का अर्थ कर्म अथवा गति होता है। गति इस विशाल ब्रह्माण्ड की नियति है। गीता में भी भगवान् के मुख से ही इसे इस प्रकार स्पष्ट किया गया है –''नहि जानु कश्चित क्षणमपि तिक्ष्त्यकर्म– कृत। हमारी कृति या कर्म जब स्वाभाविक होता है तो प्रकृति कहलाता है और जब वह स्वभाव के प्रतिकूल होता है तो 'विकृति' बन जाता है। वही हमारा कर्म जब किसी वैशिष्ट्य से युक्त होता है तो वह सुकृति होने से कीर्ति का रूप धारण कर लेता है, और जब हमारा कर्म व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर लोकमंगलकारी बन जाता है तो तब उसकी संज्ञासंस्कृति हो जाती है। इस तरह कृति, प्रकृति, कीर्ति तथा संस्कृति कर्म की उच्च–उच्चतर–उच्चतम भूमिकाएं है। कर्म की इस यात्रा में जिन आदर्शों', मर्यादाओं और गुणों अर्थात मूल्यों का अनुसरण अमीष्ट होता है, वही मूल्य मानव–मूल्य कहलाते हैं और ये स्पष्टत ही संस्कृति के मेरुदण्ड कहे जा सकते हैं।

व्यक्ति के जीवन मूल्यों के प्रमुख स्रोत होते हैं उसके अपने संस्कार एवं अपना वंशानुक्रम। संस्कृति का शब्दकोशीय अर्थ है 'संस्कारगत परिष्कार' (Cultivated Refinement)। यह अर्थ सौन्दर्य की कसौटी के आधार पर सत्य होने पर भी एकांगी है क्योंकि इससे संस्कृति अन्य सांस्कृतिक रूपों की आवश्यकता को साकार करने में असमर्थ हो जाती है। वस्तुतः 'सीखे हुए व्यवहार प्रकारों की उस समग्रता से किसी समूह के ऐतिहासिक विकास में जीवनयापन के जो विशिष्ट प्रकार विकसित हो जाते हैं इस समूह की संस्कृति है।

नीतिशास्त्र अनुसार जो लोग नीति–शास्त्र के नियमों का पालन करते हैं. एवं सद्व्यवहार का पालन करते हैं, उन्हें ही सुसंस्कृत कहा जाता है। सस्कृत में सभी अस्तित्व विषयक अमूर्त विशेषताओं की समग्र रूप में अभिव्यक्ति होती है। इससे लोगों की जीवन पद्धतियां, उत्पादन, नैतिक मान्यताएं, मत, विश्वास आदि समाविष्ट होते हैं। मैलिनोवस्की के अनुसार संस्कृति के अन्तर्गत उत्तराधिकार में प्राप्त कलात्मक वस्तुएं, यान्त्रिक प्रक्रियाएँ, विचार, आदते एवं मूल्य सम्मिलित हैं। प्रत्येक समूह के अपने सांस्कृतिक प्रतिमान (cellural Standards) भी होते हैं तद्नुसार ही उसके मूल्य प्रतिमान भी होते हैं। अत्यधिक अन्तरता (high variabesity) किसी भी संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। देश–काल–पात्र के अनुसार सांस्कृतिक प्रतिमानों में अन्तर आने से लोगों

के मूल्य प्रतिमानों में भी अन्तर आ जाता है। इस दृष्टि से जीवन मूल्यों को स्थूल रूप से दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है – परिवर्तमान मूल्य व शाश्वत मूल्य।

यूनेस्को द्वारा समय पर सांस्कृतिक नीतियों पर आयोजित विश्व सम्मेलनों के कारण विश्व के देशों में सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपने नये दायित्वों के प्रति जागरूकता और वे राष्ट्रों के जीवन में सांस्कृतिक मूल्यों के बढ़ते हुए महत्व से परिचित हुए वेसमेन (1970) ने संस्कृति की कल्पना का विस्तार किया और इसमें लोगों की जीवन पद्धति को शामिल समझा जाने लगा तथा सांस्कृतिक विकास किसी भी समाज में समग्र विकास का अनिवार्य तत्व माना जाने लगा। इन सम्मेलनों से लोगों की सांस्कृतिक समझ में निश्चित ही वृद्धि हुई। विविध देशों की संस्कृति के विविध पक्षों को लेकर अनेक प्रकाश में साए। पुरातत्ववेत्ताओं ने भी इस प्रक्रिया में अच्छा सहयोग दिया। उद्योग व्यापार से लेकर मनोविनोद के साधनों तक, जन्म संस्कारों से लेकर नर कंकालों के परीक्षण तक संस्कृति के रूप में गहन शोध एवं संगोष्ठियों के विषय बने। वस्तुतः सदाचार, शिष्टाचार जैसे संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रतिमानों की चर्चा अपेक्षाकृत कम हुई है।

जीवन पद्धति क्या है? जीवन शैली को कौन से तत्व प्रभावित करते रहे हैं? जीवन मूल्यों एवं हमारी सामाजिक संस्कृति का सह–सम्बन्ध है। यदि हमारी संस्कृति जीवन के महान मूल्यों का स्रोत है तो हमारे पार्थिव जीवन मूल्यों के अतिक्रमण में किस प्रकार एवं किस मात्रा में सहायक है या हो सकती है? ये बिंदु किसी भी समय के सौष्ठव पूर्ण जीवन के सन्दर्भ में विशेष महत्वपूर्ण एवं विचारणीय हैं जिने विविध सांस्कृतिक अध्ययनों में अनदेखा दिया गया है। ''हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कोई भी संस्कृति मनुष्य के लिए स्थायी एवं पूर्ण रूप से उपयोगी तभी हो सकती है जबकि वह उसे समस्त पार्थिव जीवन मूल्यों के अतिक्रमणार्थ एक प्रकार का दुर्लभ एवं विश्वातीत ऊर्ध्वमुख प्रवेश देने के लिए अतिरिक्त कुछ और भी प्रदान करे। परोपकारी समाज की चिरस्थायिता और व्यवस्थित सुख समृद्धि को ज्ञान, विज्ञान और दार्शनिक जिजाला के महान् कौतूहल के द्वारा या कला, काव्य और स्थापत्य की समृद्धि, ज्योति एवं प्रभा के द्वारा विभूषित करने से भी अधिक कुछ करना होगा।''(अरविन्द)

संस्कृति जीवनयापन का विशेष प्रकार है वह मानव के क्रियाकलापों की समष्टि मात्र नहीं। सामान्यतः किसी समुदाय विशेष के सामाजिक आचार–विचार, स्वभाव, आदत, रीति–रिवाज कला आदि को हम अपनी सुविधा हेतु 'संस्कृति' कह देते हैं वस्तुत ये संस्कृति नहीं अपितु उसके अंगों की समष्टि मात्र संस्कृति नहीं इसके अतिरिक्त वह कुछ और है जैसे अंगों का समूह मानव मात्र नहीं अपितु इसके अतिरिक्त भी वह कुछ और है।

संदर्भ :–

1. डॉ. जयनाथ नलिन, (फरवरी–मार्च 2012) मानव मूल्य और संस्कृति, संस्कारम, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.–66
2. डॉ अविनाश पारीक, शिक्षक शिक्षा में सार्वभौनिक मूल्यों एवं शांति शिक्षा की प्रासंगिकता, संस्कारम् दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.सं – 8
3. त्रिपाठी, अजित नारायण, भारतीय संस्कृति में मूल्य विमर्श और उसकी समसामयिक प्रासंगिकता, पृ.– 25
4. शास्त्री, डॉ. चरणदास (फरवरी–मार्च 2012) मानव मूल्य एवं संस्कृति एक विवेचन संस्कारम् दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 54–55
5. डॉ गुप्त, नत्थूलाल, संस्कृति और मानव मूल्य, संस्कारम्, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.–57–58

मो. नं.–9460565567, ईमेल–alpna180@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 165-175

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Ramifications of economic changes and democratic participation – a study of citizens of West Bengal

Atashi Bhattacharya, Research Scholar,
Dr. N. Sushil K Singh, Chairman & Professor,
Dept. of CM&T, GJUS&T, Hisar, Haryana.

Abstract :-

Do the people feel the effects of recent economic reforms in their daily lives? Is there any correlation between people's awareness of reforms and people's perception about their role in economic decision making? Political economy of economic reforms has generated a lot of research studies and the issue of the appropriate role that the people must assume and which political decision makers must enact during the reforms process has increasingly come to the fore. The present study was conducted in 24 districts of West Bengal with an aim to gauge the effects of economic reforms and to assess people's opinion on participation of political process for this change of economy. With a multistage random sample survey, using a survey questionnaire, the researchers collected the data from 428 residents. The findings of the study shows that awareness of the term economic reforms is largely low among the masses specially the rural population though they can readily recognize terms like 'Notebandi' (demonetization), GST etc. Some social groups can see rapid economic growth due to the reforms while for others the situation only worsened. Many feel that the reforms had made no difference at all and just a means of harassment for common people. People also had opinion that it was intended for good and would have yielded better results if implemented with proper planning. The study held immense scope to understand the challenges faced by the key stakeholders of economy the 'voters' and their aspirations as we go to future.

Keywords :- Economic reforms, Demonetisation, Government, Society, Democratic participation

Introduction :-

The study of socioeconomic processes examines how social and economic operations interact. As a result, it examines how societies respond to their local, regional, or global economies. Additionally, political power dynamics frequently mirror and influence patterns of social and economic

inequality. These connections have prompted a number of researchers to look for strategies to comprehend and foresee the social and political forces that shape and influence every aspect of life. India , the largest democracy , has come a long way since its independence. Development and growth doesn't necessarily only means economic growth but also as freedoms and capacities that individuals have to improve their social and economic standing, it corresponds to inclusion of all sections of society in the economic & political decision making.

At different phases of development and power shift at centre many economic transitions were observed in India too. Some of the recent economic changes are implementation of GST and demonetisation. The media was flooded with various feedback received from the citizens of the country found themselves divided in their opinion about the reforms and its impact on their everyday lives. Many critics saw these economic changes as the opposite of reform which sucked liquidity out of the economic system and it also failed to provide influx of new currencies in time. Demonetisation was criticized heavily as such a drastic announcement was just done through a televised address and lacked the trust in democratic institutions such as parliament and judiciary. On the other hand, many people hailed and welcomed the new tax regime and the transparency it may bring into the entire system. Since the media hold the key to the public sphere and can have a significant impact on public opinion formation, no political actor or institution can afford to ignore the media due to their significance as a source of information for citizens, a channel of communication between policymakers and the citizenry, and between various parts of the political system. Therefore, the media can have a significant impact on political communication and decision-making processes as well as public opinion.

The new urban class now has a way to organise and connect with others who share their interests thanks to technological advancements in media and communication. People all over the world are attempting to break free from the traditional social structures, fueled by the success of social media and new forms of communication. However, a sizable portion of society also lives in villages, so it is not just made up of urban elites. Frequently, their voice goes unheard. Therefore, there is evidence of a significant gap in political opinion between the public at large and those who are politically active. The study aims to close the gap and is an honest effort to highlight all opposing viewpoints and opinions.

Review of Literature :-

(Kumar, 2002) Economic reforms are a means to bring stabilization in the economy through structural adjustments to various external events. The ultimate goal of reforms is to hasten the process of economic development of the nation resulting in well being of its people. They are not formulated for the sake of reforms but for the interest of India's poor so that they can both contribute and reap

benefits from them.

World Bank in its press release, 2019, stated that governments of 115 economies launched 294 reforms over the past year to pave the way for increase in jobs, expanding commercial activity, and resulting rise in incomes in their respective nations. The ten economies where business climates improved the most were Saudi Arabia, Jordan, Togo, Bahrain, Tajikistan, Pakistan, Kuwait, China, India, and Nigeria, the study found. Import & export are one of the areas where governments initiated reforms to make doing business easier.

Upadhyay (2014) in Socio cultural impact of globalization in India talks about the components of culture and explains that economic reforms impacts culture. Culture includes popular culture, festivals, literature, music and cinema and television etc. The aspects like equal opportunities, gender inequality, drugs and trafficking and other social and political values also equally get affected in the process of globalization of economies and societies.

(Baruch, 2014) in his chapter 'Taming the twins' talks about the importance of grass root participation in developmental processes. He considers that changing social behavior and personal habits of people beyond a certain age as an uphill task. Moreover, leisure is not a privilege of the rich alone; even the poor fancy such pursuits especially since the benefits of giving up their leisure for work is so insignificant, given the low wage levels. Rural population was seen to prefer leisure over work. Without proper economic designs and planning we may end up in a huge dent on government finances, lethargic attitudes and a costly labour resulting in poor comparative advantage.

Nolan & Bohoslavsky (2020) opines that Impact assessments of economic reforms in South Africa are often carried out as standard operating practice for large projects. The assessment includes environmental, social, health and, more recently, human rights elements. Individual's economic choices which come under human rights are impacted due to economic policy reforms. Economic reform policies may compromise democratic self- determination and hamper the democratic participation of marginalized groups. This means that governments must implement reforms that are non-discriminatory. These reforms must also allocate the maximum available resources to the realisation of the rights of all people in a country.

(Posegga & Jungherr, 2019) calls Twitter, a micro blogging service, which has become a much sought-after space for political talk. In their research paper, they define a Twitter agenda as a ranked list of topics that at any given time were the focus of politically vocal Twitter-user. Based on data collected during the campaign for Germany's federal election in 2013, they found a political communication environment characterized by channel-specific dynamics like the attention, interests, and motivations of politically vocal Twitter users.

According to (Bradlow, 2020) , governments should always assess the impact of economic reforms on citizens .The newsletter remarked this in reference to the reforms in South Africa and its negative impacts on the society at large. South African government's implementation of economic reforms led to job losses and cuts in social services. It also affected the resources available in the country and could not generate promised benefits which led to a situation of social conflict in the society.

According to *Lahiri (2014)* middle class- people in Asia & other countries of the Pacific who are beyond poverty line but not in the category of rich are the basis of strong and functional democracy & has a potential role in global economy as they have a great share in the consumer market. The middle class, as he defines, are beyond the poverty line but not in the category of the rich. The experience of East Asian countries & China demonstrates when millions of people start leaving poverty and join the middle class a transformation in society happens. This drives economic activity by propelling rapid consumption growth and decline in disposable income. This income dictates the economic growth of the society at large.

Rice and Stankova (2019) claims that economic reforms are more likely to fail or be reverted if they are not understood, believed, and accepted by those affected. The prevalence of social media has enabled more and more people to voice their opinions on public policy, raising expectations for transparency and accountability around the world. As a result, politicians are increasingly pressured to explain their actions to the broader public and show that they deserve support. This means that we must do more to ensure that message is heard, understood, and believed. A better understanding of the policy is fundamental to its effectiveness. Better communication can contribute to the success of a country's reform efforts. Valuable insights can be gained from the experiences of other countries and institutions.

Verzosa and Mitchell (n.d) A more comprehensive and strategic use of communication in the area of economic reform as a tool for social transformation, behavior change, and consensus-building is still in its infancy. There is, however, a small but growing body of empirical evidence that indicates that the use of strategic communication in economic reform programs can substantially reduce political risk and promote acceptance of reform. In a study of senior public service and civil society representatives from 60 developing countries and emerging economies conducted by the World Bank, respondents cited the public's poor understanding of economic reform as a key obstacle to its success.

Policy makers must ensure that people in the grassroots must receive sufficient information about economic reform and can co-relate the application and benefit of economic reform to one's own daily lives. Communication can be a potent weapon for understanding people's concerns,

perceptions, and motivations which drives the design and implementation of reform programs. The choice of means of communication is not necessarily an easy task in the controversial issues of economic reform. Those who oppose reform may intentionally portray it negatively in order to influence public opinion. Also, media representatives themselves may come under political pressure to take an adversarial stance.

Research Objectives :-

1. To perceive people's consciousness of the economic status before and after the implementation of economic reforms (demonetization) and subsequent change in economy
2. To assess their opinions on participation of political process for this change of economy of the country.

Research methodology :-

The research is conducted in 23 districts of West Bengal. With a multistage random sample survey, using a survey questionnaire, the researchers collected the data from 428 residents of West Bengal. The data was obtained partly through a web-based comprehensive questionnaire and partly through the face to face interactions on the line of the online questionnaire. Moreover, in the present circumstances of ongoing pandemic, researchers collected answers through telephone recordings of the respondents residing in many districts where questions were asked by post graduate students of Mass Communication deputed by the researchers for the purpose.

The survey questionnaire composed of mainly closed-ended questions, covering socio-demographic, geographic and other characteristics as well as awareness, understanding the perception of the felt ramifications of economic reforms in their socio- cultural communications. The first section comprised (9) questions on the socio-demographic and geographic characteristics of the citizens, e.g., the district of residence, type of settlement, age, gender, and family income among others. The second section asked people about their socio- cultural life as perceived by them pre and post major economic reforms implemented after 2014 Lok Sabha elections . It included thirty – nine (39) questions on whether they are aware of the term economic reforms, which particular economic reforms can they recall, how major economic reforms like Demonetisation & GST affected their consumption, expenditure, savings and even their media usage to communicate about the felt ramifications. The data, thus collected was finally analysed using certain quantitative Statistical methods such as Percentage and Frequency Analysis, Graphical Representation, Contingency Coefficient Analysis, and use of Descriptive Statistics. All these Statistical Methods were carried out using the SPSS for Windows.

Study & Analysis :-

Figure 1 : Use of communication medium for understanding Economic Reforms

The above figure (Fig.1) outlines the preferred communication medium of people for understanding economic reforms. The media were categorized into seven types. They are :

1. Newspapers & magazines 2. Radio 3. Television 4. Friends, family & coworkers 5. Internet & social media 6. All media platforms and 7. None. As outlined in the figure, 30 percent states that the media that helped them the most in understanding the economic reforms was Television and an equal number of 30 percent states that it was Internet & social media that helped them the most in understanding the economic reforms like GST & demonetization among others. 21 percent says they used newspapers and magazines the most to raise their awareness of the concepts while 16percent confirms that talking to friends, families and co-workers proved to be the most beneficial. There were one percent saying that their access to all the communication media helped them understanding the reforms and only 0.4 percent. said no media helped him/her. The highest number of respondents in the survey fell in the category of using television and internet to have a better understanding of the reforms (30% each) .The least number of participants was observed in the category using radio to understand about the reforms (2 %)

Figure 2 : Opinion regarding citizens' role in formulation or betterment of economic policies

The above figure (Fig. 2) shows if citizens recognize their role in formulation or betterment of economic policies. The comments were categorized into three groups. They are: 1. Yes 2. No and 3. Can't say. As shown in the figure, 62 percent recognizes citizens' role in formulation or betterment of economic policies, 12 percent disagrees upon any such role played by the citizens. The remaining 26 percent are not sure about any probable role of citizens in formulation or betterment of economic policies in a country. The percentage of participants realizing role of citizens in betterment or formulation of economic policies (62 %) is higher than participants who disagree on any such role played by the citizens (12 %)

Table 1: Cross tabulation of awareness of economic reforms and expectation of Economic Reforms while casting votes

		Awareness of Economic Reforms			
		Yes	No	Don't Know	Total
Expectation of Economic Reforms while casting votes	Yes	200	33	16	249
		46.7%	7.7%	3.7%	58.2%
	No	45	14	6	65
		10.5%	3.3%	1.4%	15.2%
	Maybe	65	26	23	114
		15.2%	6.1%	5.4%	26.6%
Total		310	73	45	428
		72.4%	17.1%	10.5%	

The above table (Table 1) depicts the awareness of economic reforms among people and whether they expect or look forward to implementation of economic reforms while casting their votes. The highest number of 200 respondents (46.7 %) who are aware of reforms agrees that they expect implementation of reforms when they cast their votes, followed by 65 respondents (15.2 %) who say they are unsure whether they expect such things while they vote. Whereas, 45 respondents (10.5 %) who understands economic reforms says that they do not expect any reform implementation when they vote. There are even 33 respondents (7.7 %) who although have no idea about what economic reforms are, but they look forward to its implementation when they cast their votes

Table 2 : Cross- tabulation of age groups of respondents and perceiving the mention of economic reforms in election manifesto

		Age_group				
		21-30	31-40	41-50	51-60	Above 60
ER_in_election manifesto	Yes	68	56	30	27	12
		15.9%	13.1%	7.0%	6.3%	2.8%
	No	35	24	18	22	4
		8.2%	5.6%	4.2%	5.1%	.9%
	Maybe	48	34	25	15	10
		11.2%	7.9%	5.8%	3.5%	2.3%
Total		151	114	73	64	26
		35.3%	26.6%	17.1%	15.0%	6.1%

The above table (Table 2) illustrates the relationship between age groups of respondents and perceiving economic reforms in election manifesto by the respondents. The rows in the table explain whether people have seen economic reforms as an agenda in election manifestos of political parties during elections. The feedback of the people was grouped into 1. Yes 2. No and 3.May be. The columns of the table represent the age groups of respondents which were classified into: 1.21-30 years 2. 31-40 years 3. 41-50 years 4. 51-60 years 5. Above 60 years. As shown in the table, 15.9 percent respondents who say that they have noted the economic reforms as mentioned in election manifesto are from the age group 21-30 years and 13.1 percent who say they have observed the mention of economic reforms in election manifesto are from 31-40 years of age. There are seven percent respondents in the age group of 41- 50 years who also affirms that they follow the election manifesto and have observed the agenda of economic reforms. 11.2 percent belonging to the age group of 21-30 years and 7.9 percent from 31-40 years say that they may have seen economic reforms in election manifesto and they couldn't recollect it. In addition 8.2 percent between 21-30 years and 5.6 percent

between 31-40 years say that they have not seen economic reforms in election manifesto of political parties before elections.

Table 3: Cross – tabulation of gender of respondents and opinion of respondents on fulfillment of the economic goals as mentioned in election manifesto

		Gender			
		Female	Male	Others	Undisclosed
Manifesto ER_goals_achievable	Yes	58	62	0	3
		13.6%	14.5%	.0%	.7%
	No	43	68	2	0
		10.0%	15.9%	.5%	.0%
	Can't Say	85	107	0	0
		19.9%	25.0%	.0%	.0%
Total		186	237	2	3
		43.5%	55.4%	.5%	.7%

The above table (Table 3) denotes the relationship between gender of respondents and opinion of respondents on fulfillment of the economic goals as mentioned in election manifesto. The rows in the show whether people believe that the economic goals as mentioned in the election manifestoes achievable. The responses were recorded as: 1. Yes 2. No and 3. Can't say. The columns in the table represent the gender of respondents which were classified into: 1. Female 2. Male 3. Other 4. Undisclosed. As implied in the table, 25 percent males and 19.9 percent females say that they are unsure whether the economic goals mentioned in the election manifesto can be fulfilled. While 15.9 percent males and 10 percent females say that they do not think that economic goals as mentioned by election manifestoes of political parties are achievable. 14.5 percent males and 13.6 percent females say that they believe that the goals of manifestoes can be achieved.

Discussions :-

Different types of areas are classified according to development and living conditions of the voters who were questioned. 34% of the 428 respondents belong to urban areas followed by 32% from the different suburban regions while 29 % are from rural areas. If we look at the proportion of people who are aware of the reforms, a very small section of rural voters are found to be aware of the reforms. Even after four years of continuation of economic reforms, the level of awareness is alarming. But, most of the people in urban areas reported that they are aware of both the major economic reforms – GST & Demonetisation, which were implemented in India post 2014 Lok Sabha elections. More than half of the voters confirmed that demonetization of currency has affected their lifestyle.

Digitization of economy is felt to be a good outcome post reforms as most of the people have started doing cashless transactions either immediately post implementation of demonetization or in the last 2-3 years. Although online shopping probably triggered by the pandemic is the main purpose of many but equal number of people said that they opt for cashless transactions only if cash is unavailable, so people still prefers cash transactions irrespective of income group, gender or age. Both male and female respondents in the study were observed to recognize the active role of citizens in the formulation or betterment of economic policies (33.4% males and 27.1 % females). Although the residents of both rural and urban areas are aware of their roles in economic policy formulation and implementation for desired results, the rural population was observed to be more skeptical about whether it will be put into practice.(21% urban population, 15% rural population but 10 % of the rural population remained skeptical).The distribution of awareness of citizen's roles across different occupations represented that for private sector employees, businessmen, and housewives the instances of distrust about any probable role of citizens in the formulation or betterment of economic policies in a country.

Participants belonging to both genders were found to expect economic reforms while casting votes but a slightly higher percentage of both males and females also remained unsure during the study(32.2% males and 25.2 % females but 26.2 % belonging to both genders found to be unsure). A certain section of the rural population was observed to be indecisive about their expectations while casting votes as compared to the urban population. (11.2 % rural and 6.3% urban respondents). Across all the occupational groups the participants from the public sector, retired personnel, and self-employed people had the most clarity regarding their expectations of economic reforms while casting their votes. More males as compared to females have the opinion that economic goals as mentioned by election manifestoes of political parties are not achievable as seen in the study(15.9 % males and 10% females). Among the participants from rural and urban areas, there were more occurrences of people from rural areas as compared to urban areas who either find the goals unachievable or hesitated to express their opinions freely. (74.6 % of the rural population against 71 % of the urban population).A similar trend of skepticism was recorded through the responses of people engaged in the private sector, businesses, and who are self-employed

The young voters say that they look for economic reforms in the election manifesto before they go out to vote though they believe such promises are not meant to be kept. But still rural voters as well as urban voters of all age groups cast their votes in anticipation of appropriate economic reforms. People belonging to high income groups feels confident about their role in economic decision making in contrary to people of low income groups who feel that citizens have no role to play at all in shaping the economic policies of the country. There have been differences in opinion regarding the

impact of reforms to rich poor divide and people debated about the adverse effects of reforms on middle class. The rural population in this regard just said that they neither had so much money in banks nor are they so much rich to be affected by demonetization or GST. They in fact, failed to answer about the need for such reforms and anticipated reforms in agricultural sectors which would be relevant to them. The rural and urban youth showed their disapproval to reforms saying that though it accelerated growth but failed to generate employment. There is a strong feeling among the voters that whatever the benefits of economic reforms could be must have gone to the rich and resulted only in harassment of the middle class and no implications at all for the poor. White collar professionals do believe that the reforms helped in reducing corruption, black money & decreased incidences of tax evasion but others criticized it by attributing the reforms to inflation and privatization. In a nut shell, people did not find the reforms meeting their expectations as it was not implemented with planning.

Conclusion :-

While several studies have been previously conducted to study various aspects of society, polity & economy of India, this topic is far from being exhausted as a research area. New studies can always be conducted in the field of current economic transformation to analyze its impacts on social, cultural and economic practices by the citizens. Understanding of how different processes like consumption, communication, participation of voters are influenced by economic actors and how they shape policies is indispensable. The implications of the study would relate to understanding how effective various government programs and how economic reforms and policies are affecting the lives of people.

References :-

1. Bajpai, N. (1995). Economic Reforms in Developing Countries-Theory and Evidence. Economic & Political Weekly, 30(2).
2. Bank, T. W. (2019). Governments Worldwide Launched 294 Reforms Over the Past Year to Make Doing Business Easier
3. Baruch, B. M. (2014). Taming the Twins. 184-210. doi: 10.4135/9789351507918.n7
4. Bradlow, D. (2020). Governments should always assess the impact of economic reforms on citizens. The Conversation. https://theconversation.com/governments-should-always-assess-the-impact-of-economic-reforms-on-citizens-133195
5. Dabrowski, M. e. a. (1995). Economic Reforms in Kyrgyzstan. Russian & East European Finance and Trade, 31(6), 5-30.

6. Debroy, B. (2020). What do India's citizens want?. In What Does India Think? Retrieved from https://ecfr.eu/special/what_does_india_think/analysis/what_do_indias_citizen_want
7. Kumar, N. (2002). Indian Economy Under Reforms: An Assessment of Economic and Social Impact. India: Bookwell Publications.
8. Kumar, S. (2004). Impact of Economic Reforms on Indian Electorate. Economic and Political Weekly, 39(16), 1621-1630.
9. Kumaraswamy, V. (2014). Laudable Goals Yet Defective Programmes Making Growth Happen in India: A Road Map for Policy Success (pp. 19-91). New delhi: SAGE Publications India Pvt Ltd
10. Lahiri, A. (2020). The Great Indian Demonetization. Journal of Economic Perspectives, 34(1), 55-74. doi: 10.1257/jep.34.1.55
11. Lahiri, A. K. (2014). The Middle Class and Economic Reforms. Economic and Political Weekly, 49(11), 37-44.
12. Margold, S. (1967). Yugoslavia's New Economic Reforms. American Journal of Economics and Sociology, Inc, 26(1), 65-77. Tufte, T. (2017). Communication and Social Change: A Citizen Perspective. Hoboken, NJ: John Wiley & Sons.
13. Nolan, A., & Bohoslavsky, J. P. (2020). Human rights and economic policy reforms. The International Journal of Human Rights, 24(9), 1247-1267. doi: 10.1080/13642987.2020.1823638
14. Posegga, O., & Jungherr, A. (2019). Characterizing Political Talk on Twitter: A Comparison Between Public Agenda, Media Agendas, and the Twitter Agenda with Regard to Topics and Dynamics. In 52nd Hawaii International Conference on System Sciences (pp. 2590-2599).
15. Too little democracy is why India's reforms and progress are stymied. (2020, December 9). ThePrint. https://theprint.in/opinion/too-little-democracy-is-why-indias-reforms-and-progress-are-stymied/563614/
16. Understanding Socio-economic and Political Factors to Impact Policy Change (S. d. Department, Trans.). (2006). Washington DC, USA.
17. Upadhyay, R. K. (2014). Socio-Cultural Impact OfGlobalisation In India. THE DISCUSSANT, 2(3). Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/320288692
18. Vanamali, K. V. (n.d.). Demonetisation, 5 years on: Key economic indicators paint a mixed picture. Retrieved from https://www.business-standard.com/podcast/economy-policy/demonetisation-5-years-on-key-economic-indicators-paint-a-mixed-picture-121110700971_1.html

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 176-179

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Effect of Specific Yogic Exercise on the Shooting Performance of Basketball Players

Simple Purohit, Researcher
Dr. Surjeet Singh Kaswan, Supervisor
Tantia University, Sriganganagar, Rajasthan.

Introduction :-

Yoga is sometimes known as the science of faith with the view that the human body is a vehicle for the spirit and soul. It offers a number of gears with which to music and rebalance the automobile, in order that it is able to attract the best degree and amount of prana, and fulfil the human function. Asana and pranayama techniques "cleanse the frame of tensions, pollutants and impurities and release electricity blocks, which obstruct the harmonious waft of energy in the frame. Meditation techniques have numerous benefits. For, not most effective do they allow a deeper connection to the inner life, which could lead to more understanding of the real causes of someone's disorder, in addition they permit an increase inside the connection to, and sharing of, the better tiers of the existence pressure, which are themselves healing and enlightening to the body, mind, soul and spirit.

Yogic Exercise :-

Yoga is commonplace, reaping benefits every person of all ages. Asana is a very historic exercise of yoga whose antiquity may be traced to and even from the excavations of the statues and figures at Mohenjo-Daro and Harappa. Asana performs a critical function in every sort of yoga asana.

Yoga is the inhibition of the changes of the thoughts. This way that it prevents the contents of the mind from taking unique paperwork the purpose of Yogasana isn't handiest to expand the muscle mass and the frame but additionally modify proper sports of all, especially the inner organs and glands which affect the frightened device and that which controls over 'properly being' to a greater degree than one honestly supposes.

Physical Fitness :-

Fitness is the capacity of heart, blood vessels, lungs and muscles to function at optimum efficiency. Physical fitness is to the human body what fine tuning is to an engine. It is a physical state

of well-being that allows people to perform daily activities with vigor, reduce their risk of health problems enabled by a lack of physical activity, and establish a base of fitness for participation in a variety of physical activities. It enables performing to, one's potentials. Fitness can be described as a condition that helps look, feel and do best. More specifically, it is: "the ability to endure, to bear up, to withstand stress, to carry on in circumstances where an unfit person could not continue, and is a major basis for good health and well-being." People can only fulfill their potential when their bodies are healthy and fit. Unfortunately, many people in our society are not healthy and are not getting sufficient physical activity in order to become physically fit.

Basketball :-

Basketball is a worrying game. Not handiest the basketball participant ought to have incredible cardiovascular patience to run up and down the courtroom time after time for 4 quarters of play, but he will also want for you to execute explosive bursts of speed, explosive jumps, and explosive moves for agility, time after time. Such an capacity to perform explosively no matter extreme cardiovascular fatigue is called "strength-endurance". Explosive energy, one of the maximum critical components of performance associated factors, enables the player to transport speedy, soar excessive, and beat out the man in front of him.

Methodology :-

Researcher has used survey method to get the information of the present circumstances.

Sample :-

To achieve the purpose of this study 90 basketball players studying inhigh school and higher secondary school basketball players were randomlyselected as subjects. Though the range of age for the present study was fixedbetween 16-19 years, the selected subjects for the present study were hailed from 17 to 19 years only. They were medically fit.

Data Collection :-

The current research work deals with the analysis of the effect of specific yogic exercise on the performance of basketball players of some hypothesis. The present work deals with the various basketball players of college level of Rajasthan state.

Tool :-

The researchers have used various Yogic exercise & physical Exercise of the players for this study.

Objective :-

To find out effect of specific yogic exercise on the shooting performance of basketball players.

Analysis of Data :-

Table showing thesignificant difference during attain of pre-test and post-test of yogic exercise on the shooting performance of Basketball Players-

Test	N	Mean	S.D.	Df.	t-value	Level of significance
Pre Test	90	131.07	9.18	178	8.46	S*
Post Test	90	121.09	6.41			

Table 1difference during attain of pre-test and post-test of yogic exercise on the shooting performance Basketball Players -

Description :–

In order to compare the shooting performance among pre-test and post-testof basketball players independent t-test was applied. To determine the significancedissimilarity among means of score of pre-test & post-test of basketball players, the level of significance was set at (0.05).

Mean score of pre-test & post-test of basketball players131.07 and 121.09 with a SD values are 9.18 and 6.41 respectively..Since the considered t value is 8.46 which are greater than tabulated t value.So it was major at (0.05) level. It may' be completed to there is significantdifference during attain of pre-test and post-test of yogic exercise on the shooting performance of basketball players.

Table 4.1 reveals that the significant difference on the shooting performance amongpretest and posttest was 8.46 which are greater than the requiredvalue.

So the null hypothesis, "There is no significant difference during attain of pre-test and post-test of yogic exercise on the shooting performance of basketball players" was rejected.

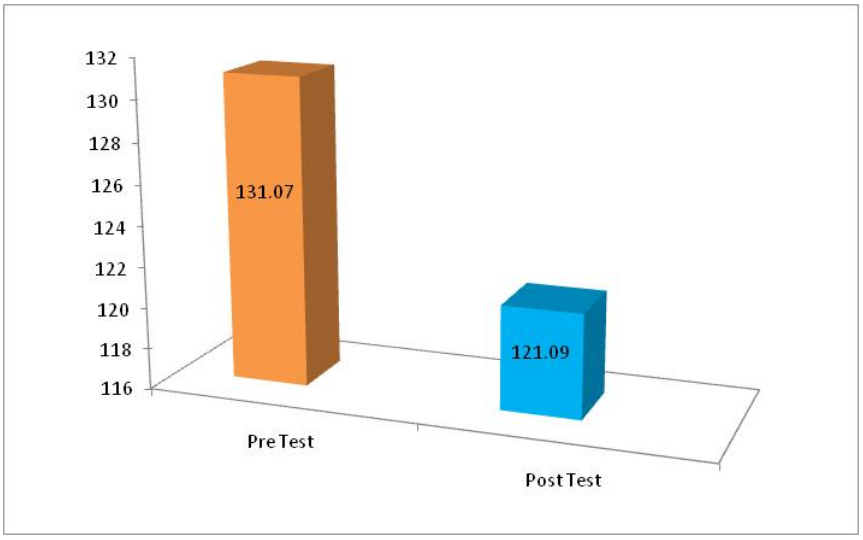

Result :-

There is significant difference significant difference during attain of pre-test and post-test of yogic exercise on the shooting performance of basketball players.Pre-test's score high than post-test's scoreof the players.

Conclusion :-

The current research work was undertaken into the effect of specific yogic exercise on the performance of basketball players of some hypothesis. Therefore it now becomes essential at this stage of the research work to see whether the hypothesis were rejected or accepted on the basis of data analyzed. In next chapter we summarized the research work.

References :-

1. Aggarwal. J.C (1975),Educational Research, New Delhi, Aryan Book Depot, 1975, P. 73.
2. Ananda, (1981), Yoga Develop Your Talent Power,Delhi, Lidia: OrientBooks Pvt., Limited
3. Ananda, (1982), The Complete Book of Yoga Harmony of body mind,Delhi, India: Orient Books Pvt. Ltd.
4. Balasubramaniam B., Pansare Ms (1991), "Effect of yoga on aerobic andanaerobic power of muscles", Indian Journal of PhysioPharmacol. 281-182.
5. Bhole et.al, "Effects of yogic exercise on the strength and endurance of theabdominal muscle of the females", VyayamVidhyan, 4:1:11-13, (1970).
6. Chumara, J (1991), Effect of Speed endurance exercise upon changes ofPsychomotor capacity in basketball players. Wychowamiefizyczne I sport, 35(1), 109-117.
7. Dewith, R.T, (1994), "A study of the sit-up type of test as a means ofmeasuring strength and endurance of the abdominal muscles",Research Quarterly, Vl-5, 60 - 64.
8. Ganguly, "Effect of short test yogic training programme on cardiovascularendurance", SNIPES Journal, 4:2 (July 1981).
9. Gharote, M.L (1973), "Effect of yogic training on physical fitness" India:Yoga - Mimamsa 15:4 31-33
10. Gharote,M.L (1970), "Effect of Yogic exercise on the strength andendurance of the abdominal muscles of the females", India:Yoga-Mimamsa, vol-IV: 11-13.
11. Indira Devi, (1991), "Yoga: The Technique of Health and happiness"India: Bombay Jaica Publishing House.
12. Kocher, H.C and V.Pratap (1992), "Anxiety level and Yogic Practicies" Yoga-Mimamsa 17:4 11.
13. Moorthy, A.M (1982), "Effect of Selected Yogic Exercises and Physicalexercises of flexibility, India: Yoga Review", Yoga-Mimamsa, 11:3 161-166.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 180-183

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Financial Problems in Execution of Physical Education Curriculum

Mrs. Jandeep Kaur, Researcher
Dr. Braj Kishor Choudhary, Supervisor
Tantia University, Sriganganagar, Rajasthan.

Introduction :-

Education that is related to the physic of human being and its working is called physical education. It is the basic education that is intended to educated students related to different body parts, their characteristics and operations so that the learner can understand how the body works and how it can be maintained to perform all the day to day activities. It is generally considered to be useful for children.

Physical Education is an education of and through human movement where many of educational objectives are achieved by means of big muscle activities involving sports, games, gymnastic, dance and exercise.

Benefits of physical education :-

i. Physical growth
ii. Mental growth
iii. Prepare sportsmen
iv. Breaks Monotony
v. Relief from stress and tension
vi. Rise in confidence
vii. Weight regulation
viii. Self-discipline
ix. Interpersonal skill development
x. Rise in concentration power

Problems in physical education :-

There are multiple problems in growth of physical education in India. Especially in Punjab where there is huge potential it should be given high weightage but unfortunately few things are impeding the growth of physical fitness education; major among those are discuss ahead.

i. Not mandatory
ii. Formality
iii. Indifferent teachers
iv. Escape tool
v. Easy practical examination
vi. Parents approach

vii. Scarcity of budget
viii. Traditional teaching pedagogy
ix. Shortage of physical teachers

Methodology :-

Researcher has used survey method to get the information of the present circumstances.

Sample :-

From the five cities of Punjab 10 higher secondary schools were chosen from each city randomly. Further 5 teachers and 20 students were chosen from each school.

Sample size

City	Teachers	Students
Muktsar	50	200
Ferozepur	50	200
Bathinda	50	200
Fazilka	50	200
Faridkot	50	200
Total	250	1000

As per the above table 250 teachers of who are teaching the senior secondary students in the five cities of Punjab were selected for this research work and their opinion was taken into consideration. Similarly total 1000 students who were studying at senior secondary level were selected for this research work and their opinion was taken into consideration. This primary data based research has made the research authentic and reliable.

Data Collection :-

The present work deals with the various the five cities of Punjab 10 higher secondary schools were chosen from each city randomly. Further 5 teachers and 20 students.

Tool :-

Different statistical tools were used for the analysis of data collected for this meaningful research. Pie chart, percentage, average, standard deviation and T test were used for drawing inference from the tabulated data and information.

Two different sets of self-developed questionnaires were used for collection of data and information. One was used for the students and the other was used for the teachers. These questionnaires were tested initially and then executed on the whole sample of the research.

Objective :-

To study financial problems in execution of physical education curriculum.

Analysis of Data :-

Table showing thefinancial problems in execution of physical education curriculum -

Table – 1

Financial problems in execution of physical education curriculum

S. No	Problem	As per students	As per teachers
1	Expensive books	50.20%	50.70%
2	Expensive equipment	67.85%	65.70%
3	Expensive sports items	64.10%	62.10%
4	High fee	34.98%	38.50%
5	Low school budget for PE	66.28%	64.10%
6	Average	56.68%	56.22%

Table 1-thefinancial problems in execution of physical education curriculum -

Description :–

The table 1 shows that at senior secondary school level there are different financial problems that are being faced by students and teachers in physical education. All these have been studied in detail in this research and it is summarized.

On the basis of expensive books, expensive equipment, expensive sports items, high fee and low school budget for PE 56.68% financial problems are there in execution of physical education curriculum as per students and 56.22% financial problems are there in execution of physical education curriculum as per teachers. Average 56.45% financial problems are there in execution of physical education curriculum.

T test for financial problems in execution of physical education curriculum

Mean	Std. Dev.	T value	Sig.
56.45	12.09	1.69	0.13

T test showed that T value is 1.69 which is lesser than table value 1.96 so it is clear that financial problems are not significant in execution of physical education curriculum. P value is 0.13 which is higher than 0.05 that confirms financial problems are not significant in execution of physical education curriculum.

Result :-

56.45% financial problems are there in execution of physical education curriculum.

Conclusion :-

More budget need to be allocated for buying equipments of physical education. All sports items and accessories must be provided by the school management so that common studentscan also

play all sports as they are quite costly.Physical education fee is quite affordable and requires no reduction.

References :-

1. Ananda, (1982), The Complete Book of Yoga Harmony of body mind,Delhi, India: Orient Books Pvt. Ltd.
2. Balasubramaniam B., Pansare Ms (1991), "Effect of yoga on aerobic and anaerobic power of muscles", Indian Journal of PhysioPharmacol. 281-182.
3. Bhole et.al, "Effects of yogic exercise on the strength and endurance of the abdominal muscle of the females", VyayamVidhyan, 4:1:11-13, (1970).
4. Chumara, J (1991), Effect of Speed endurance exercise upon changes ofPsychomotor capacity in basketball players. Wychowamiefizyczne I sport, 35(1), 109-117.
5. Dewith, R.T, (1994), "A study of the sit-up type of test as a means of measuring strength and endurance of the abdominal muscles", Research Quarterly, Vl-5, 60 - 64.
6. Ganguly, "Effect of short test yogic training programme on cardiovascularendurance", SNIPES Journal, 4:2 (July 1981).
7. Gharote, M.L (1973), "Effect of yogic training on physical fitness" India:Yoga - Mimamsa 15:4 31-33
8. Gharote,M.L (1970), "Effect of Yogic exercise on the strength andendurance of the abdominal muscles of the females", India:Yoga-Mimamsa, vol-IV: 11-13.
9. Indira Devi, (1991), "Yoga: The Technique of Health and happiness"India: Bombay Jaica Publishing House.
10. Kocher, H.C and V.Pratap (1992), "Anxiety level and Yogic Practicies" Yoga-Mimamsa 17:4 11.
11. Moorthy, A.M (1982), "Effect of Selected Yogic Exercises and Physicalexercises of flexibility, India: Yoga Review", Yoga-Mimamsa, 11:3 161-166.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 184-187

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सरहदों को नकारती एक औरत की कहानी : रेत समाधि

कविता चूर

शोधार्थी (पीएच.डी.), हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू – 180006

सारांश :–

हिन्दी की वरिष्ठ लेखिका गीतांजलि श्री का 'रेत समाधि' उपन्यास 2018 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का डेजी रॉकवेल के द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद 'टॉम्ब ऑफ सैंड' को 2022 में अन्तर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से नवाजा गया। गीतांजलि श्री अपने समय और समाज की नईं आहटों को सुनने और भाँपने, नये अछूते किरदारों को सिरजने वाली अनोखी कथाकार हैं। 'रेत समाधि' उपन्यास कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नवीनता और ताजगी का बोधक है। उपन्यास परम्परागत कथा लेखन के ढाँचे को तोड़ता हुआ नई चुनौतियों को स्वीकारता हुआ देश विदेश की हद–सरहद तक विस्तृत परिक्रमा करता है।

बीज शब्द :– सरदह, बुजुर्ग, वृद्धा, मूल्यों का विघटन, भारतीय समाज, विभाजन की त्रासदी आदि।

'रेत समाधि' उपन्यास भारत–पाक विभाजन से सम्बद्ध एक ऐसी कहानी है, जिसमें 80 साल की वृद्धा चन्द्रप्रभा देवी अपने पति की मृत्यु के बाद अपने परिवार, बेटे–बहुओं, पोते–पोतियों से मुँह मोड़ लेती है। पति की मृत्यु के बाद उसमें जीने की कोई उमंग ही नहीं बची। पति के गुजर जाने के संताप ने वृद्धा को अकेला, सिकुड़ी हुई गठरी सी, परिवार जनों से विमुख, घर की दीवार में धँसती हुई अन्धी बहरी बना दिया है। लेखिका उसकी दयनीय स्थिति को व्यक्त करते हुए कहती हैं – मरती जाती, आँख नाक बंद, कान ठप्प, मुँह सिला, मन सुन्न, अरमान नदारद, पखेरु उड़।"[1] उसका परिवारजन उसे इस स्थिति से बाहर निकालने की कोशिश करते हैं कि – "बाहर देखों धूप खिली है उठो उठाओ, छड़ी टँगी है चूड़ा खाओ मटर पड़ी है, पेट बहा है, राई फुकाओं।" पर अम्मा तो – "नहीं मैं नहीं, नई–नई माँ कुनमना जाती है।"[2] और अचानक एक दिन माँ उठकर घर से चली जाती है और थाने में मिलती है। उसके बाद वह अपनी बेटी के साथ रहने चली जाती है। बेटी परिवार से अलग अपने फ्लैट में रहती है। वह शादी नहीं करती पर अपने विदेशी मित्र के साथ लिव इन रिलेशन में रहती है। बेटी माँ को नया जीवन देती है और माँ बनकर अम्मा की सेवा करती है। उपन्यास की वृद्धा माँ एक अकेली, बीमार, निस्तेज, सहमी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो बेटी के पास जाकर फिर से जीने लगती है और बच्चा बन जाती है – "बेटी ने माँ बनकर माँ को बेटी बनाया और उनके माथे पे हाथ फेरा। आ गयी यहाँ अब न जाने दूँगी। ... बेटी ने माँ बनकर माँ को बेटी बनाया और उसके माथे पे हाथ फेरा। ... कमरे में घुसते ही माँ बिस्तर पर सो गयी और बेटी माँ बन गयी।"[3]

उपन्यास की वृद्धा माँ ने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने परिवार को सहेजने में लगा दिया। उसकी अपनी

ख्वाहिशें उसके भीतर ही दफन हो गईं। ऐसा कहा जाता है कि बुढ़ापा भी एक प्रकार का बचपन ही होता है। बुजुर्ग व्यक्ति अपने भीतर दबी इच्छाओं, आकांक्षांओं को व्यक्त करने लगता है। उपन्यास की वृद्धा माँ परिवार के प्रति अपने दायित्वों को निभाते–निभाते थक चुकी थी – "वो थक गयी थी, उनके लिए साँसे सहेजते, उनके एहसासों को महसूसते, उनकी चाहते, उनकी नफरतें समेटते वो उन सब से थक चुकी थी और कंपकंपा के दीवार में घुसना चाहती मानों झिरी में कीड़ी सी घुस जाए तो क्या उसकी खुद की साँस चल पड़ेगी।"[4] भारतीय समाज में महिलाओं की यही स्थिति है वह कभी भी अपने लिए नहीं जी पातीं। उनका जीवन पहले पति की व्यवस्था के अनुरूप चलता है, फिर पुत्र की व्यवस्था के अनुरूप। और जब महिलाएँ इस व्यवस्था से बाहर निकलने का प्रयास करती हैं तो उन्हें सामाजिक विरोध का सामना करना पड़ता है। "दीवार में सरकती माँ क्या अपने भीतर सेंध लगा रही है? अपना खाका पलट कर उधड़ी धमनियों में फिसल रही हैं।"[5] वृद्धा माँ अपने भीतर सेंध लगा रही यानि वह अपने भीतर की स्त्री को पहचानने का प्रयास कर रही है जो पारिवारिक संबंधों में सदैव खो जाती है।

लेखिका ने उपन्यास में भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली के बदलते स्वरूप को भी उजागर किया है। भले ही भारतीय समाज में संयुक्त परिवार संयुक्त रूप से मौजूद था लेकिन अब संयुक्त परिवार में रहकर भी व्यक्ति अकेलेपन के भावबोध से ग्रसित है – "एक छत के नीचे और उन्हीं दीवारों के पीछे कितने लोग हैं जो एक–दूसरे से नितांत अलग रहते चले जा रहे हैं? अरे हर किसी को खुल्लम–खुल्ला डाइवोर्स की जरूरत नहीं पड़ती।"[6] 'रेत समाधि' उपन्यास में लेखिका ने बुजुर्गों के मनोविज्ञान को भी चित्रित किया है। वे अपना पूरा जीवन अपने घर परिवार को समर्पित कर देते हैं परन्तु वृद्धावस्था में उनका अपने ही घर में कुछ नहीं बचता। वे अपने ही परिवार में मोहभंग की स्थिति में जीते हैं और ऐसे में जब उन्हें कोई समझने वाला मिल जाए तो वह एक बार फिर जीना आरम्भ कर देते हैं। वृद्धा माँ जब बेटी के पास जाती है तो जीवन को पुनः जीने के क्रम में छोटी होती जाती है और अपने जीवन को अपनी इच्छाओं के अनुरूप जीना शुरू कर देती है – "दोनों हँसे और एक माली तय हो गया जिसके संग माँ मिट्टी में हाथ डालती है और कोई बात नहीं, बेटी सोचती है। उन्हें खुश होने दो, जो वो चाहें करें, यहाँ बड़े के नियम, भाभी की माँगें, अफसरों के चोचले नहीं होने, जो चाहों पहनों, जो चाहो बोलो, हम आजाद हैं, बनाओं बैल्कनी पर गार्डन।"[7]

लेखिका ने उपन्यास में वृद्धों के प्रति परिवार की बदलती मानसिकता को भी अभिव्यक्त किया है। बदलते सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों और मूल्यों के विघटन के कारण औलाद का वृद्धों के प्रति आत्मीय भाव कम हो गया है और उनकी सम्पति पर अधिकार का भाव अधिक हो गया है। उपन्यास में भी ऐसी स्थितियों का चित्रण किया गया है जब बेटों को माँ से अधिक उसकी सम्पति की चिंता है – "बड़े सब से चुप और सब से चिंतित दीखते। एक तरफ तो ये कि अम्मा को जल्दी ठीक करें और ले जाएँ दूसरी तरफ ये चिंता कि ऑपरेशन थियेटर में उनके जाने से पहले कुछ चैक और कुछ शेयर के कागजों और शहर से दूर वाली जमीन वाले पर भी, जिसकी आखिरी किस्त देनी बाकी थी, साइन ले लें।"[8]

रोजी भी उपन्यास की महत्वपूर्ण पात्र है। वह ट्रांसजेंडर है। रोजी के सानिध्य में अम्मा अपने पहनावे से लेकर हर दैनिक दिनचर्या में बिल्कुल बदल जाती है। रोजी और रजा एक ही व्यक्ति की दो अलग अलग पहचान है। वह ताली नहीं बजाती और न ही बधाइयाँ माँगती है। वह रचनात्मक कार्यों को करके आजीविका चलाती है

और एक घर भी खरीदती है। जिसको वह किराए पर घर देती है वही उसकी हत्या कर देता है। उसकी मौत का अम्मा को गहरा झटका लगता है। पुलिस अधिकारी रोज़ी के मर्डर–केस के प्रति बेरुखी दिखाते हुए कहता है .– "जम्हाई खराश पान तमाखू कत्था चूना डकार–वकार का घोल मुँह में चलाता बोला कि आप जानती हैं न वो क्या था, किसके चक्करों में पड़ रही हैं, नाचते गाते भीख माँगते और न जाने क्या–क्या पेशा करते, ... कोई अपना थाना थोड़े गंदा करना है और कहा से उनके लिए अलग सेल बनवाएँ ...।"[9] लेखिका ने एक किन्नर के मर्डर के प्रति पुलिस की बेरुखी को उजागर किया है। इस हादसे के बाद अम्मा अधिक बेचैन और छोटी होती गई। इतनी छोटी की वह बार्डर में छेद करके पार चली जाए।

वृद्ध माँ अपने बेटे से पासपोर्ट की माँग करती है। क्योंकि वह पाकिस्तान जाना चाहती है। माँ का बचपन, युवावस्था, पति के साथ वैवाहिक बंधन, रोज़ी के साथ अन्तरंगता और बार्डर के पार समाधिस्थ होने की इच्छा ने उसके जीवन को जटिल और बहुआयामी बना दिया। उपन्यास के 100 पृष्ठों में भारत–पाक विभाजन की गाथा है जिसमें मुख्य रूप से चंदा और अनवर की प्रेम कहानी उभरी है। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे और शादी भी की लेकिन भारत–पाक विभाजन में दोनों का रिश्ता गुम हो गया। चन्दा भारत पहुँच जाती है और अनवर पाकिस्तान में रहा। लेकिन चन्दा का हृदय अनवर से अलग नहीं हो पाया। इसलिए जीवन के अंतिम अध्याय में हर हाल में वह पाकिस्तान जाना चाहती है और वह अपनी बेटी के साथ बिना वीजा के सरहद पार चली जाती है। जहाँ वह बेटी के साथ कैदी बना ली जाती है परन्तु कैद में भी वह अनवर की तलाश जारी रखती है। और अन्त में वह उससे मिल भी जाती है ... किन्तु उससे मिलकर निकलने के बाद वह पाक सैनिकों की गोली का शिकार बन जाती है। अपने प्रेम के लिए वह अपनी ही मिट्टी पर प्राण त्याग देती है और सरहदों के किस्से एक बार फिर अखबार की खबर बन जाते हैं – "सीमा को लाँघते हुए दिल्ली की अस्सी साला नारी बिना वीज़ा के पैदल सीमा पार पुराने प्रेमी की खोज में।"[10]

'रेत समाधि' उपन्यास सरहद शब्द को नए संदर्भों में परिभाषितर करता है। अधिकांशतः इस शब्द का प्रयोग सीमाओं के विभाजन, सांस्कृतिक विभेद, धार्मिक विविधता और भय के प्रतीक के रूप में किया जाता है। परन्तु गीतांजलि श्री इस शब्द को सकारात्मक दृष्टि देती हैं – "सरहद, माँ कहती हैं। सरहद? जानते हो सरहद क्या होती है? बार्डर। क्या होता है बार्डर? वजूद का घेरा होता है, किसी शख्सियत की टेक होता है। कितनी ही बड़ी, कितनी ही छोटी। रूमाल की किनारी मेजपोश का बॉर्डर ... सरहद तो हर चीज की है। ... सरहद बन्द नहीं करती खोलती है। आकार बनाती है। किनारा सजाती है। किनारी का इस तरफ भी खिल जाता है और उस तरफ भी।"[11]

यह उपन्यास जीवन और यथार्थ की सरहदों की कथा है। यह सरहदें दो देशों से लेकर, दो शरीरों, मन और आत्मा के मध्य खींची गई हैं। गीतांजलि श्री का यह उपन्यास केवल भारत–पाक सरहद को ही नहीं तोड़ता बल्कि लेखन व कल्पना की भी हर सरहद तोड़ता दृष्टिगोचर होता है। उपन्यास में लेखिका ने देश विदेश के मुद्दों, प्राकृतिक सौन्दर्य, हद–सरहदों के किस्से, संयुक्त परिवारों के बदलते रिश्ते, विभाजन की त्रासदी, मानवीय रिश्तों के विघटन को प्रमुखता से वर्णित किया है। उपन्यास में लेखिका ने देशज हिन्दी, पँजाबी, उर्दू, अंग्रेजी और प्रादेशिक शब्दों का प्रयोग किया है। अतः कहा जा सकता है कि 'रेत समाधि' उपन्यास हिन्दी साहित्य की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है।

सन्दर्भ :-

1. गीतांजलि श्री, रेत समाधि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 13
2. वही, पृ. 60
3. वही, पृ. 125–126
4. वही, पृ. 22
5. वही, पृ. 31
6. वही, पृ. 373
7. वही, पृ. 132
8. वही, पृ. 223
9. वही, पृ. 251
10. वही, पृ. 358
11. वही, पृ. 331

मो. 8491904912

ई.मेल : Kavitachoor920@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 188-192

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चारूदत्तम् की प्राकृत में प्रयुक्त तिङन्त क्रियारूप

डॉ. अश्विनी कुमार
सहायक आचार्य (अतिथि संकाय), क्षेत्रीय केन्द्र, हि. प्र. विश्वविद्यालय, शिमला–5

महाकवि भास का संस्कृत नाटककारों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने तेरह नाटकों की रचना की है- स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, अविमारकम्, प्रतिमानाटकम्, अभिषेकनाटकम्, पञ्चरात्रम्, मध्यमव्यायोग, दूतवाक्यम्, दूतघटोत्कच, कर्णभारम्, ऊरुभंगम्, बालचरितम् और चारुदतम्। इन नाटकों में अविमारकम् और चारुदत्तम् प्राकृत भाषा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

चारुदत्तम् की प्राकृत में तिङन्त तथा कृदन्त दोनों प्रकार के क्रियारूपों का प्रयोग हुआ है। तिङन्त क्रियारूपों के अन्तर्गत कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य दोनों प्रकार के रूपों प्राप्त होते हैं। कुछ तिङन्त क्रियारूप प्रेरणार्थक भी हैं। इसके अतिरिक्त नामधातु से निष्पन्न क्रियारूप भी हैं, जिनका प्रयोग नाममात्र ही हुआ है।

महाकवि भास ने चारुदत्तम् की प्राकृत में कर्तृवाच्य के क्रियारूप भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यत्काल, विध्यर्थक तथा अनुज्ञार्थ में प्रयुक्त हुए हैं। चारुदत्त की प्राकृत में केवल एक ही क्रियारूप प्राप्त होता है, जो मध्यम पुरुष एकवचन में है। यह रूप है - आसि[1], जो अस धातु का आदेशयुक्त रूप है। प्राकृत में अस धातु को भूतकाल के सभी पुरुषों और वचनों में आसि और अहेसी आदेश होते हैं।[2]

वर्तमानकालिक तिङन्त क्रियारूपों में प्रथम पुरुष एकवचन, प्रथम पुरुष बहुवचन, मध्यम पुरुष एकवचन, उत्तम पुरुष एकवचन तथा उत्तम पुरुष बहुवचन के क्रियारूपों का प्रयोग हुआ है। प्रथम पुरुष एकवचन में प्राकृत के इ एवं दि प्रत्ययों से निष्पन्न तथा आदेशयुक्त रूप प्राप्त होते हैं। प्राकृत

में परस्मैपद तथा आत्मनेपद के ति आदि प्रत्ययों के स्थान पर तीनों पुरुषों के एकवचन में इच् (इ) और एच् (ए) आदेश हो जाते हैं।[3] चारुदत्तम् में केवल इ प्रत्ययान्त रूपों का ही प्रयोग हुआ है। जैसे - इच्छइ[4], उज्झइ[5], गच्छइ[6] तथा दीशइ[7]। शौरसेनी प्राकृत में इच् तथा एच् के स्थान पर दि आदेश होता है।[8] इसके साथ ही वर्तमानकाल का प्रत्यय परे रहने पर धातु के अन्तिम अ को विकल्प से ए हो जाता है।[9] चारुदत्तम् की प्राकृत में दि प्रत्ययान्त रूपों में कम ही रूप प्राप्त होते हैं। जैसे - इच्छदि[10], करेदि[11], चिन्तेदि[12], भणादि[13], तथा होदि[14]। वर्तमानकाल प्रथम पुरुष एकवचन में आदेशयुक्त केवल एक ही रूप प्राप्त होता है जो अस धातु से निष्पन्न है। यह है - अत्थि।[15] प्राकृत में अस धातु को ति आदि प्रत्ययों के साथ अत्थि आदेश होता है।[16]

चारुदत्तम् की प्राकृत में वर्तमानकाल प्रथम पुरुष बहुवचन में प्राकृत के न्ति प्रत्यय से निष्पन्न क्रियारूप प्राप्त होते हैं। उदाहरणतया - उवासन्ति[17], जाअन्ति[18] तथा पूरअन्ति[19]। प्राकृत में परस्मैपद तथा आत्मनेपद में ति आदि प्रत्ययों के स्थान पर न्ति, न्ते तथा इरे आदेश होते हैं।[20]

वर्तमानकाल मध्यम पुरुष एकवचन में प्राकृत के प्रत्यय तथा आदेशयुक्त क्रियारूपों का प्रयोग हुआ है। मध्यम पुरुष एकवचन में परस्मैपद तथा आत्मनेपद के ति आदि प्रत्ययों के स्थान पर सि और से आदेश होते हैं।[21] चारुदत्तम् की प्राकृत में केवल सि प्रत्यय से युक्त रूपों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणस्वरूप - गण्हसि[22], जाणासि[23], धावशि[24] तथा याशि[25]। आदेशयुक्त क्रियारूपों में केवल एक ही रूप प्राप्त होता है। यह है सि।[26] प्राकृत में अस् धातु को मध्यम पुरुष एकवचन में सि आदेश होता है।[27]

चारुदत्तम् की प्राकृत में उत्तम पुरुष एकवचन में प्राकृत के प्रत्ययों तथा आदेशयुक्त दोनों प्रकार के क्रियारूपों का प्रयोग हुआ है। प्राकृत प्रत्ययान्त क्रियारूपों में मि प्रत्यय से युक्त रूपों का प्रयोग हुआ है। जैसे - इच्छामि[28], अण्णोसामि[29], शुणामि[30] तथा आहलामि[31]। प्राकृत में परस्मैपद तथा आत्मनेपद के ति आदि प्रत्ययों के स्थान पर उत्तम पुरुष एकवचन में मि आदेश होता है।[32] आदेशयुक्त क्रियारूपों में केवल एक ही क्रियारूप का प्रयोग हुआ है। यह रूप है म्हि[33], जो अस् धातु से निष्पन्न है। प्राकृत में अस् धातु को उत्तम पुरुष एकवचन में मि, मो और म के स्थान पर म्हि, म्हो तथा म्ह आदेश विकल्प से होते हैं।[34]

चारुदत्तम् की प्राकृत में उत्तम् पुरुष बहुवचन में केवल दो रूप प्राप्त होते हैं जो प्राकृत के मो प्रत्यय से निष्पन्न हैं। ये रूप हैं - गच्छामो[35] तथा पेक्खामो[36]। प्राकृत में परस्मैपद तथा आत्मनेपद के ति आदि प्रत्ययों के स्थान पर उत्तम् पुरुष बहुवचन में मो, मु और म आदेश होते हैं।[37]

भविष्यत्कालिक तिङन्त क्रियारूपों में चारुदत्तम् की प्राकृत में प्रथम पुरुष एकवचन, प्रथम पुरुष बहुवचन, मध्यम पुरुष एकवचन, उत्तम् पुरुष एकवचन तथा उत्तम् पुरुष बहुवचन के रूप प्राप्त होते हैं। प्राकृत में भविष्यत्काल में विहित प्रत्यय से पूर्व स्स विकरण होता है[38] और प्रत्यय से पूर्व धातु के अन्तिम अ को ए तथा इ हो जाता है[39]।

चारुदत्तम् की प्राकृत में भविष्यत्काल प्रथम पुरुष एकवचन में केवल तीन रूप प्राप्त होते हैं जो दि प्रत्ययान्त हैं और शौरसेनी में हैं। ये हैं - भरिस्सदि[40], भविस्सदि[41] तथा मण्डइस्सदि[42]। प्रथम पुरुष बहुवचन में भी केवल दो ही रूप प्राप्त होते हैं जो न्ति प्रत्ययान्त हैं। ये रूप हैं - करिस्सन्ति[43] तथा भविस्सन्ति[44]।

चारुदत्तम् की प्राकृत में भविष्यत्काल मध्यम पुरुष में एकवचन के ही रूप प्राप्त होते हैं। इसमें भी केवल दो ही रूप प्राप्त हैं जो सि प्रत्ययान्त हैं। इनमें एक महाराष्ट्री में है और एक मागधी में। ये रूप हैं - गमिस्सदि[45] और परित्तअशि[46]।

भविष्यत्काल उत्तम पुरुष एकवचन में प्राकृत के मि तथा स्सं प्रत्ययों से निष्पन्न क्रियारूप प्रयुक्त हुए हैं। प्राकृत में परस्मैपद तथा आत्मनेपद के ति आदि प्रत्ययों के स्थान पर उत्तम पुरुष एकवचन में मि आदेश होता है[47] तथा प्रत्यय से पूर्व स्सा और हा का प्रयोग विकल्प से होता है[48]। चारुदत्तम् की प्राकृत में उत्तम पुरुष एकवचन में मि प्रत्ययान्त केवल एक रूप प्राप्त होता है - करिस्सामि।[49] स्सं प्रत्ययान्त रूपों में महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी के रूप प्राप्त होते हैं। जैसे - करिस्सं[50], णइस्सं[51], भविस्सं[52] तथा मालइश्शं[53] आदि। उत्तम पुरुष बहुवचन में भविष्यत्काल में प्राकृत के केवल दो क्रियारूप प्रयुक्त हुए हैं जो मो प्रत्ययान्त हैं और प्रत्यय से पूर्व स्सा का प्रयोग हुआ है। ये रूप हैं - णिवेदइस्सामो[54] तथा अभिसरिस्सामो[55]।

चारुदत्तम् की प्राकृत में विध्यर्थक तिङन्त क्रियारूप केवल संस्कृत से वर्ण परिवर्तन एवं वर्ण लोप से निष्पन्न होकर प्रयुक्त हुए हैं।

चारुदत्तम् की प्राकृत में अनुज्ञार्थ में प्रथम पुरुष एकवचन तथा मध्यम पुरुष एकवचन के क्रियारूपों का ही प्रयोग हुआ है। प्राकृत में अनुज्ञार्थ में तीनों पुरुषों के एकवचन में क्रमशः दु, सु और मु आदेश होते हैं।[56] प्रथम पुरुष एकवचन में दु प्रत्ययान्त क्रियारूप प्रयुक्त हुए हैं। जैसे - अलङ्करेदु[57], गच्छदु[58] तथा पडिवालेदु[59] आदि। मध्यम पुरुष एकवचन में विधि आदि अर्थों में धातु के सु के स्थान पर हि आदेश होता है।[60] चारुदत्तम् की प्राकृत में कुछ स्थलों पर धातु के विकरण अकार

के स्थान पर धातु के अन्तिम अ को आ हो गया है[61] और कुछ स्थलों पर धातु के अन्तिम अ को ए हो गया है[62]।

भास ने चारुदत्तम् की प्राकृत में तिङन्त क्रियारूपों में हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण का ही अनुसरण किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. चारुदत्तम्, भास, व्याख्याकार, श्री कपिलदेव गिरि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1, द्वितीय संस्करण, 1966.
2. प्राकृत सर्वस्वम्, मार्कण्डेय, प्राकृत टैक्सट सोसाइटी, अहमदाबाद, 1968.
3. प्राकृत-व्याकरणम्, हेमचन्द्र, भण्डारकर इन्स्टीच्यूट प्रैस, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना-411004.

---

1. चारुदत्तम्, पृ., 94
2. तेनास्तेरास्यहेसी, हेम., 3.164
3. त्यादीनामाद्यत्रयस्याद्यस्येचेचौ, वही, 3.139
4. चारुदत्तम्, पृ., 70
5. वही, पृ., 18
6. वही, पृ., 19, 72(2)
7. वही, पृ., 29
8. दिरिचेचौः, हेम., 4.273
9. वर्तमाना-पञ्चमी-शतृषु वा, वही, 3.158
10. चारुदत्तम्, पृ., 59
11. वही, पृ., 96
12. वही, पृ., 15
13. वही, पृ., 24, 26, 41
14. वही, पृ., 41
15. वही, पृ., 3(2), 4(4), 7, 53, 54, 71, 112
16. अत्थिस्त्यादिना, हेम., 3.148
17. चारुदत्तम्, पृ., 55
18. वही, पृ.,104
19. वही, 103
20. बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे, हेम., 3.142
21. द्वितीयस्य सि से, वही, 3.140
22. चारुदत्तम्, पृ., 90

23. वही, पृ., 71
24. वही, पृ., 18
25. वही,
26. चारुदत्तम्, पृ., 90, पृ., 111, 123
27. सिनास्ते सिः, हेम., 3.146
28. चारुदत्तम्, पृ., 53
29. वही, पृ., 6
30. वही, पृ., 35
31. वही, पृ., 21
32. तृतीयस्य मिः, हेम., 3.141
33. चारुदत्तम्, पृ., 3, 44, 95, 107, 123
34. मि-मो-मेम्हि-म्हो-म्हा वा, हेम., 3.147
35. चारुदत्तम्, पृ., 43
36. वही, पृ., 72
37. तृतीयस्य मो-मु-माः, हेम., 3.144
38. स्स च, मार्कण्डेय, 6.22
39. एच्च क्तवा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु, हेम., 3.157
40. चारुदत्तम्, पृ., 9
41. वही, पृ., 5
42. वही, पृ., 114
43. वही, पृ., 23
44. वही, पृ., 7
45. वही, पृ., 4
46. वही, पृ., 21
47. तृतीयस्य मिः, हेम., 3.141
48. मि-मो-मु-मे स्सा हा न वा, वही, 3.167
49. चारुदत्तम्, पृ., 99
50. वही, पृ., 29
51. वही, पृ., 33
52. वही, पृ., 115
53. वही, पृ., 36
54. वही, पृ., 42
55. वही, पृ., 124
56. दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिंस्त्रयाम्, हेम., 3.173
57. चारुदत्तम्, पृ., 105
58. वही, पृ., 32
59. वही, पृ., 5
60. सोर्हिवा, हेम., 3.174
61. प्रायेणात् एदिदातः ज्ञयुः, मार्कण्डेय, 4.7
62. वेर्तमाना-पञ्चमी शतृषु वा, हेम., 3.158

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 193-197

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारत : पर्यावरण संरक्षण

महेन्द्र डांगा

सहायक आचार्य भूगोल, वीर तेजा महिला महाविद्यालय, मारवाड़ मुण्डवा, जिला–नागौर (राजस्थान)

पर्यावरण संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किये गये प्रयासों में सर्वप्रथम सन् 1972 का स्टॉकहोम सम्मेलन शामिल है। तद्पोरान्त सन् 1992 में रियो में पृथ्वी सम्मेलन एवं सन् 2005 में जोहॉन्सवर्ग में सतत विकास पर सम्मेलन आयोजित किया गया। इन सम्मेलनों में सर्व सहमति से निर्णय लिया गया कि पर्यावरण संरक्षण हेतु एक साथ सार्थक प्रयास किये जायेगें एवं प्राकृतिक संसाधनों का दोहन सतत् विकास की परिसंकल्पनानुसार ही किया जायेगा तथा विश्व से गरीबी उन्मूलन हेतु प्रयास किया जाएगा। स्टॉकहोम सम्मेलन के लगभग चार वर्षों के पश्चात संरक्षण हेतु प्रावधानों को राज्य के नीति व निदेशक तत्व के अनुच्छेद 48क एवं मूल कर्तव्य के अनुच्छेद 51(क) (छ) में जोड़ा गया जो निम्न प्रकार है –

''48क– पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन्य जीवों की रक्षा राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।''

51क – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी, और वन्य जीवन हैं, रक्षा करे और उनका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखे।

इस सार्थक प्रयास के अतिरिक्त सन् 1974 में जल प्रदूषण के (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम सन् 1981 में वायु के प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम तथा सन् 1986 में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम जैसे केन्द्रीय विधानों को परित किया गया । पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के क्षेत्र में भारतीय न्यायपालिका की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अर्न्तराष्ट्रीय पर्यावरणीय सिद्धान्तों में बदलाव या बिना बदलाव के राष्ट्रीय विधि में सम्मिलित करना एवं स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को मूलाधिकार का दर्जा देना सराहनीय प्रयास है। परन्तु उपरोक्त कथनो के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण के प्रति अनभिज्ञता थी। शायद भारतीय संस्कृति और परम्परा इस संदर्भ में विश्व की प्रथम संस्कृति और परम्परा होगी। आज हम धार्मिक भावनाओं से विरक्त होकर उन सभी वर्जनाओं की उपेक्षा कर रहे हैं जिन्हें हमारी ऋषियों ने सीख दी थी और आचरण में अनुपालन हेतु आदेश दिया था। फलतः प्रकृति के विपरीत कार्य रहा है और प्रकृति हमें दूषित वातावरण में रहने हेतु विवश कर रही है।

भूमि का संरक्षण एवं संवर्धन :–

भारतीय धर्म संस्कृति और परम्पराओं में पर्यावरण को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। हमारी सभ्यता और

संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति और सभ्यताओं में से है। दुनिया की तमाम संस्कृति और सभ्यताओं का जब कोई अता–पता भी नहीं था उस समय भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। भारतीय दृष्टाओं और ऋषियों ने अपने तपोबल के द्वारा प्रकृति के साथ तारतम्यता स्थापित कर लिया था, और उसी के अनुसार जीने की प्रणाली भी विकसित की थी। हमारी सभ्यता के अभ्युदय का मूल मंत्र भी यही था।

प्रकृति के मूलाधार पृथ्वी को माता के रूप में पूजा जाता है। अनेक धर्म सम्प्रदाय एवं विविध भाषा–भाषी लोगों के रहने पर भी पृथ्वी अविचल भाव से खड़ी हुई लोगों का भरण–पोषण करती है और गाय की तरह सहस्त्रों लोगों को सहस्त्रों धाराओं से विश्वम्भरा बनकर अपनी कृपा–दुग्ध का पान कराती है।

सहस्त्र धारां द्रविणस्य में दुहां ध्रवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।

इसीलिए पर्यावरण और प्रकृति के सभी कारकों–ग्रह, नक्षत्र, अंतरिक्ष, समुद्र जल, वायु, अग्नि और भूमि, वनस्पति सहित संपूर्ण ब्रहाण्ड और आकाश को मान–सम्मान देकर उनकी स्तुति गान करते हुए शान्ती की कामना की गई है –

ऊँ धौः ! शान्तिरनरिक्षं शान्ति!

शान्तिरायः शान्तिशेषधयः शान्तिर्वनस्पतयः।।

शान्तिविंश्यतेदेवा शान्तिर्ब्रह्माशान्तिः सर्व शान्तिः।

शान्तिरेव शान्तिः सामा शन्तिरेधि।।

हमारी सभ्यता और संकृति के विकास की यही कहानी पर्यावरण चेतना का भी प्रमाण है जो आगे चलकर हमारे जीवन शैली की आचार संहिता के साथ ही धर्म, संस्कृति और परम्परा के रूप में विकसित हुई। ऋग्वेद में इसे 'महीद्यौः पृथ्वी यच्छात्रः शर्मवसप्रथेः' तथा 'देवोभिर्यजते' कहा गया है। पृथ्वी को लोक धारिणी कह कर मृत्तिका प्रदायिनी मानकर यह प्रार्थना की गयी है कि मिट्टी खोदने या अन्य कोई दुष्कृत या पाप हुआ है उसे हे पृथ्वी तुम दूर करो और परम गति प्रदान करें। पृथ्वी को सावित्री, गायत्री इत्यादि से सम्बोधित कर उसके देवत्व को सिद्ध करते हुए सर्वभूतानां माता मेदिनी कहा गया है। पृथ्वीसूक्त में प्रकृति के साथ समरसता बनाये रखने की पृथ्वी से प्रार्थना की गयी है। वेदों में यह स्पष्ट निर्देश है कि पृथ्वी, आकाश, जल एवं औषधियों के साथ अनावश्यक छेड़–छाड़ न किया जाये –

'पृथिवीम् मा हिन्नसेः, अनिर्रक्षमा हिन्नसेः, आपो महोषधिरहिन्नसेः।

अतः हमारा सिद्धान्त 'हमें देहि में ददामिते' 'अर्थात तुम मुझे तो मैं तुझे दूंगा' पर आधारित था। जो वर्तमान समय में सतत विकास की अवधारण के नाम से जाना जाता है। रिओ सम्मेलन में जो चेतावनियाँ दी गयी हैं वे हमारे वदों एवं उपनिषदों में बहुत पहले से रेखांकित है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि वेदों में प्रदूषण से सम्बन्धित जो स्वर्णिम सूत्र हैं हम उन्हें भूलते जा रहे हैं और मानवता के विनाश को आमंत्रण दे रहे हैं।

प्राचीन भारत में जल का संरक्षण एवं संवर्धन :–

जल जीवन का आधार है। अथर्ववेद में जल को अमृत कहा गया है – ''अवस्परतपमृतमप्सु''।

समस्त सृष्टि जल का स्वरूप है। जल को शुद्धिकरण का सबसे बड़ा साधन माना गया है।

अभ्द्गात्राणि शुद्धयान्ति मनः सत्येन शुद्धयति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुर्द्धिज्ञानेनं शुद्धयति।।

ऋग्वेद में जल को 'शत् पवित्रा समुद्र ज्येष्ठा समुद्वार्था याः शुचयः' कहा गया है। आरोग्य के सरल उपायों

की चर्चा करते हुए कहा गया हैं कि जल प्राणियों का प्राण है और सभी प्रकार की औषणियाँ जल में सुरक्षित हैं।

'सर्वेषाम भेषजम अप्सु में, जीवनां जीवनम् जीजोजगत्।'

मनु ने भी जल को भौतिक शरीर की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन माना है तथा जल श्रोतों एवं जलाशयों को दूषित करने वाले व्यक्ति को दण्डित करने हेतु सुझाव दिया है।

'नात्सु मूत्रं पुरीषं वाष्ठीवनं वा समुत्सृजते। अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।।

श्रीमद्भगवतगीता में श्री कृष्ण ने जल की महत्ता को समझाते हुए कहा है ''स्त्रोलसामस्मि जान्वी'' अर्थात नदियों में श्रेष्ठ भागीरथी –गंगा मैं ही हूँ। जल की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कृष्ण द्वैपायन व्यास ने लिखा है कि गंगा दुग्ध के सदृश्य उज्वल, घृत के समान स्निग्ध जल से परिपूर्ण है इसका जल स्वाद युक्त, स्वच्छ, पथ्य, भोजन पचाने वाला, प्यास को मिटाने वाला, क्षुधा और बुद्धि वर्द्धक है।

शीतं स्वादु स्वच्छमत्यंतरूच्यं पथ्यं पाच्य पाचनं पापहारी।

तृष्णा मोहध्वंसनं दीपनं च प्रज्ञां धत्ते वारि भागीरथीयम्।।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में बारह प्रकार के शारीरिक मल – चर्बी, वीर्य, रूधिर, मज्जा, मूत्र, विष्ठा कान का मैल, नाखून, कफ, आंसू, आँख का कीचड़ और पसीना –बतलाऐ गये हैं तथा इन मलों को जल में न छोड़ने की शिक्षा दी गयी हैं।

वसाशुक्रमसृड् मज्जा–मूत्र विट्कर्ण विन्नखाः।

श्लेष्माश्रूदूशिका स्वेदा द्वादशैते मलानृणाम्।।

गंगा नदी भारतीय धार्मिक परम्परा में गाय, गीता, गायत्री एवं गंगा की चतुष्पदी में से एक महत्त्वपूर्ण पाद है। इस विष्णुपाद सम्भूत ब्रह्मद्रव में अनिच्छा से स्नान करने वाला व्यक्ति भी अपने सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इसीलिए कुर्म पुराण में कलि. .....युग के लिए गंगा को सर्वेश्रेष्ठ पाप नाशक बताते हुए 'कलौगंगा विशिष्यते' कहा गया है। हमारे मनीषियों ने गंगा की अनेक प्रकार से प्रार्थना की है और स्नान करते समय हमारे पैरों से गंगा जल का स्पर्श होने के कारण जो पाप घटित होता है उसके लिए क्षमा प्रार्थना का पथ निर्दिष्ट किया गया है।

प्राचीन भारत में वायु का संरक्षण एवं संवर्धन :–

पृथ्वी का ऊपरी आवरण वायुमण्डल है। सामान्यतया हम जिसे हवा या वायु कहते हैं वास्तव में वह कई गैसों का मिश्रण है। जो प्रदूषित हो कर हानिप्रद हो गई है।

भारतीय जीवन शैली में यज्ञ की व्यवस्था है जो वायु मण्डलीय प्रदूषण को दूर कर पर्यावरण को शुद्ध रखता है। इसे सृष्टि चक्र का केन्द्र कहा गया है – 'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।' तथा 'भूमि पर्जन्या जिवलि, दिवं जिवन्त्यग्नयः।' यज्ञ से मेघ और मेघर से वर्षा होती है। गीता में भी यज्ञ की महत्ता को समझाते हुए यह उपदेश दिया गया है कि यज्ञ से देवताओं को प्रसन्न करो और देवगण जल वृष्टि से तुम्हे प्रसन्न करे। इस प्रकार परम्पर आदान प्रदान से तुम्हारी श्री वृद्धि हो।

देवान्भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमावाप्स्यथ।।

गीता के वायु को पवित्र करने वाला बताया गया है तथा श्री कृष्ण ने स्वंय ही वायु कहा है। वैसे भी वायु को पवन देवता के रूप में पूजा करने की परम्परा भारत में अनादि काल से चली आ रही है।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।

झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जान्हवी।।

प्राचीन भारत में वनों एवं वृक्षों का संरक्षण एंव संवर्धन :-

प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं अध्यात्म का विकास वनों में स्थित ऋषि–आश्रमों के माध्यम से ही हुआ है जो भारतीय शिक्षा–दीक्षा के साथ ही राज्य के नीति नियंत्रक केन्द्र भी थे। गुप्त साम्राज्य के निर्माता और महान भारतीय द्रष्टा आचार्य चाणक्य वन प्रान्त के ही ऐसी एक पर्णकुटि में ही निवास और मनन–चिन्तन करते थे। वृक्ष, पर्वत, झरने, पशु–पक्षियों, नदियों एवं अन्य प्राकृतिक उपादानों को भारतीय परिवेश में ईश्वर का रूप माना गया है। ये मानव और कल कारखानों द्वारा उत्सर्जित विषाक्य वायु को प्राणवायु (आक्सीजन) में बदल कर मनुष्य ही नहीं बल्कि सृष्टि के समस्त जीवों को जीवन प्रदान करते हैं। भारतीय व्यवस्था में वृक्षों को रूद्र के रूप में देखा गया है एवं शास्त्रों में वृक्षों के पूजन हेतु विधान निर्धारित है। वृक्षों के इस देवत्व को प्रतिपादित करते हुये श्रीकृष्ण ने स्वंय को स्थावर हिमालयः अर्थात् स्थिर रहने वालों में हिमालय और वृक्षों में पीपल का वृक्ष कहा है। योगेश्वर श्रीकृष्ण के इस कथन से हिन्दू संस्कृति में वृक्षों का महत्त्व स्पष्ट होता है।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।

गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।।

ऐसे ही ऋगवेद के एक श्लोक में कहा गया है कि –

मां काकम्बीरमुहहो वनस्पतिन शस्तीतिर्वि हि नीनशः।

मोत सूरी अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः।।

हमारे प्राचीन सभ्यता में वृक्षों को सजीव माना गया है एवं चिन्ता हरण करने वालों में सुमार किया गया है जो इस वैज्ञानिक युग में भी सत्य साबित हुआ है।

सुनहि विनय मम बिटप असोका।

सत्य नाम करू हरू मम सोका।।

नूतन किसलय अनल समाना।

दहि अगिनि जनि करहि निदाना।।

प्राचीन भारत में लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता का संरक्षण एंव संवर्धन :-

प्राचीन भारत में लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता का संरक्षण एंव संवर्धन के भी व्यापक प्रबन्ध किए गए थे। उपताप से बचने के लिए राजाज्ञा जारी किए थे तथा विधान द्वारा दण्ड का प्रावधान किया गया था। लोक मार्ग या राजमार्ग पर गंदगी फैलाने वाले व्यक्ति हेतु दो पन्ना का दण्ड निर्धारित था।

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि।

स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत्।।

कोई व्यक्ति जो तालाब, बगीचा में एवं पवित्र स्थानों पर गंदगी फैलाता था वह दण्ड के साथ–साथ गंदगियों को साफ करने हेतु जिम्मेदार होता था।

तटाकोद्यानतीर्थानि या मेध्येन विनाशयेत्।
अमेध्यं शोधयित्वा तु दण्डयेत्पूर्वसाहसम्।।
दूषयोत्सिद्वतीर्थानि स्थपितानि महात्मभिः।
पुण्यानि पावनीयानि प्राप्नुयात्पूर्व साहसम्।।

निष्कर्ष :–

पर्यावरण को सर्वाधिक खतरा अपने ही आधुनिक पुरोधाओं से है जो पाश्चात्य विद्वानों की व्याख्या के आगे नतमस्तक हैं और कालिदास के शब्दों में 'मूढ़ः परप्रत्ययनेर' का पालन करते हैं। जहाँ तक परम्परा का प्रश्न है परम्परा, यह लोक जीवन से जुड़ी हुई है। हमारे यहाँ अनेकों स्मृतियाँ हैं, वेदों की व्याख्यायें कठिन हैं तथा धार्मिक कर्मकाण्ड इतने जटिल, श्रम, समय एवं व्यय साध्य हैं कि उनका अनुसरण करना कठिन होता है। ऐसे समय में परम्परा से प्राप्त धार्मिक प्रथायें ही अनुकरणीय है। मनु ने इसी बात को रेखांकित करते हुए कहा है :–

येनास्यपितरोजाताः, येनयात पितामहाः।
तेन यायात सतां मार्गम् तेन गच्छत्र रिष्यते।।

परम्परा वह ज्ञान, विश्वास या व्यवहार है जो पुरानी पीढ़ी द्वारा नयी पीढ़ी को सम्प्रेषित किया जाता है। संस्कृति एंव परम्परा भारतीय जीवन की असम्र धारा है। परम्परा के अनुसार शिशु के जन्म लेने पर प्रसूतिका गृह के पास जली हुई अग्नि पिण्ड एवं लोहे का रखा जाना तथा प्रसूतिका गृह में सबके प्रवेश पर निषेध, प्रदूषण एवं संक्रमण से जच्चा–बच्चा को बचाने के एक प्रक्रिया ही है। आधुनिक प्रसव केन्द्रों में भी प्रवेश निषेध होता है और संक्रमण एवं प्रदूषण से मुक्ति के उपाय किये जाते हैं। धर्म हमारे जीवन का प्राण है। प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धामय होते हैं और उसकी श्रद्धा उसक स्वभाव का अनुसरण करती है इसलिए गीता में कहा गया है –

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयो यं पुरूषो यो यच्छः स एव सः।।

सन्दर्भ :–

1. एम.सी. मेहमा बनाम भारत संघ, ए0आई0आर0 1987 सु0को0 965 (इण्डिन काउंसिल फार एन्विरो–लिगल एक्शन बनाम भारत संघ, ए0आई0आर0 1996 सु0 को0 1146
2. वेळोर सिटिजन्स वेलफेयर फोरम बनाम भारत संघ (1996) 5 एस0सी0सी0 647
3. सुभाष कुमार वनाम विहार राज्य, ए0आई0आर0 1991 सु0को0 420
4. मीटिंग ग्राउण्ड वेदाज रण्ड रियो, दी टाईम्स आफ इण्डिया, 6 जून, 2002 पृ. 14 (नई दिल्ली)
5. अर्थववेद, 12/1/45 ('माता भूमिः पुत्रेहं पृथिव्या')
6. तद्र्थ
7. यजुर्वेद 36/17/1
8. ऋग्वेद, 1/2/5
9. म्हानारायणोपनिषद्, 3/18
10. यजुर्वेद 22/22/8
11. मीटिंग ग्राउण्ड, वेदाज रण्ड रियो, दी टाईम्स ऑफ इण्डिया, 6 जून, 2002 पृ. 14, (नई दिल्ली)
12. तैतरिय संहिता, 29/11 (अपो वा इदं सर्व विश्वोभूता न्यापः प्राणा वा आपः)

महेन्द्र डांगा पुत्र श्री पुनाराम डांगा,
मु.–जाजड़ावास, पो.–मेड़ता रोड़, तहसील–मेड़ता, जिला–नागौर (राजस्थान) पिन–341511

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 198-202

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक : नारी पात्र के सन्दर्भ में

प्रेमसुख

अतिथि शिक्षक – हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेड़ता सिटी, जिला–नागौर (राजस्थान)

किसी भी नाटक में नारी पात्रों का होना स्वाभाविक है लक्ष्मीनारायण मिश्रजी अपने वैविध्य–पूर्ण सृष्टि के कारण नाट्य रचना में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मिश्र जी के समस्यामूलक सामाजिक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पौराणिक तथा जीवनीपरक नाटकों में लगभग सत्तर नारी पात्र हैं।

राज महिषी से लेकर दासी तक पति परायण से लेकर वेश्या तक, अपने व्यक्तित्व को पति में लय कर देने वाली नारी से लेकर पति का त्याग करके व्यक्तित्व का पोषण करने वाली नारी, वात्सल्यमयी जननी और रणक्षेत्र में पति के साथ युद्ध करने वाली रमणियाँ तक मिश्र जी के नाटकों में विद्यमान हैं। हत्या जैसे जघन्य अपराध करने वाली तथा निर्व्याज प्रेम लुटाने वाली नारियाँ भी उनके नाटकों में चित्रित हुई हैं।

पारिवारिक दृष्टि से माँ, हृदयेश्वरी, सहोदरा, दुहिता व पुत्रवधू जैसे प्रमुख रूप लक्ष्मीनारायण मिश्र जी के नाटकों में उपलब्ध है। कुछ नारी पात्र ऐसे हैं, जो नाटक में विभिन्न पारिवारिक भूमिकायें निभाते हैं।

प्रमुख नारी पात्रों में मात्र नाटक की नायिका ही नहीं वरन् वे सभी जीवन्त पात्र आ जाते हैं जिनके बिना नाटक की कथावस्तु विखण्डित हो जाती है।

सामान्य अथवा गौणतिगौण नारी पात्र :– लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में प्रमुख तथा गौण पात्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे नारी पात्र भी है जो कथानक में उपकरण मात्र ही बनकर प्रयुक्त हुए हैं नाटकों में जो दासियाँ प्रतिहारियाँ परिचारिकायें या सखियों आदि को इस वर्ग में रखा गया है। इस प्रकार के नारी पात्र निम्नवत् हैं :–

नाटक पात्र – 1. राक्षस का मंदिर – 1 सुखिया, 2–वत्सराज–1 मदिरा – 2 कांचन माला, 3–दशादश्वमेध–1 नन्दिनी, 4–वितस्ता की लहरें – 1 वसन्तसेना, 5–चक्रव्यूह–1 कादम्बिनी, 6–वैशाली में बसन्त–1 केतकी 2 मालती, 7–जगद्गुरु–1 रेवती, 8–चित्रकूट– 1 मंथरा, 9 –गंगाद्वार– 1 सुकेशी 2 सुनयना, 10–अश्वमेध– 1 रजनी उपर्युक्त सामान्य नारी पात्रां के अतिरिक्त कतिपय ऐसे नारी पात्र भी हैं जिन्हें मिश्र जी ने कोई नाम नहीं दिया है।

इतिहास क्रम की दृष्टि से नश्वर जगत में सब कुछ परिवर्तनशील है। समय चक्र अविराम गति से घूमता रहता है। समय परिवर्तन के साथ ही समाज का स्वरूप व परिस्थितियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र जी के नाटकों में विभिन्न युग के नारी पात्र देखने को मिलते हैं। उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक और आधुनिक युग पर आधारित नाट्य रचनायें की हैं। उनके नारी पात्र भी नाट्यकथा के अनुरूप ही पौराणिक ऐतिहासिक और आधुनिक है। भारतीय नारी पात्रों के अतिरिक्त कुछ विदेशी नारी पात्रों को भी उनके नाटकों में

स्थान मिला है।

इतिहास क्रम की दृष्टि से उनके नारी पात्रों को निम्न उपवर्गों में बांटा गया है :–

1. पौराणिक नारीपात्र :–

इस युग में वे नारीपात्र हैं जो पुराण युग की कथाओं से सम्बन्धित हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र जी द्वारा वे कल्पित नारी पात्र जिनका चरित्र विकास पौराणिक कथानक में किया गया है ये पात्र निम्नवत् हैं :–

चन्द्रभागा व मेनका (नारद की वीणा), द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा व भानुमती (चक्रव्यूह), माधवी, गांधारी, कृपी व भानुमती (अपराजित), जानकी, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी माण्डवी व मंथरा (चित्रकूट), चित्रांगदा, उलूपी व चम्पकमाला (अश्वमेध), आदि।

ऐतिहासिक नारी पात्रों क नाम इस प्रकार हैं :– देवी, माया, विमला (अशोक), बासन्ती, मलयवती, सौम्यदर्शना, कौमुदी (गुरुड़ध्वज), वासवदत्ता, पद्मावती, अंगारवती (वत्सराज), रोहिणी, तारा, रजनी, ताया (वितस्ता की लहरें), माधवी, मल्लिका (कवि भारतेन्दु), रम्भा, अम्बपाली, जयन्ती (वैशाली में वसन्त), कोमुदी (दशाश्वमेध), भारती (जगद्गुरु), सरोजनी नायडू (मृत्युंजय), अनुराधा, देवकी, मंजरी (धरती का हृदय), धारिणी (गंगाद्वार), प्रभावती, अरूणा (सरयू की धार), सरस्वती व कंचन (काल–विजय)

आधुनिक नारी–पात्र :– इस उपवर्ग में लक्ष्मीनारायण जी के सामाजिक समस्यामूलक नाटकों के नारी–पात्र अधिक सजीव और जीवन्त हैं :– यथा, 'मालती', 'किरणमयी' (संन्यासी), 'ललिता', 'अश्करी', 'दुर्गावती' (राक्षस का मन्दिर), 'आशादेवी' (मुक्ति का रहस्य), 'चन्द्रकला', 'मनोरमा' (सिन्दूर की होली), 'चम्पा' (राजयोग), 'मायावती', (आधीरात) आदि।

'लक्ष्मीनारायण मिश्र' जी के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा पौराणिक नाटकों के नारी पात्रों की विशेषताएँ निम्नवत् हैं :–

1. असाधारण नारी पात्र :– ''वैशाली में बसन्त'' :–

इस नाटक की नायिका रम्भा तक्षशिला के आचार्य पुष्कल के भ्राता देवदत्त की कन्या है। वह रोहित की प्रेमिका और परिणीता है। प्रेम, दया, सौन्दर्य, शील और साहस के समन्वय ने इसे असाधारण नारीत्व के रूप में परिवर्तित कर दिया है। अश्वारोहण, शस्त्र–संचालन और धनुर्वेद की विद्या में भी वह पारंगत है। रोहित का विवाह गान्धार के रीति–रिवाजों से हुआ था। नारी के सबला स्वरूप में उसका विश्वास है। उसका विचार है कि नारी को युद्ध में पारंगत होना चाहिए, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह अपने प्राणेश की सहायिका बन सके। स्पष्टवादिता, उदारता, वीरता, बुद्धिमत्ता और निश्छलता का अद्भुत संयोग उसके व्यक्तित्व में है। उसकी असाधारण शक्ति का परिचय तब मिलता है, जब वह गर्भावस्था में भी अजातशत्रु के पोत रत्न के पिटारों का अपहरण करने के लिए उसके पोत पर नृत्य करती है। उसके बाद वह गंगा में कूदकर उसे तैरकर पार कर लेती है। इसके अहोरात्र के तदनन्तर वह एक पुत्र को जनम देती है।

अरूण जयन्ती से कहता है :– ''मोहिनी और भवानी वे दोनों एक साथ ही हैं, कुमारी ! आप केवल मोहिनी हैं।''

स्वाभिमानी नारी पात्र :–

'मलयवती' (गरूड़ध्वज) :– स्वाभिमान मनुष्य का स्वाभाविक गुण हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व में स्वाभिमान

गुण विशिष्टता प्रदान करता है। ''गुरुड़ध्वज'' में नाटककार ने मलयवती के चरित्र में इस गुण का समावेश किया है। मलयवती में महलों के राजकुमारी जैसी गरिमा विद्यमान है। वह मलयपुर की पाण्ड्य की दुहिता है, जो विदिशा के शुंग सेनापति के पास गायन, वादन, चित्र, अनुशासन तथा ललित कलाओं की शिक्षा लेने आयी है। मलयवती में आत्मसम्मान के अतिरिक्त क्षमा, दया, उदारता, करूणा, प्रेम, दूसरों की वेदना को अनुभव करने वाली, दूसरों के दुःखदर्द को बाँटने की भावना भी है। मलयवती कुमार विषमशील से प्यार करती है, किन्तु उसमें आत्मसम्मान की भावना है, इसीलिए वह विषमशील को दान के रूप में नहीं, वरन् अपनी प्रेम तपस्या के बल पर प्राप्त करना चाहती है।

तपस्विनी की तपस्या भी सफल होती है। मलयवती दूसरों के दुःख में शामिल होती है, इसी कारण वह पीड़ित वासन्ती की वेदना दूर करने का प्रयास करती है। उस पर कलंक लगाने वाले की आँख फोड़ने और जीभ काटने का भी वह साहस करती है।

युद्ध में पारंगत नारी पात्र :-

''माया'' (अशोक) - अशोक नाटक में माया का चरित्र वीरांगना साहसी तथा देश से प्रेम करने वाली नारी के रूप में प्रतिनिधित्व करता है। वह कलिंग के नरेश की दुहिता तथा जयन्त की भगिनी है। पिता के माया को जयन्त के पास उसकी सहायता के लिए छोड़ दिया है। अपने भ्राता को समर की तैयारी में अधिक श्रम के कारण दुर्बल होते देखकर चिन्तित होती है। वह विचार करती है कि यदि वह पुरूष के रूप में जन्मती, तो अनुज का सहयोग समर में करती। फिर भी नारी होकर पुरूष के रूप में जन्मती, तो अनुज का सहयोग समर में करती। फिर भी नारी होकर पुरूष वेश में ही घात के कारण जब कलिंग सेना पराजित हो जाती है, तो माया दुर्गा की भाँति रणक्षेत्र में पहुँचकर शत्रुआं को परास्त कर विजयी हो जाती है। उसकी वीरता से एण्टीपेंटर भी प्रभावित होता है, लेकिन पुरूष की वेशभूषा के कारण कोई उसे पहचान नहीं सका। उसमें स्वाभिमान का गुण भी विद्यमान है। अशोक की बन्दी होकर भी वह उससे ''दया की भीख माँगने को तैयार नहीं है।''

एकनिष्ठ प्रेमिकायें :-

''डायना'' (अशोक) :- ग्रीक राजकुमारी डायला प्रेम एवं भावकुता की साक्षात् मूर्ति है। वह प्रेम की अनन्य उपासिका नाटक की एक करूण सृष्टि के रूप में सामने आती है। वह अपने युवा शिक्षक ऐंटीपेंटर से प्रेम करती है। लेकिन वह स्वयं को राजकुमारी के योग्य नहीं समझता है, क्योंकि वह निर्धन है और डायना राजकुमारी। ऊँच–नीच, धनी–निर्धन तथा जाति–पाति की संकीर्ण भावनायें सदैव ही प्रेम के मार्ग में बाधाएँ बनी है। यही बाधायें डायना के जीवन में भी चिर विरह उत्पन्न करती है। डायना के पिता उसका विवाह मैडिसन के राजकुमार से करना चाहते हैं, लेकिन डायना को ऐश्वर्य और वैभव की कोई जिज्ञासा नहीं है, वह तो निर्धन ऐंटीपेंटर से समर्पणमय, एकनिष्ठ प्रेम करती है। उसके इस समर्पित प्रेम से ऐंटीपेंटर भी आत्मविस्मृत हो जाता है। डायना के पिता उसके प्रेमालाप को सुनकर क्रोधावेश में एण्टीपेंटर को प्राणदण्ड देने की घोषणा करते हैं, लेकिन डायना अपनी प्रेम स्वीकृति देकर अपना अपराध भी स्वीकार करती है। तव ऐंटीपेंटर को देश–निर्वासन का दण्ड मिलता है। ऐण्टीपेंटर के दूर चले जाने पर भी डायना उसके ही प्रेम में तल्लीन रहती है। वह मैडिसन के राजकुमार से विवाह करना अस्वीकृत कर देती है और पिता से स्पष्ट कहती है कि :– ''मैं ऐण्टीपेंटर को प्यार करती थी और अब भी उसे चाहती हूँ। इस संसार में मेरा जो कुछ स्वर्ग है। वह ऐण्टीपेंटर के चरणों में है।''

कर्त्तव्य –परायण एवं त्याग तपोमयी नारी पात्र :–

नारियों में कर्त्तव्य के प्रति सजगता, त्याग की भावना, प्रेम की प्रतिमूर्ति, विनयशीलता आदि भावनाएँ होती हैं। ''संन्यासी'' नाटक में मालती, किरणमयी, ''मुक्ति का रहस्य'' नाटक में आशादेवी, ''सिन्दूर की होली'' नाटक में चन्द्रकला, मनोरमा आदि नारियों में कर्त्तव्य–परायणता, त्याग, तपस्या आदि भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

मदनदेव से पीड़ित नारी :–

लक्ष्मीनारायण मिश्र जी के प्रथम नाटक अशोक में अशोक की परिणीता देवी यौवन सम्पन्न और वासनामयी नारी के रूप में चित्रित किया गया है। सम्राट अशोक संग्राम के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण अपनी वामांगिनी की ओर ध्यान नहीं दे पाता है। देवी को अशोक की संग्राम प्रवृत्ति पसन्द नहीं है, वह उससे पूछती है :– ''फिर वही युद्ध? प्रियतम युद्ध छोड़कर, तुम्हारे लिये कुछ है ही नहीं?''

सती नारियाँ :–

लक्ष्मीनारायण मिश्र जी के नाटकों में सती नारियाँ का स्वरूप कम है, फिर भी ''अपराजित'' की जयन्ती के चरित्रों में पति के साथ सती हो जाने की भावना समाहित है। इसीलिए इन्हें सती नारियों के वर्ग में रखा गया है। यद्यपि यह नाटकों की प्रमुख नारी पात्र नहीं है।

स्वच्छन्द तथा विलासिनो नारियाँ :–

''अम्बपाली'' (वैशाली में बसन्त) :– ''अम्बपाली'' इतिहास प्रसिद्ध नगर वधू है जिसका नूरतन रूप इस नाटक में दृष्टिगत होता है। अलौकिक सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति, वैशाली की नगर वधू होकर गौरवपूर्ण जीवन व्यतीत कर वह सभी को अपने मनोमुग्धकारी सम्मोहन में रखती थो। रूप सौन्दर्य ने उन्हें झुकाने का प्रयत्न किया।

वसन्तोत्सव में हिस्सा लेकर भावी पीढ़ी के लिए अभिषेक पुष्यकरणी पर गीत गाने की घोषणा करके अपने मुखारविन्दु से कहती है :– ''भिक्षुणी अम्बपाली के कण्ठ से बसन्त का राग एक बार फिर निकलेगा। भावी पीढ़ी के लिए वशाली में वसन्त की गूँज दिशाओं में फिर भरेगी।''

बौद्ध–भिक्षुणी नारियाँ :–

बौद्ध धर्म में दीक्षित नारियाँ ही बौद्ध भिक्षुणी कहलाती हैं। जो अपने जीवन का निर्वाह भिक्षा से करती हैं। इसें इतिहास प्रसिद्ध नारी पात्र होते हैं। अलौकिक सौन्दर्य, रूप गर्विता, सम्मोहन, मनोभाव, भोग–वैराग्य की भावना आदि तत्वों का चित्रांकन किया है। ''वैशाली में वसन्त'' नामक नाटक की नारी पात्र अम्बपाली में सौन्दर्य, मनोभाव, वैराग्य की भावना आदि विशेषताएँ विद्यमान हैं।

अन्य प्रमुख और गौण नारी पात्र :–

मंजरी कण्ठजन के क्षत्रिय राजा भद्रसेन की दुहिता है। उसमें मनोहारी सौन्दर्य के साथ अद्‌भुत ज्ञानविवेक की शक्ति है, जिसके कारण वह यवन क्षत्रप फिलिप तथा सेनापति निपर करन को अपने रूप जाल में फँसाकर दोनों को नष्ट करने में सामर्थ्यशाली होती है, किन्तु उसके साथ अष्ट दिवस तक धूप छाया की भाँति निवास करने पर भी उसके प्रेम को प्राप्त नहीं कर पाती है, क्योंकि वह अनुराधा से प्यार करता था चन्द्रगुप्त के अनुसार वह तिलोत्तमा जैसी राक्षसी मन्त्री के अनुसार वह स्वर्ग से उतरी रम्भा जैसी या संहारिणी भवानी जैसी है। यह स्वरूप लक्ष्मी जब चन्द्रगुप्त की माता द्वारा नन्दपुत्र सुमाल्य की हृदयेश्वरि बना दी गयी, तो उसका हृदय छटपटा गया, क्योंकि उसका हृदय तो चन्द्रगुप्त में तल्लीन था, परन्तु फिर भी इसे स्वतः भाग्य मानकर वह

सुमाल्य को ही प्राणेश रूप में स्वीकार करती है और सुमाल्य की मंजरी हो जाती है। विष्णुगुप्त के अनुसार ''वह अभिनय की सरस्वती है।'' नृत्यकला में निपुण है, किन्तु अनुराधा के प्रति उसमें क्षणिक ईर्ष्या का भाव है, क्योंकि उसके कारण ही चन्द्रगुप्त उसे नहीं मिला। अतः यवन बाला हेममाला जब चन्द्रगुप्त की प्रेमिका बन गयी, तब वह बहुत ही खुश हुई कि यवन बाला अनुराधा की सौत बन गयी। इस सुख में वह नृत्य करने लगी। मन के राज्य को पृथ्वी से बड़ा मानती है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने ऐतिहासिक सांस्कृतिक तथा पौराणिक नाटकों में मुख्य नारी पात्रों को आदर्शवादिनी भामिनी, अनन्य प्रेमानुरागिनी, साधिकाओं, स्वकीया नायिकाओं तथा वात्सल्यमयी मातृत्व के रूप में अंकित किया है। अधिकाशतः नारियाँ अद्वितीय मनोहर रूप की स्वामिनी हैं। वे भारतीय गुणों की प्रतिमूर्ति हैं एवं मनुष्य की प्रेरणादायिनी शक्ति हैं। त्यागमयी, धर्मपरायण, कर्त्तव्य भावना से ओत–प्रोत, उदारमयी, स्वाभिमानी रक्षक आदि उनके विशिष्ट सद्‌गुण हैं। वस्तुतः नारी चित्रण के विभिन्न स्वरूप तथा गुण उनके नाटकों में दृष्टिगोचर होते है।

सन्दर्भ :-

1. ''लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में नारी पात्र'' –''डा. जगदीश त्यागी'', पृष्ठ–संख्या–132, कुमार प्रकाशन, 20/30 मोतीनगर, नई–दिल्ली –15, प्रथम –संस्करण 1979
2. 2 से 4 तक ये नारी पात्र वामांगी के रूप में चित्रित किये गये हैं।
3. 1 व 2 नारी पात्र भामिनी के रूप में चित्रित किये गये हैं।
4. वासवदत्ता दुहिता तथा मातृत्व के रूप में भी दृष्टिगत हुए हैं।
5. कृपा माँ के रूप में चित्रित है।
6. चम्पक माला मातृत्व के रूप प्रयुक्त हुई है।
7. माया–दुहिता के रूप में चित्रित हुई है।
8. ''वैशाली में वसन्त'' – ''लक्ष्मीनारायण मिश्र'' पृष्ठ–संख्या–74 विद्या खंजाची रोड़, पटना–4
9. ''अश्वमेध'' –''लक्ष्मीनारायण मिश्र'' पृष्ठ–संख्या–32, मेहरा प्रकाशन, हास्पिटल रोड़, आगरा
10. ''चक्रव्यूह'' –''लक्ष्मीनारायण मिश्र'' कौशाम्बी प्रकाशन, पृष्ठ–संख्या–26
11. ''गरूड़ध्वज'' –''लक्ष्मीनारायण मिश्र'', लक्ष्मीनारायण एण्ड संस आगरा, साहित्य भवन (प्र.लि.), इलाहाबाद–3, सं. 1987 पृष्ठ संख्या–38
12. ''सरयू की धार'' 'लक्ष्मीनारायण मिश्र'' साहित्य भवन (प्रा.लि.) के.पी. कक्कड़ रोड़, दारागंज, इलाहाबाद–6
13. ''अशोक'' –''लक्ष्मीनारायण मिश्र'' हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पृष्ठ–संख्या–134, वाराणसी
14. वही, पृष्ठ संख्या–46
15. वही पृष्ठ संख्या – 67
16. ''वैशाली मं बसन्त'' –''लक्ष्मीनारायण मिश्र'' विद्या भवन, खंजाची रोड़, पटना–4

प्रेमसुख पुत्र श्री भचनाराम, – मु.पो.–मुगदड़ा, तहसील–रियां बड़ी,
जिला–नागौर (राजस्थान), पिन–341513

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 203-206

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतेंदु युगीन उपन्यास साहित्य और नवजागरण

डॉ. पूनम तलवार

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी.ए.वी.कॉलेज (लाहौर), अम्बाला शहर।

सन् 1850 ई. न केवल 19वीं शताब्दी का मध्यवर्ती विभाजक बिंदु हैं, बल्कि मध्यकालीन से आधुनिक युगीन चेतना का संवाहक वर्ष भी है। उन्नीसवीं शताब्दी के इस उत्तरार्द्ध में दो महत्त्वपूरण घटनाएं घटित होती हैं। इनमें एक घटना है– सन् 1857 ई. का पहला भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और दूसरी घटना है– सदी के इस चरण में अपनी स्पष्ट पहचान कराने वाला राष्ट्रीय नवजागरण, जो आधुनिक चेतना के आलोक में अपने देश के यथार्थ को देखता और विश्लेषित करता है तथा एक ऐसी राष्ट्रीय चेतना का संवाहक और सूत्रधार बनता है जो एक गुलाम देश को अपनी स्वतंत्रता के संधान के लिए प्रेरित करती है। इस नवचेतना के साथ ही देश में धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन शुरू होते हैं जिनका मुख्य लक्ष्य हिन्दू धर्म तथा हिन्दू समाज को मध्यकाल की रूढ़ियों से निकालकर समय के अनुकूल बनाना था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी इन सभी आन्दोलनों ने धर्म को मानवीय और सद्भावनापरक बनाने पर जोर दिया। इस्लाम धर्म और मुसलमानों को लक्ष्य कर सर सैय्यद अहमद जिस आन्दोलन का आरम्भ करते हैं उसका उद्देश्य भी मुस्लिम समाज को आधुनिक बनाना ही था। धार्मिक और सामाजिक सुधारों के अतिरिक्त इन आन्दोलनों से जुड़े मनीषी पूर्वी तथा पश्चिमी संस्कृति पर भी टिप्पणी करते हैं तथा राजनीतिक स्तर पर औपनिवेशिक शासन में भारतीयों के साथ मानवीय व्यवहार तथा शासन में उनके अपने हक के लिए आवाज उठाते हैं और चाहते हैं कि भारतीय जनता नए युग के अनुकूल अपना संस्कार करती हुई अपने सामने खड़ी चुनौतियों को झेलने में सक्षम हो। भारतीय समाज को धर्म के उन्नत तथा सार्वभौम आधारों पर प्रतिष्ठित करना उनकी चिन्ता का प्रधान विषय रहता है। अपने प्रयासों द्वारा जनता में आत्मविश्वास तथा राष्ट्रीय गौरव की भावना को जगाने का प्रयास करते हुए एक ओर वे औपनिवेशिक शासन के अन्याय को दृढ़ता से उजागर करते हैं तो दूसरी ओर अपने गौरवमयी इतिहास और संस्कृति का नया आख्यान भी करते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ हिन्दी साहित्य में एक युग या शुभारम्भ हुआ और इस युग को 'नवजागरण' जैसा विशेषण प्रदान करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को जाता है। इस युग के हिन्दी रचनाकार वे विचारक हैं जिन्होंने रूढ़िग्रास्त हिन्दी जाति की रचनाशीलता को निकालकर आधुनिक जीवन की दहलीज पर खड़ा किया और साथ ही एक पूरे युग की चेतना था नया संस्कार किया।

इस युग में पाश्चात्य उपन्यास साहित्य के प्रभाव से भारतीय भाषाओं में उपन्यासों की ओर रुचि बढ़ी। इसका सर्वप्रथम प्रयोग बंगला और मराठी में हुआ। बंगला के अनूदित उपन्यासों से ही हिन्दी उपन्यास या प्रचलन हुआ। यद्यपि कथा–साहित्य की एक समृद्ध परम्परा भारतवासियों या मनोरंजन करती आ रही थी तथापि वस्तु

और शिल्प की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी उपन्यास पूर्णतः भिन्न, नई एवं स्वतन्त्र विधा है। भारतेन्दु युग में लिखित उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्तर पर होने वाले नवजागरण का प्रभाव सहज एवं स्वाभाविक है। तत्कालीन पराधीन भारत में लेखक भारतीय जनता या शोषण व पतन देखार मानसिक पीड़ा या अनुभव करने लगे थे और समाज के समक्ष ऐसा आदर्श प्रस्तुत करना चाहते थे जिससे समाज अपना विकास कर सके और देश की उन्नति सम्भव हो सके। इस काल को डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने चार भागों में बांटा है– पहला सामाजिक उपन्यास– जिनमें सुधार और नीति के साथ–साथ प्रेम और शौर्य या मिश्रण बताया है। दूसरा– नीति और शिक्षा संबंधी उपन्यास, जिनमें सामाजिक व्यंग्य भी निहित है। तीसरा– तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास जो केवल मनोरंजन मात्र के लिए लिखे गए। चौथा– स्काट की शैली पर लिखे गए मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास। इन मौलिक उपन्यासों का ध्येयराष्ट्रप्रेम और समाज–सुधारों का प्रचार करना था।वार्ष्णेय के अनुसार तिलिस्मी उपन्यासों को छोड़कर मौलिक या अनूदित उपन्यासों में दो उद्देश्य प्रधान रूप से मिलते हैं। एक तो वे देश के प्राचीन गौरव व वर्तमान पतन की ओर पाठकों ध्यान आकर्षित करते हैं.... दूसरे वे जो समाज सुधार, धर्म सुधार, व्यक्तिगत चारित्रिक सुधार, अंग्रेजी प्रभाव से बचना आदि बातों पर जोर देते हैं।"[1]

इस युग था उपन्यासकार चाहे राजनैतिक पराधीनता का अनुभव न कर सका हो, परन्तु आर्थिक व सामाजिक शोषण से वह पूर्णतः परिचित था। अंग्रेजों की आर्थिक नीति से सुब्ध होकर जहां भी अवसर मिला, वह दो शब्द कह गया। अधिकतर तिलिस्मी और ऐप्यारी उपन्यास इस युग की देन है।

जिनका उद्देश्य अत्याचारों से त्रस्त जनता था मनोरंजन करना था। समाज सुधार की भावना को लेकर लिखे गए उपन्यासों में राष्ट्रीयता तथा जागरण के तत्व संचित किए जा सकते हैं, क्योंकि इस युग में कोई भी शुद्ध राष्ट्रीयपरक उपन्यास नहीं लिखा गया। हिन्दी के प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' समाज सुधार और जागरण को तत्व विद्यमान है। यद्यपि तत्कालीन उपन्यासों की रचना मनोरंजन के लिए ही हुई थी, लेकिन परोक्ष रूप में लेखक का उद्देश्य समाज और राष्ट्र की अवस्था था चित्रण करना भी था। इन उपन्यासकारों ने अतीत का स्मरण करते हुए आशावादी भविष्य का निर्माण किया है। ठाकुर जगमोहन सिंह ने 'श्यामा स्वप्न' में अपनी जन्मभूमि का गुणगान किया है– "भू–मंडल में... भरत खण्ड, ऐसा विचित्र मानो ब्रह्मा ने स्वयं अपने हाथों से बनाया हो। भारत खंड में तो अनेक खंड है पर आर्यावर्त–सा मनोहर और कोई देश नहीं..... आर्यावर्त–सी पुण्य भूमि न तो आंखों देखी और न कानों सुनी।"[2] भारत जब समुन्नत्रावस्था में था तो इसका वैभव, ऐश्वर्य और समृद्धि दिन–प्रतिदिन बढ़ती चली जाती थी, परन्तु वर्तमान भारत की दारुण अवस्था देखकर रचनाकार विक्षुब्ध हो उठते है।

'परीक्षा गुरु' में श्री निवास लिखते हैं– "जब तक हिन्दुस्थान में और देशों से बढ़कर मनुष्य के लिए वस्त्र और सब तरह की सुख–सामग्री तैयार होती थी, रक्षा के उपाय ठीक–ठीक बन रहे थे, हिन्दुस्थान का वैभव प्रतिदिन बढ़ता जाता था। परन्तु जब से हिन्दुस्थान का एका टूटा और देशों में उन्नति हुई, बाफ और बिजली आदि वालों के द्वारा हिन्दुस्थान की अपेक्षा थोड़ी मेहनत और थोड़े समय में सब काम होने लगा, हिन्दुस्थान की घटती के दिन आ गए। जब तक हिन्दुस्थान इन बातों में और देशों के बराबर उन्नति न करेगा, यह घाटा कभी पूरा न होगा।"[3] इस प्रकार उपन्यासकार अपने देश की अवनति का कारण बताते हुए भारत को प्राचीन काल का गौरवशाली देश अर्थात् सोने की चिड़िया देखने की कामना करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि भारत की इसी सम्पन्नता के कारण ही इसे विदेशियों ने लूटा है और इसे दरिद्र बना दिया है। गोपाल राम गहमरी के 'देवरानी

जेठानी' में भारत को सम्पन्न अतीत को चित्रित किया गया है तो प्रताप नारायण मिश्र द्वारा अनूदित उपन्यास 'कपाल कुंडला' में प्राचीन भारत के वाणिज्य की उन्नति को स्मरण किया गया है।

तत्कालीन भारतीय समाज अनेक कुरीतियों रूढ़ियों और अंधविश्वासों से झुलस रहा था। उपन्यास का जन्म ऐसे ही समय में हुआ जब सामन्तवाद टूट रहा था और पूंजीवाद का अभी जन्म भी नहीं हुआ था। ऐसे समय में 'भाग्यवती' उपन्यास की रचना हुई जिसमें "टूटते उभरते हुए, प्राचीन एवं नवीन, रूढ़िवादी एवं सुधारवादी तथा स्थिर और गत्यात्मक शक्तियों एवं मूल्यों के दबाव के अनुभव का संसार ही इस उपन्यास का प्रतिपाद्य विषय है।"[4] इस उपन्यास में विवाह संबंधी प्रचलित अनेक बुराईयों का विरोध किया गया है। बाल–विवाह की रीति का जोरदार खंडन करते हुए विवाह के समय होने वाले मिथ्या आडम्बरों पर व्यय किए अपव्यय का खंडन किया गया है। विवाह के समय गाए जाने वाले भद्दे गानों आदि का भी विरोध किया गया है। 'देवरानी जेठानी' उपन्यास में इसी समस्या को दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया है। विश्वेश्वर और उसकी पत्नी के अपनी लड़की के विवाह सम्बन्धी वार्तालाप के माध्यम से उपन्यासकार ने अनमेल विवाह, जन्मपत्री और अन्धविश्वासों का भण्डाफोड़ किया है कि किस प्रकार एक शिक्षित लड़की का अंधविश्वासी पिता उसके भविष्य का विचार किए बिना उसे अशिक्षित नवयुवक के साथ बांध देता है। मां के कहने पर भी रूढ़िवादी पिता कुछ सुनने को तैयार नहीं। श्री निवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' में सामाजिक आदर्शवाद की भावना प्रखर है। विदेशी सभ्यता के सम्पर्क में आकर किस प्रकार भारतीयों में मदिरापान का प्रचलन अधिक हो गया था और वह विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे थे। इस उपन्यास में आदि से अन्त तक लाला मदनमोहन के विलासपूर्ण जीवन का चित्र खींचा गया है। उसका चारित्रिक पतन देखकर उसमें सुधार लाने का प्रयास किया गया है। वह तत्कालीन रईस परम्परा का प्रतिनिधि है। उसमें अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क में आए हुए नव–शिक्षित व्यक्ति के गुण और अवगुण दिखाए गए हैं।उसमें ऊपरी चकाचौंध, विलासप्रियता, अकर्मण्यता और कृत्रिम ठाठ–बाठ आदि सभी कमजोरियां व्याप्त हैं। इस वर्ग में देशव्यापी विलासिता थी– "निःसन्देह, वहां कुछ दिन रहना हो, सुख–भोग की सब सामग्री मौजूद हों और भीनी–भीनी रात में सुर के साथ किसी पिकवदनी की आवाज आकर कान में पड़े तो पूरा आनन्द मिले।.... शराब की चस बिना यह सब मजा फीका लगता है।"[5]

इन शब्दों में तत्कालीन वेश्यावृत्ति और मदिरापान जैसी कुवृत्तियां दृष्टव्य हैं। उपन्यासकार का उद्देश्य इनका चित्रण करना ही नहीं है बल्कि इस कुवृत्ति के दोष बताकर उसे समाप्त करना है। शराब की अधिकता प्राण घातक है। इससे अनेक प्रकार के रोग हो सकते हैं। इसी कुवृत्ति का दुष्परिणाम गोपालराम गहमरी कृत 'नए बाबू' उपन्यास में भी दिखाया गया है। शराब के नशे में चूर विपिन बिहारी कृष्ण शर्मा अपनी पत्नी की हत्या कर देता है, परन्तु होश में आने पर अत्यधिक पश्चाताप करता है।

'भाग्यवती' हिन्दी का पहला नारी प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है। यह उपन्यास नारी जागरण आन्दोलन को लेकर सामने आता है। लेखक ने स्वयं इसकी भूमिका में लिखा है, "बहुत धर्म की शिक्षा दिनों से इच्छा थी कि कोई ऐसी पोथी हिन्दी भाषा में लिखूं कि जिसके पढ़ने से भरत खंड की स्त्रियों को गृहस्थ प्राप्त हो।"[6] नारी–जीवन की समस्याओं को लेकर तत्कालीन समाज सम्पूर्ण चित्रण उपन्यासकार ने इस कृति में खींचा है। स्त्री शिक्षित होने पर अपने विपत्तिकाल में किसी पर आश्रित न होकर अपने पैरो पर खड़ी हो सकती हैं और स्वयं को दुराचार से बचा सकती हैं। एक शिक्षित महिला का चित्र खींच कर अन्य स्त्रियों को विद्या ग्रहण करने की प्रेरणा दी गई है। लेखक के अनुसार, "मनुष्य हो या स्त्री, विधा सबको भाग्य लगा देती है। हाय! वे कैसे

बुरे माता–पिता हैं जो अपनी सन्तान को विद्या नहीं सिखाते। धिक्कार है उन पर कि जो यह बात कहा करते है कि स्त्री को शिक्षा न पढ़ना चाहिए। और बड़े ही मूर्ख हैं वे लोग जो अपने मुख में से ये बातें कहा करते हैं कि विद्या पढ़ी हुई स्त्री बिगड़ जाती है।"[7]

इस उपन्यास में अन्य अनेक छोटी–छोटी समस्याओं पर विचार किया गया है, परन्तु लेखक का प्रमुख उद्देश्य नारी शिक्षा ही रहा है। इसके अतिरिक्त 'देवरानी जेठानी' 'नया शिक्षक' जैसे उपन्यासों में भी नारी शिक्षा पर बल देते हुए उसे जागरूक बनाने का प्रयास किया गया है जिससे वह राष्ट्र का सशक्त अंग बन सके।

अपनत्व और स्वदेश प्रेम की भावना को 'परीक्षा गुरु' में प्रचुर मात्रा में अभिव्यक्त किया गया है। इस उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को लेकर मध्यम वर्ग की समस्याओं को चित्रित किया गया है। तत्कालीन समाज दो वर्गों में विभाजित हो चुका था। एक वर्ग अत्यधिक दरिद्र था, जो दो वक्त की रोटी खाने के लिए तरसता था और दूसरा वर्ग राजभक्तों का था जो धनवान था और अंग्रेजों की चाटुकारिता करने के परिणामस्वरूप भोगविलास में ही मग्न था" दरिद्रयों को भोजन–वस्त्र की फिक्र पड़ती हैं और धनवानों को भोग विलास से अवकाश नहीं मिलता। फिर देशोन्नति का विचार कौन करे।"[8] देश की दीनावस्था पर लेखक बहुत दुःखी होता है ऐसी स्थिति में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई देता जो देश में विद्या और कला का प्रचार करे। तत्कालीन भारत की अवनति का मूल कारण देशवासियों में एकता की भावना का समाप्त हो जाना है। जब तक देशवासी एक होकर वैज्ञानिक आविष्कारों की ओर ध्यान नहीं देते, देश का उत्थान करना कठिन है। अंग्रेजों द्वारा हो रहे निरंतर शोषण ने भारतीयों को आलसी और निरुद्यमी बना दिया है। यद्यपि भारत की भूमि में उन्नति के सभी साधन विद्यमान हैं, फिर भी अकर्मण्यता के कारण देश की अवनति हो रही है। अपनी रचनाओं में उपन्यासकारों ने कर्मठता का सन्देश देते हुए स्वदेश निर्मित वस्तुओं के प्रति रुचि जगाने का प्रयास किया है। राष्ट्रोत्कर्ष के लिए अपने देश में उपलब्ध साधनों का प्रयोग ही अनिवार्य है।

अतः स्पष्ट है कि तत्कालीन युग के विभिन्न आन्दोलनों के चलते समाज–सुधार की भावना को लेकर लिखे गए उपन्यासों में लेखक को जहां कहीं अवसर मिला उसमें देश–प्रेम भावना को व्यक्त करने का प्रयास किया है। 'परीक्षा गुरु', 'भाग्यवती' 'निस्सहाय हिन्दू' 'सौ अजान एक सुजान' आदि उपन्यासोंमें राष्ट्रीय जागरण के कतिपय तत्त्व उपलब्ध होते हैं। इन उपन्यासों में देश के प्रति अनुराग, स्वदेश निर्मित वस्तुओं के प्रयोग तथा अपनी भाषा के उत्थान पर बल, नारी शिक्षा पर बल, सामाजिक रूढ़ियों व अंधविश्वासों को दूर करने की भावना भरी हुई है। इस युग में देश–हित और समाज–हित की भावना से प्रेरित मौलिक उपन्यासों का सृजन ही नहीं हुआ बल्कि अनुवाद द्वारा भी इस भावना की पुष्टि की गई और नवीन चेतना व नवीन परम्परा का विकास हुआ।

सन्दर्भ :–

1. डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ. 196
2. ठाकुर जगमोहन सिंह, श्यामा– स्वप्न, श्री कृष्ण लाल, सम्पादक, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2010 पृ. 36
3. श्री निवास दास, परीक्षा– गुरु, श्री निवास दास ग्रंथावली, पृ. 198–199
4. डॉ वीना श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यम मार्ग, (शोध–ग्रन्थ) पृ. 77
5. श्री निवास दास, परीक्षा–गुरु, पृ. 253
6. श्रद्धाराम फिल्लौरी, भाग्यवती भूमिका
7. वही, पृ. 80
8. श्री निवास दास, परीक्षा गुरु, पृ. 384

मो. 9815651613

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2023 Page No. : 207-210

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में सामाजिक सम्बन्ध

किरन पूनिया

एसोसिएट प्रोफेसर, डी.ए.वी. कॉलेज (लाहौर), अम्बाला शहर।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्यकार अपनी रचना में उन सभी सम्बन्धों को प्रस्तुत करता है जो उसे समाज में दिखाई देते हैं। किसी भी रचनाकार के सम्मुख सृजन करने से पहले यह उद्देश्य रहता है कि वह किन सामाजिक मूल्यों की आधारशिला पर अपनी रचना करेगा। रचना कभी भी निरुद्देश्य या अकारण नहीं रची जाती। जो रचना समय और समाज के साथ गतिमान रहती है वह युगों–युगों तक याद की जाती है। देवेश ठाकुर के अनुसार, "साहित्य के सभी तत्त्व समान रूप से परिवर्तनशील नहीं है। इन्द्रीय बोध की अपेक्षा भाव और भावों की अपेक्षा विचार अधिक परिवर्तनशील हैं। युग परिवर्तन के समय विचारों में अधिक परिवर्तन होता है जबकि इन्द्रियबोध और भावनागत में अपेक्षाकृत स्थायीत्व होता है।"[1]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य के अन्तः सम्बन्धों के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। वस्तुतः मनुष्य के अन्तः सम्बन्धों द्वारा ही समाज का निर्माण होता है। समाज में रहते हुए मनुष्य अपने भावों और संवेदनाओं के द्वारा सामाजिक बनता है। कुंवर पाल सिंह इस विषय में लिखते हैं कि, "व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उसका जीवन समुदायिक जीवन के रूप में चाहे प्रकट न हो फिर भी सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति और पुष्टि है।"[2] नेमिचन्द्र जैन के अनुसार, "व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध परस्पर अविच्छिन्न है। व्यक्ति के योगदान से ही समाज का विकास संभव है। यद्यपि व्यक्ति अपने परिवार–समाज का सदस्य होते हुए भी अपनी नैसर्गिक आवश्यकताओं से मुक्त एक व्यक्ति होता है जिसका समूह से पृथक् अपना व्यक्तित्व भी होता है। लेकिन भारतीय संस्कृति व्यक्ति के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को महत्ता नहीं देती। व्यक्ति की परिकल्पना परिवार और समाज के साथ ही होती है?"[3]

परिवार ऐसे लोगों का समूह है जिसमें वे वैवाहिक या रक्त सम्बन्ध के कारण एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। मनुष्य का जन्म परिवार में होता है जहां उसका पालन पोषण होता है तथा उसमें मानवीय गुणों का संचार होता है। परिवार में रहते हुए प्रत्येक सदस्य के अपने कुछ कर्त्तव्य होते हैं जिन्हें पूर्ण करते हुए वे अपने कार्यों में भी संलग्न रहते हैं। परिवार मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं– संयुक्त परिवार और एकाकी परिवार। संयुक्त परिवार वैदिक काल से ही भारतीय समाज का आधार स्तम्भ रहा है। संयुक्त परिवार कई परिवारों का सम्मिलित समूह होता है। उसमें दादा–दादी, माता–पिता, ताऊ–ताई, चाचा–चाची, बहन–भाई आदि सभी पारिवारिक सदस्य होते हैं, परन्तु उसका मुखिया परिवार का सबसे वृद्ध या अनुभवी व्यक्ति होता है और वही पूरे परिवार को संचालित करता है।

इसका मेहता द्वारा लिखित उपन्यास 'यह पथ बन्धू था' में पात्रों के आपसी वार्तालाप के माध्यम से होता है–

"ठीक है, श्री मोहन अलग हो जाए तो रोज–रोज की झंझट मिटे।"

"नहीं यह नहीं होगा। जब तक मैं बैठी हूँ घर का बंटवारा नहीं हो सकता।"[4]

लेखक का संयुक्त परिवार प्रणाली के प्रति दृष्टिकोण पात्रों के माध्यम से प्रकट होता है। परिवार के मुखिया श्री नाथ, श्री मोहन व उसकी पत्नी के व्यवहार को देखकर उन्हें अलग करना चाहते हैं परन्तु उनकी पत्नी उन्हें ऐसा करने से रोकती है क्योंकि वह नहीं चाहती कि संयुक्त परिवार टूट जाए। लेकिन समय के बदलाव के साथ–साथ लेखक के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन झलकता है। इस प्रकार यहां लेखक ने संयुक्त परिवार को टूटने से बचाने का प्रयास दिखाया है।

विवेच्य उपन्यास के माध्यम से लेखक ने स्त्री–पुरुष के आपसी सम्बन्धों चाहे उनमें प्रेम हो अथवा कटुता दोनों का ही खुलासा किया है। लेखक ने समाज के ऐसे दम्पत्तियों के आपसी सम्बन्धों की भी चर्चा की है जिनमें झगड़ा नहीं होता बल्कि दोनों पति–पत्नी एक दूसरे की भावनाओं को समझकर निर्णय लेते हैं, जिससे उनमें वृद्धावस्था तक अपनेपन की भावना विद्यमान रहती है। किसी परिस्थितिवश अगर उनमें मन–मुटाव हो भी जाए तो विनम्र स्वभाव दिखाकर उनमें मन–मुटाव को दूर होते दिखाया है।

'यह पथ बन्धु था' में श्रीधर बिना बताए घर से चला जाता है और पच्चीस वर्षों के बाद घर लौटता है। इतना समय बीत जाने पर भी उसकी पत्नी सरो का प्रेम कम नहीं होता बल्कि अब भी वह उससे उतना ही प्रेम करती है। इस बात की पुष्टि उनके आपसी वार्तालाप से होती है।

श्रीधर स्वयं को गुनहगार समझता हुआ कहता है, "याद है सरो। मैने कहा थान कि सीता को रावण ने प्रताड़ित नहीं किया था बल्कि.....बात भी सरो उन्हें रोक देती है।.....

सरो ने पति के मुंह पर हाथ रख दिया और छल छलायी आंखों से बरजती रही। बोली, मुझे कोस लो जितना चाहो लेकिन मेरे सौभाग्य को नहीं। कितने वर्षों के बाद यह सुख....."[5]

इस तरह सरो जैसे पात्र के माध्यम से लेखक ने भारतीय नारी के विभिन्न गुणों जैसे त्याग, प्रेम करुणा, श्रद्धा आदि को दिखाया है। इसी प्रकार एक अन्य संदर्भ द्वारा लेखक ने पति और पत्नी के मध्य अधेड़ावस्था में उत्पन्न प्रेम भावों को भी दिखाया है– "पत्नी का हाथ डिब्बे में से रोटियां लाकर उनकी थाली में अबोले रख जाता । बरसों से वे इस हाथ से परिचित हैं। कभी इसी को थाम कर लाए थे, तब यह कितना गोरा गोल, भरा–भरा सा था। चूड़ियाँ कैसे सुहाती थी उनमें। अपने गले के चारों ओर भी ये ही हाथ कैसे मीठे–मीठे से अनुभव किए हैं। उपरान्त कैसे धीरे–धीरे इनकी गौराई कम हुई, गोलाई में कैसे बुर्रियां आयी, रंगीन चूड़ियां भी उतरते यौवन के साथ–साथ उतरते चली गई। गले को घेर कर रहने वाले हाथ कैसे क्रमशः दूर होते–होते अब उनके चारों ओर एक दूरी बनाए हुए रहते हैं, चाहे सब कम हो गया था इन वर्षों में, लेकिन मिठास सम्भवतः बढ़ ही गई थी।

.....दोनों मुस्का दिए, बरसों बाद दोनों पति पत्नी की भांति एक–दूसरे को देख रहे थे। दोनों की सांसे जोर–जोर से चलने लगी थी। दोनों अपनी–अपनी देहों से निकल कर एक–दूसरे में अनुस्यूत हो जाने के लिए आकुल थे। चेत आते ही दोनों को लगा कि अरे जितना अंधेरा वे समझ रहे थे, उतना नहीं था। एक दीप ही कितना आलोक देता है ढेर सारे अंधेरे में?"[6]

इस तरह के ऐसे प्रसंगों के माध्यम से पति–पत्नी के प्रेम और विश्वास से जुड़े पारस्परिक सम्बन्ध को अटूट दिखलाया है।

लेखक ने स्त्री–पुरुष के प्रेम सम्बन्धों का भी अपने साहित्य में खुल कर वर्णन किया है। मध्य वर्ग में इस तरह के सम्बन्धों को समाज स्वीकार नहीं करता। मध्य वर्ग में कमल और किशन का आपसी प्रेम इस मध्यवर्गीय संकीर्ण मानसिकता की परवाह किए बिना आगे बढ़ता है, "जब कभी बिशन बम्बई जाता है तो कमल कॉलेज की पिकनिक या कुछ और बहाना बनाकर बिशन से बराबर मिलती है।"[7]

कमल व बिशन के कोर्ट में विवाह कर लेने पर कमल के पिता में बिशन के प्रतिशोध की तीव्र भावना पनप उठती है। वस्तुतः लेखक विवेचित संदर्भ के द्वारा मध्यमवर्गीय दृष्टिकोण को उद्घाटित करता है, जहां परम्परागत ढंग में ही विश्वास किया जाता है।

विवेच्य उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाज में व्याप्त जाति–पाति को के भेदभाव को मिटाने के लिए उपन्यास के प्रमुख पात्र पंडित शिवशंकर आचार्य के माध्यम से जाति चेतना पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि," प्रकृति तो प्रत्येक क्षण हमारे ऐसे 'पुरूष' होने की प्रतीक्षा में नाना शृंगार प्रसाधन की ये आरक्षण तत्पर हैं और हम ही हैं कि हमें अपना वंश कुल, गौत्र, प्रवर कुछ भी ज्ञात नहीं। ब्राह्मण या चाण्डाल से सारी संज्ञाएं देह की नहीं है, आत्मा की हैं। जातियों का यह मिथ्या जाल तो सामाजिक स्वार्थवश है। जिस मनुष्य के आत्मा (पुरुष) भाव युक्त हो जाती है, वही ब्राह्मण है। जन्म से तो विभु भी ब्राह्मण है, पर क्या वह ब्राह्मण है।"[8] आज समाज में प्रत्येक व्यक्ति समानता अधिकार चाहता है। व्यक्ति जाति से नहीं अपितु आत्मा के आधार पर ऊंचा होना चाहिए।

लेखक ने पारिवारिक संबंधों के तहत श्रीनाथ की पत्नी और दुर्गा जैसी सुघड़ सास का उदाहरण देकर सास–बहू के सम्बन्ध में चले आ रहे विचारों को ही बदल दिया है। लेखक के अनुसार ऐसे सम्बन्धों में टकराव नारी के स्वभाव पर निर्भर करता है। एक स्थान पर लेखक ने श्रीनाथ की पत्नी और उसकी बहू सरस्वती के बीच कलह दिखाया है।[9] तो वहीं दूसरी तरफ सास और बह के बीच हुए मन–मुटाव को बड़ी ही आसानी से समाप्त करने का प्रयास भी किया है। जब श्रीधर घर छोड़कर चला जाता है तो सरस्वती बीमार हो जाती है लेकिन सास उसकी सेवा करती है तथा घर का सारा काम करती है। लेखक ने यहां एक आदर्श सास को चित्रांकित करते हुए लिखा है,

> "बहू! जब तक मैं हूँ तब तक तुम लोगों
> को चिन्ता नहीं करती है। जिस दिन नहीं रहूंगी
> उस दिन तुम भी अपना घर सम्भाल लेना।
> सासू माँ! यों न कहो! मुझ अभागन को सीने से
> लगाकर इतना दुःख तो सगी माँ भी नहीं सहती।
> और सास–बहू गंगा–जमुना हो गई।
> कौन किसे समझाता?"[10]

सरस्वती की सास के रूप में लेखक ने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है जो सबसे अहम और कड़वाहट भरे सास–बहू के सम्बन्ध की रूढ़िवादी परिभाषा ही बदल देता है। ऐसे चरित्र का निर्माण आज के समय में नरेश

मेहता का एक सराहनीय प्रयास है। मानव जीवन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति जितनी कथा साहित्य में संभव हो सकती है उतनी अन्य किसी साहित्यिक विधा में नहीं, क्योंकि कथा साहित्य में विस्तार होता है। नरेश मेहता का विवेचित उपन्यास समाज में व्याप्त क्रिया–कलापों का ही निचोड़ है।

सन्दर्भ :-

1. देवेश ठाकुर, साहित्य के मूल्य, पृ. 42
2. कुंवर पाल सिंह, हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ. 17
3. नेमिचन्द्र जैन, बदलते परिप्रेक्ष्य : व्यक्ति समाज और साहित्य, पृ. 54–55
4. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ. 268
5. वही, पृ. 458–459
6. नरेश मेहता वही, पृ. 377–78
7. वही, पृ. 310
8. वही, पृ. 327
9. वही, पृ. 273
10. वही, पृ. 329

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

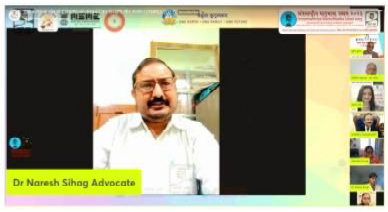

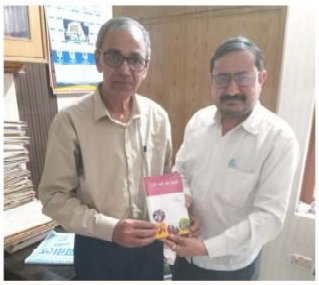

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115